प्रवचन **-**क्रम

21...बाल -लक्षण
....2
22..बुद्धि , बुद्धिवाद और बुद्ध
....20
23...सत्संग -सौरभ
....35
24...लुत्फ -ए-मय तुझसे क्या कहूं !
....73
25..पुण्यातीत ले जाए , वही साधु -कर्म
....92
26...मौन में खिले मुखरता
....111
27...लाभ-पथ नहीं , निर्वाण -पथ
....154
28...जागरण और आत्मक्रांति
....175
29...कल्याण मित्र की खोज
....195
30...मंथन कर , मंथन कर
....215

एस धम्मो सनंतनो, भाग 3
इक्कीसवां प्रवचन

बाल-लक्षण

दीघा जागरतो रत्ति दीघं संतस्स योजनं।
दीघो बालानं संसारो सद्धम्मं अविजानतं।। 54।।

चरं चे नाधिगच्छेय्य सेय्यं सादिसमत्तनो।
एकचरियं दल्हं कयिरा नत्थि बाले सहायता।। 55।।

पुत्तामत्थि धनम्मत्थि इति बालो विहांंति।
अत्ता ही अत्तनो नत्थि कुतो पुत्तो कुतो धनं।। 56।।

यो बालो मांंति बाल्यं पंडितो वापि तेन सो।
बाले च पंडितमानी स वे बालो"ति बुच्चति।। 57।।

संसार बड़ा है, विशाल है। लंबी है यात्रा उसकी। लेकिन संसार के कारण संसार बड़ा नहीं है; संसार बड़ा है, क्योंकि तुम्हें अपनी कोई खबर नहीं है।
संसार बड़ा है, क्योंकि तुम बेहोश हो। तुम्हारी बेहोशी में ही संसार का विस्तार है। तुम्हारी बेखुदी में ही संसार की विराटता है। जैसे ही तुम जागे, वैसे ही संसार छोटा हुआ। इधर तुम जागे, उधर संसार खोना शुरू हुआ। जिस दिन परिपूर्ण रूप से कोई जागता है, संसार शून्य हो जाता है।
इसलिए ज्ञानियों ने संसार को माया कहा। माया अर्थात लगता है कि है, और फिर भी नहीं है। तुम्हारे सोने में ही जिसका होना है। माया अर्थात तुम्हारे सोने में ही जिसका होना है, तुम्हारे जागने में जिसकी मृत्यु है।
माया अर्थात स्वप्न। रात सोए तो स्वप्न का विस्तार है। रात सोए तो स्वप्न में सचाई है। रात सोए तो स्वप्न में यथार्थ है। आंख खुली, सब सचाई गई, सब यथार्थ मिटा। स्वप्न की राख भी नहीं बचती सुबह। भोर जब आंख खुलती है तो स्वप्नों का सारा लोक शून्य हो जाता है।
ऐसा ही संसार है। जब तक तुम सोए हो, अंतर की ज्योति नहीं जगी, तभी तक है; तुम्हारे न होने में है। तुम हुए कि मिटा।
तो संसार को गालियां मत देना। संसार की निंदा भी मत करना। उससे कुछ भी
न होगा। संसार को छोड़कर भी मत भाग जाना; उससे भी कुछ न होगा। कुछ करना हो तो जागना। कुछ वस्तुतः ही करना चाहते हो तो होश को लाना, बेहोशी तोड़ना। इधर होश आया, उधर संसार गया। छोड़ना भी नहीं पड़ता, छूट जाता है। छूट जाता है, कहना भी शायद ठीक नहीं, पाया ही नहीं जाता।
जागकर जो नहीं पाया जाता, वही संसार है। और जागकर जो पाया जाता है, वही सत्य है।
शराब पी ली तुमने--पैर डगमगाने लगे, लेकिन लगता ऐसा है, जैसे सारा संसार डगमगा रहा है। शराब पी ली तुमने--जो नहीं है, दिखाई पड़ने लगता है। जो है, अदृश्य हो जाता है। शराब पी ली तुमने--एक पर्दा आंख पर पड़ गया। एक तंद्रा छा गई भीतर के आकाश पर। बदलियां घिर गयीं बेहोशी की। छिप गया सूरज होश का। भीतर अंधकार हुआ, बाहर सब रूपांतरित हो जाता है।
अकबर एक राह से गुजरता था। एक शराबी ने बड़ी गालियां दीं मकान पर चढ़कर। नाराज हुआ अकबर। पकड़वा बुलाया शराबी को। रातभर कैद में रखा। सुबह दरबार में बुलाया। वह शराबी झुक-झुककर चरण छूने लगा। उसने कहा, क्षमा करें। वे गालियां मैंने न दी थीं।
अकबर ने कहा, मैं खुद मौजूद था। मैं खुद राह से गुजरता था। गालियां मैंने खुद सुनी हैं। किसी और गवाह की जरूरत नहीं।
उस शराबी ने कहा, उससे मैं इंकार नहीं करता कि आपने सुनी हैं। आपने जरूर सुनी होंगी, लेकिन मैंने नहीं दीं। मैं शराब पीए था। मैं होश में न

था। अब बेहोशी के लिए मुझे तो कसूरवार न ठहराओगे! शराब से निकली होंगी, मुझसे नहीं निकलीं। जब से होश आया है, तब से पछता रहा हूं।
तुमने जो कुछ किया है, बेहोशी में किया है। जब होश आएगा, पछताओगे। तुमने जो बसाया है, बेहोशी में बसाया है। जब होश आएगा तब तुम पाओगे, रेत पर बनाए महल। इंद्रधनुषों के साथ जीने की आशा रखी। कामनाओं के सेतु फैलाए, कि शायद उन से सत्य तक पहुंचने का कोई उपाय हो जाए। तुम्हारी तंद्रा में ही तुम्हारे सारे संसार का विस्तार है।
बुद्ध का पहला सूत्र हैः
"जागने वाले की रात लंबी होती है। थके हुए के लिए यात्रा लंबी होती है, योजन लंबा होता है, कोस लंबा होता है। वैसे ही सदधर्म को न जानने वाले मूढ़ों के लिए संसार बड़ा होता है।"
अल्बर्ट आइंस्टीन ने इस सदी में विज्ञान को एक सिद्धांत दिया सापेक्षवाद का। बुद्ध पुरुषों ने उस सिद्धांत को अंतरात्मा के जगत में सदियों पहले दिया था।
आइंस्टीन से कोई पूछता था कि तुम्हारा यह सापेक्षता का सिद्धांत आखिर
है क्या? इतनी चर्चा है, नोबल पुरस्कार मिला है, जगह-जगह शब्द सुना जाता है, लेकिन इसका अर्थ क्या है? तो आइंस्टीन कहता था, मुश्किल है तुम्हें समझाना।
कहते हैं कि मुश्किल से बारह लोग थे जमीन पर, जो उस सिद्धांत को ठीक से समझते थे। सिद्धांत थोड़ा जटिल है। और जटिल ही होता तो भी इतनी कठिनाई न थी, थोड़ा तर्कातीत है। थोड़ा बुद्धि की सीमाओं के उस पार चला जाता है, जहां पकड़ नहीं बैठती, जहां मुट्ठी नहीं बंधती, जहां धागे हाथ से छूट जाते हैं; जहां विचार छोटा पड़ जाता है।
पर आइंस्टीन ने धीरे-धीरे एक उदाहरण खोज लिया था। साधारण आदमी को समझाने के लिए वह कहता था कि तुम्हारा दुश्मन तुम्हारे घर आकर बैठ जाए, घड़ीभर बैठे तो ऐसा लगता है कि वर्षों बीत गए। और तुम्हारी प्रेयसी घर आ जाए, तो घंटों बीत जाएं तो ऐसा लगता है पलभर भी नहीं बीता।
समय का माप कहीं तुम्हारे मन में है। समय का माप सापेक्ष है, तुम्हारे
मन पर निर्भर है। जब तुम खुश होते हो, समय जल्दी जाता है। जब तुम दुखी होते हो, समय धीरे-धीरे रेंगता है, सरकता है, लंगड़ाता है। समय तो वही है, घड़ी की चाल वैसी ही है, तुम्हारे सुख-दुख से नहीं बदलती, लेकिन तुम्हारा अंतर-भाव समय के प्रति रूपांतरित हो जाता है। जिंदगी खुशी की हो, जल्दी बीत जाती है। जिंदगी दुख की हो, बड़ी लंबी मालूम होती है, बीतती ही मालूम नहीं होती। घर में कोई प्रियजन मरने को पड़ा हो बिस्तर पर, रात तुम्हें जागना पड़े,
तो ऐसा लगेगा, अंतहीन है, कयामत की रात है, समाप्त ही नहीं होती मालूम होती। सुबह होगी या न होगी, संदेह हो जाता है, कि कहीं ऐसा तो न हो कि अब सूरज उगे ही न! मृत्यु पास हो तो समय बहुत लंबा हो जाता है। तुमने भी अनुभव किया होगा कि समय का बोध तुम्हारे मन पर निर्भर है।
यात्रा का लंबा होना या छोटा होना, कोस की दूरी भी तुम्हारे मन पर निर्भर है। कोस तो उतना ही है। दो पत्थर लगे हैं कोस के, उनके बीच में फासला उतना ही है। लेकिन तुम प्रेयसी से मिलने जाते हो तो तुम्हारे पैरों में एक गुनगुनाहट होती है। तुम्हारे भीतर घूंघर बजते हैं। तो कोस ऐसे बीत जाता है, पता ही नहीं चलता। और अगर तुम कोई दुखद समाचार सुनने जा रहे हो, कोई पीड़ाजनक घटना का साक्षात करने जा रहे हो, तो कोस बड़ा लंबा हो जाता है। एक तो कोस है बाहर और एक कोस का मापदंड है भीतर। बाहर का कोस असली बात नहीं है, असली बात तो भीतर का कोस है। असली बात तो भीतर का समय है।
इसीलिए ठीक इसी दुनिया में जो आनंद से जीने का ढंग जानते हैं, उनकी जिंदगी की यात्रा और ही होती है। और जिन्होंने दुख से जीने की आदत बना ली है, उनकी जीवन-यात्रा स्याह रात हो जाती है, अंधेरी रात हो जाती है।
तुम पर निर्भर है। तुम अपने चारों तरफ जो अनुभव कर रहे हो, वह तुम पर निर्भर है। वस्तुतः तुम ही उसके स्रष्टा हो। तुमने जो जिंदगी पाई है, वैसी जिंदगी पाने का तुमने उपाय किया है--जानकर या अनजाने में। तुमने जो मांगा था, वही मिला है। तुमने जो चाहा था, वही हुआ है। अगर अंधेरी रात ने तुम्हें

घेरा है, तो तुम्हारे जीने का ढंग ऐसा है, जिसमें अंधेरा बड़ा हो जाता है। अगर तुम्हें प्रकाश ने, रोशनी ने घेरा है, अगर तुम्हारी जिंदगी में नृत्य है और गीत है, तो तुम्हारे जीने के ढंग पर निर्भर है।
इसी जमीन पर बुद्ध पुरुष चलते हैं, कोस मिट जाते हैं, समय शून्य हो जाता है। इसी जमीन पर बुद्ध पुरुष चलते हैं, संसार कहीं राह में आता ही नहीं।
इसी जमीन पर तुम चलते हो, तुम मंदिर में भी पहुंच जाओ तो दुकान में ही पहुंचते हो। मंदिरों का सवाल नहीं, तुम्हारा सवाल है। अंततः तुम्हीं निर्णायक हो। तुम्हारी जिंदगी तुमसे निकलती है। जैसे वृक्ष से पत्ते निकलते हैं, ऐसे ही तुम्हारी जिंदगी तुमसे निकलती है।

यह सूत्र बहुमूल्य है।
दीघा जागरतो रत्ति।

"वह जो जागता है, उसकी रात लंबी हो जाती है।"
दीघं संतस्स योजनं।

"और लंबे हो जाते हैं कोस थके-मांदे व्यक्ति के; थके-हारे व्यक्ति के।"
मैंने सुना है, अमरीका का एक बहुत बड़ा विचारक, अपनी वृद्धावस्था में दुबारा पेरिस देखने आया अपनी पत्नी के साथ। तीस साल पहले भी वे आए थे अपनी सुहागरात मनाने। फिर तीस साल बाद जब अवकाशप्राप्त हो गया वह, नौकरी से छुटकारा हुआ, तो फिर मन में लगी रह गई थी; फिर पेरिस देखने आया।
पेरिस देखा, लेकिन कुछ बात जंची नहीं। वह जो तीस साल पहले पेरिस देखा था, वह जो आभा पेरिस को घेरे थी तीस साल पहले, वह कहीं खो गई मालूम पड़ती थी। धूल जम गई थी। वह स्वच्छता न थी, वह सौंदर्य न था, वह पुलक न थी। पेरिस बड़ा उदास लगा। पेरिस थोड़ा रोता हुआ लगा। आंखें आंसुओं से भरी थीं पेरिस की। वह थोड़ा हैरान हुआ। उसने अपनी पत्नी से कहा, क्या हुआ पेरिस को? यह वह बात न रही, जो हमने तीस साल पहले देखी थी। वे रंगीनियां कहां! वह सौंदर्य कहां! वह चहल-पहल नहीं है। लोग थके-हारे दिखाई पड़ते हैं। सब कुछ एक अर्थ में वैसा ही है, लेकिन धूल जम गई मालूम पड़ती है।
पत्नी ने कहा, क्षमा करें, हम बूढ़े हो गए हैं। पेरिस तो वही है। तब हम जवान थे, हममें पुलक थी, हम नाचते हुए आए थे, सुहागरात मनाने आए थे। तो सारे पेरिस में हमारी सुहागरात फैल गई थी। अब हम थके-मांदे जिंदगी से ऊबे हुए मरने के लिए तैयार--तो हमारी मौत पेरिस पर फैल गई है। पेरिस तो वही है।
उन जोड़ों को देखें, जो सुहागरात मनाने आए हैं। उनके पैरों में अपनी स्मृतियों की पगध्वनियां सुनाई पड़ सकेंगी। उनकी आंखों से झांकें, जो सुहागरात मनाने आए हैं; उन्हें पेरिस अभी रंगा-रंग है। अभी पेरिस किसी अनूठी रोशनी और आभा से भरा है। अपनी आंखों से मत देखें, तीस साल पहले लौटें। तीस साल पहले की स्मृति को फिर से जगाएं।
ठीक कहा उस पत्नी ने। पेरिस तो सदा वही है, आदमी बदल जाते हैं। संसार
तो वही है। तुम्हारी बदलाहट--और संसार बदल जाता है। संसार तुम पर निर्भर है। संसार तुम्हारा दृष्टिकोण है।
बुद्ध यह सूत्र क्यों कहते हैं? क्या प्रयोजन है? प्रयोजन है यह बताने का कि तुम यह मत सोचना कि संसार ने तुम्हें बांधा। तुम यह मत सोचना कि संसार ने तुम्हें दुखी किया। तुम यह मत सोचना कि संसार बहुत बड़ा है, कैसे पार पा सकूंगा?
लोग कहते हैं, भवसागर है, कैसे पार पाएंगे?
बुद्ध कहते हैं, यह मत सोचना। संसार अगर बड़ा है तो तुम्हारे ही कारण। संसार छोटा हो जाता है, तुम्हारे ही कारण। भवसागर बन जाता है, अगर तुम सोए हो। सिकुड़कर दीन-हीन जल की ग्रीष्म ऋतु की रेखा रह जाती है, अगर तुम जागे हो। सोए हो तो भवसागर है, पार करना मुश्किल।
तुम्हारी तृष्णाएं ही डुबाती हैं, संसार नहीं।

तुम्हारे तृष्णाओं के तूफान ही डुबाते हैं, संसार नहीं।
तृष्णाएं गयीं, होश आया, संसार सिकुड़ा। ऐसी जलधार हो जाती है, जैसे गर्मी के दिनों में सूख गई नदी की रेखा। ऐसे ही उतर जाओ, नाव की भी जरूरत नहीं पड़ती। ऐसे ही पैदल पार कर जाओ, पंजा ही मुश्किल से डूबता है। और अगर जरा ठीक से खोजो, और भी अगर होश से भर जाओ, तो जलधार बिल्कुल ही सूख जाती है। नदी की रेत ही रह जाती है।
संसार का संसार होना तुम्हारी कामना में छिपा है। संसार तुम्हारा प्रक्षेपण है। इसलिए संसार को दोष मत देना; न संसार के ऊपर उत्तरदायित्व थोपना। स्मरण करना इस बात काः
"जागने वाले को रात लंबी होती है।"
रात वही है, लेकिन तुम जब सोए थे तो रात छोटी थी। तुम्हें पता ही न था, रात कब गुजर गई। तो तुम्हारे मनोभावों पर निर्भर है रात का लंबा या छोटा होना।
"थके हुए के लिए योजन लंबा होता है।"
तुम्हारी थकान से कोस बड़े हो जाते हैं। निराशा से कोस बड़े हो जाते हैं। फिर आशा जग जाए, फिर कोस छोटे हो जाते हैं; फिर आशा का एक नया पल्लव फूट पड़े, फिर यात्रा छोटी हो जाती है।
"वैसे ही सदधर्म को न जानने वाले मूढ़ों के लिए संसार बड़ा होता है।" सदधर्म क्या है? उसे जानना क्या है?
बुद्ध की धर्म की परिभाषा समझ लेनी चाहिए। हिंदू धर्म को बुद्ध धर्म नहीं कहते हैं; न यहूदी धर्म को बुद्ध धर्म कहते हैं। धर्मों को बुद्ध धर्म कहते ही नहीं। मजहब से बुद्ध के धर्म का कोई लेना-देना नहीं।
धर्म से बुद्ध का अर्थ हैः जीवन का शाश्वत नियम, जीवन का सनातन नियम। इससे हिंदू, मुसलमान, ईसाई का कुछ लेना-देना नहीं। इससे मजहबों के झगड़े का कोई संबंध नहीं है। यह तो जीवन की बुनियाद में जो नियम काम कर रहा है, एस धम्मो सनंतनो; वह जो शाश्वत नियम है, बुद्ध उसकी ही बात करते हैं।
और जब बुद्ध कहते हैंः धर्म की शरण जाओ, तो वे यह नहीं कहते कि किसी धर्म की शरण जाओ। बुद्ध कहते हैं, धर्म को खोजो कि जीवन का शाश्वत नियम क्या है? उस नियम की शरण जाओ। उस नियम से विपरीत मत चलो, अन्यथा तुम दुख पाओगे। ऐसा नहीं है कि कोई परमात्मा कहीं बैठा है और तुम जब-जब भूल करते हो तब-तब तुम्हें दुख देता है; और जब-जब तुम पाप करते हो तब-तब तुम्हें दंड देता है। कहीं कोई परमात्मा नहीं है। बुद्ध के लिए संसार एक नियम है। अस्तित्व एक नियम है। तुम जब उससे विपरीत जाते हो, विपरीत जाने के कारण कष्ट पाते हो।
गुरुत्वाकर्षण है जमीन में। तुम शराब पीकर उलटे-सीधे डांवाडोल चलो, गिर पड़ो, घुटना फूट जाए, हड्डी टूट जाए, तो कुछ ऐसा नहीं है कि परमात्मा ने शराब पीने का दंड दिया। बुद्ध के लिए ये बातें बचकानी हैं। बुद्ध कहते हैं, परमात्मा कहां बैठा है किसी को शराब पीने के लिए दंड देने को? शराबी खुद ही डगमगाया। शराब ने ही दंड दिया। शराब ही दंड बन गई।
गुरुत्वाकर्षण का नियम--कि तुम अगर डांवाडोल हुए, उलटे-सीधे गिरे, हड्डी-पसली टूट जाएगी। सम्हलकर चलो। गुरुत्वाकर्षण का नियम काम कर रहा है, उससे विपरीत मत चलो। उसके साथ हो लो। उसके हाथ में हाथ डाल लो, फिर तुम्हारी हड्डियां न टूटेंगी। फिर तुम गिरोगे न। गुरुत्वाकर्षण का नियम ही तुम्हें सम्हाल लेगा।
ऐसा समझो कि जो नियम के साथ चलते हैं, उनको नियम सम्हाल लेता है। और जो नियम के विपरीत जाते हैं, वे अपने ही हाथ से गिर पड़ते हैं।
जीवन का कौन सा नियम शाश्वत है? जीवन का कौन सा नियम सबसे गहरा है? तुम्हारे भीतर जो चैतन्य है, सभी कुछ उस चैतन्य के प्रति सापेक्ष है। सभी कुछ उसी चैतन्य से निर्भर होता है। सभी कुछ तुम्हारी दृष्टि का खेल है। यह नियम सबसे ज्यादा गहरा है।
राह से तुम चलते हो, कंकड़ पड़ा दिखाई पड़ जाता है। सूरज की सुबह की रोशनी में ऐसे चमकता है, जैसे हीरा हो। दौड़कर तुम उठा लेते हो। कंकड़ ने नहीं दौड़ाया, हीरा भी नहीं दौड़ा सकता; तुम्हारी वासना फैली। तुम्हारी वासना ने

धोखा खाया। तुम्हारी वासना रंगीन पत्थर पर टिक गई। तुम्हारे भीतर सुगबुगाहट उठी। तुम्हारे भीतर वासना में पल्लव आए, सपने जगे, कि हीरा! लाखों-करोड़ों का क्षणभर में हिसाब हो गया। दौड़ पड़े। पता भी न चला, कब दौड़े। हीरे ने नहीं दौड़ाया। हीरा तो वहां है ही नहीं, दौड़ाएगा क्या! पास पहुंचे, हाथ में उठाया, सूरज की रोशनी का जाल टूट गया। पाया कंकड़ है, वापस फेंक दिया। शिथिल अपने रास्ते पर चल पड़े। उदास हो गए। विषाद हुआ, हार हुई, अपेक्षा टूटी।
कंकड़ ने दुख दिया? कंकड़ बेचारा क्या दुख देगा! कंकड़ को तो पता ही न चला
कि तुम क्यों दौड़े? तुम क्यों पास आए? तुम क्यों प्रफुल्लित दिखाई पड़े? तुम क्यों अचानक उदास हुए? कंकड़ को कुछ पता ही न चला। सब खेल तुम्हारा था। दौड़े वासना से भरे, ठिठके, झुके, उदास हुए, फिर अपनी राह पर चल पड़े। भर्तृहरि ने घर छोड़ा। देख लिया सब। खूब देखकर छोड़ा। बहुत कम लोग इतने पककर छोड़े संसार को, जैसा भर्तृहरि ने छोड़ा। अनूठा आदमी रहा होगा भर्तृहरि। खूब भोगा। ठीक-ठीक उपनिषद के सूत्र को पूरा कियाः तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। खूब भोगा। एक-एक बूंद निचोड़ ली संसार की। लेकिन तब पाया कि कुछ भी नहीं है; अपने ही सपने हैं, शून्य में भटकना है।
भोगने के दिनों मेंशृंगार पर अनूठा शास्त्र लिखा,शृंगार-शतक। कोई मुकाबला नहीं। बहुत लोगों नेशृंगार की बातें लिखी हैं, पर भर्तृहरि जैसा स्वाद किसी नेशृंगार का कभी लिया ही नहीं। भोग के अनुभव सेशृंगार के शास्त्र का जन्म हुआ। यह कोई कोरे विचारक की बकवास न थी, एक अनुभोक्ता की अनुभव-सिद्ध वाणी थी।शृंगार-शतक बहुमूल्य है। संसार का सब सार उसमें है। लेकिन फिर आखिर में पाया, वह भी व्यर्थ हुआ। छोड़कर जंगल चले गए। फिर वैराग्य-शतक लिखा, फिर वैराग्य का शास्त्र लिखा। उसका भी कोई मुकाबला नहीं है। भोग को जाना तो भोग की पूरी बात की, फिर वैराग्य को जाना तो वैराग्य की पूरी बात की।
जंगल में एक दिन बैठे हैं। अचानक आवाज आई। दो घुड़सवार भागते हुए चले आ रहे हैं दोनों दिशाओं से। चट्टान पर बैठे हैं, छोटी सी पगडंडी है। घोड़ों की आवाज से आंख खुल गई। आंख बंद किए बैठे थे। आंख खुली तो सूरज की रोशनी में सामने ही पड़ा एक बहुमूल्य हीरा देखा। बहुत हीरे देखे थे, बहुत हीरों के मालिक रहे थे, पर ऐसा हीरा खुद भी नहीं देखा था। एक क्षण में छलांग लग गई। एक क्षण में मन ने वासना जगा ली। एक क्षण में मन भूल गया वैराग्य। एक क्षण में मन भूल गया वे सारे अनुभव विषाद के। वह सारा अनुभव भोग का। वह तिक्तता, वह कडुवाहट, वह तल्खी जो मन में छूट गई थी भोग से! सब भूल गया। एक क्षण में वासना उठ गई। एक क्षण को ऐसा लगा कि उठे-उठे--और उसी क्षण ख्याल भी आ गया, अरे पागल! सब छोड़कर आया, व्यर्थता जानकर आया, फिर भी कुछ शेष बचा मालूम पड़ता है। अभी भी उठाने का मन है?
बैठ गए। किसी को भी पता न चला। कानों-कान खबर न हुई। यह तो भीतर की बात थी। कोई बाहर से देखता भी होता तो पता न चलता। क्योंकि यह तो भीतर ही वासना उठी, भीतर ही बैठ गई। संसार उठा और गया। एक क्रांति घट गई। एक इंकलाब हो गया।
और तभी वे दोनों घुड़सवार आकर खड़े हो गए। दोनों ने अपनी तलवारें हीरे
के पास रोक दीं। और दोनों ने कहा, पहले मेरी नजर पड़ी है। कोई निर्णय तो हो न सकता था। तलवारें खिंच गयीं। क्षणभर में दो लाशें पड़ी थीं--तड़फती! लहूलुहान! हीरा अपनी जगह पड़ा था। सूरज की किरणें अब भी चमकती थीं। हीरे को तो पता भी न चला होगा कि क्या-क्या हो गया!
सब कुछ हो गया वहां। एक आदमी का संसार उठा और वैराग्य हो गया। एक आदमी
का संसार उठा और मौत हो गई। दो आदमी अभी-अभी जीवित थे, अभी-अभी श्वास चलती थी, खो गई। प्राण गंवा दिए पत्थर पर। और एक आदमी वहीं बैठा जीवन के सारे अनुभवों से गुजर गया--भोग के और वैराग्य के; और सबके पार हो गया, साक्षीभाव जग गया।
भर्तृहरि ने आंख बंद कर ली। वे फिर ध्यान में डूब गए।
जीवन का सबसे गहरा सत्य क्या है? तुम्हारा चैतन्य। सारा खेल वहां है।
सारे खेल की जड़ें वहां हैं। सारे संसार के सूत्र वहां हैं।

तो बुद्ध कहते हैं, "जिसने सदधर्म को न जाना उन मूढ़ों के लिए संसार बहुत बड़ा है। भवसागर अपार है। पार करना असंभव है।"
बुद्ध कहते हैं, नावें मत खोजो। नावों की कोई जरूरत नहीं है। जागो! सदधर्म में जागो। भवसागर सिकुड़ जाता है। पैदल ही उतर जाते हैं।
तुम्हें अपना पता हो जाए तो तुम इतने बड़े हो कि संसार बिल्कुल छोटा हो जाता है। तुम्हारी तुलना में ही संसार का बड़ा होना या छोटा होना है। तुम्हारी अपेक्षा में। तुम बड़े छोटे हो गए हो। तुम्हारे छोटे होने के कारण संसार बड़ा दिखाई पड़ता है। जागो, तो तुम पाओ कि तुम विराट हो। तुम पाओ कि तुम विशाल हो। तुम पाओ कि तुम अनंत और असीम हो। संसार छोटा हो जाता है। जिसने अपने भीतर को जाना, बाहर का सब सिकुड़ जाता है। और जो बाहर- बाहर
ही भटका, भीतर सिकुड़ता जाता है। और यह जो बाहर की तरफ जीने वाला आदमी है, यह जिंदगी तो गंवाता ही है, मरने के आखिरी क्षण तक भी इसे होश नहीं आता। मौत भी इसे जगा नहीं पाती। मौत भी तुम्हें सावधान नहीं कर पाती। मौत भी तुम्हें होश नहीं दे पाती। और क्या चाहते हो? जीवन में सोए रहते हो, समझ में आता है; लेकिन मौत का ख्याल भी तुम्हें तिलमिलाता नहीं? मौत भी द्वार पर आ जाती है तो भी आदमी बाहर की ही दौड़ में लगा रहता है। सोचता ही रहता है। काबा की तरफ दूर से सिजदा कर लूं
या दहर का आखिरी नजारा कर लूं
मरते वक्त भी, मरण-शय्या पर भी आदमी के मन में यही सवाल उठते रहते हैं-- काबा की तरफ दूर से सिजदा कर लूं
या दहर का आखिरी नजारा कर लूं
मंदिर को प्रणाम कर लूं, या इतनी देर संसार को और एक बार देख लूं!
या दहर का आखिरी नजारा कर लूं
कुछ देर की मेहमान है जाती दुनिया
एक और गुनाह कर लूं कि तोबा कर लूं
जा रही है दुनिया।
कुछ देर की मेहमान है जाती दुनिया
जरा और थोड़ा समय हाथ में है।
एक और गुनाह कर लूं कि तोबा कर लूं
पश्चात्ताप में गंवाऊं यह समय कि एक पाप और कर लूं!
यह तुम्हारी कथा है। यह तुम्हारे मन की कथा है। यही तुम्हारी कथा है, यही तुम्हारी व्यथा भी। मरते दम तक भी आदमी भीतर देखने से डरता है। सोचता है, थोड़ा समय और! थोड़ा और रस ले लूं। थोड़ा और दौड़ लूं।
इतना दौड़कर भी तुम्हें समझ नहीं आती कि कहीं पहुंचे नहीं। इतने भटककर
भी तुम्हें ख्याल नहीं आता कि बाहर सिवाय भटकाव के कोई मंजिल नहीं है। जिन्हें ख्याल आ जाता है, मौत तक नहीं रुकते। जिन्हें ख्याल आ जाता है, जिस क्षण ख्याल आ जाता है, उसी क्षण उनके लिए मौत घट गई। और उसी दिन एक नए जीवन का आविर्भाव होता है, एक पुनर्जन्म होता है। वह पुनर्जन्म ही सदधर्म है। उस दिन से ही भीतर की यात्रा शुरू होती है। उस दिन से चेतना के विस्तार में जाना शुरू होता है।
"विचरण करते हुए अपने से श्रेष्ठ या अपने समान कोई साथी न मिले तो दृढ़ता के साथ अकेला ही विचरण करे। मूढ़ का साथ अच्छा नहीं है।"
"विचरण करते हुए... ।"
जिन्होंने सदधर्म का सूत्र पकड़ा, जो अपने भीतर की यात्रा पर चले, उन्हें कुछ बातें याद रखनी जरूरी हैं। पहलीः
"विचरण करते हुए अपने से श्रेष्ठ या अपने समान कोई साथी न मिले तो दृढ़ता के साथ अकेला ही विचरण करे। मूढ़ का साथ अच्छा नहीं है।"
क्यों? जिन्हें भीतर जाना हो, उन्हें किसी ऐसे व्यक्ति का साथ नहीं पकड़ना चाहिए, जो अभी बाहर जा रहा हो। क्योंकि उसके कारण तुम्हारे जीवन में द्वंद्व और बेचैनी और अड़चन आएगी। ऐसे किसी व्यक्ति का साथ नहीं पकड़ना चाहिए, जो अभी भी प्रायश्चित्त करने को तैयार नहीं, अभी भी पाप की योजना बना रहा है।
एक और गुनाह कर लूं कि तोबा कर लूं

जो अभी सोच रहा है--
काबा की तरफ दूर से सिजदा कर लूं
या दहर का आखिरी नजारा कर लूं
उसके साथ तुम्हारा होना खतरे से खाली नहीं। क्योंकि उसके साथ होने का
एक ही मार्ग है, या तो वह तुम्हारे साथ भीतर जाए, या तुम उसके साथ बाहर जाओ। और बाहर जाने वाले लोग बड़े जिद्दी हैं। बाहर जाने वाले लोग बड़े हठी हैं। बाहर जाने वाले लोग चट्टानों की तरह कड़े हैं। और तुम अभी नए-नए भीतर की तरफ चले हो। तुम अभी नए-नए अंकुर हो, और बाहर जाने वाला कड़ी चट्टान है।
यह संग-साथ ठीक नहीं। यह खतरनाक है। डर यही है कि तुम्हारा अंकुर टूट जाए, चट्टान न टूटे। डर यही है कि तुम तो उसे भीतर न ले जा पाओ, वही तुम्हें बाहर ले जाए।
तो बुद्ध कहते हैं, संग ही करना हो तो सत्संग करना। अगर धर्म की यात्रा पर जाना हो तो उनके साथ होना, जो धर्म की यात्रा पर कम से कम तुम्हारे जितने तो भीतर हों ही। अगर कोई आगे गया मिल जाए तो सौभाग्य! लेकिन अपने से ज्यादा मूढ़ व्यक्तियों का साथ मत करना। मूढ़ता बड़ी वजनी है, तुम्हें डुबा लेगी। तुम उसे उबारने के ख्याल में मत पड़ना। तुम उसे उबार सकोगे तभी, जब तुम अपने केंद्र पर पहुंच गए; जब तुम्हारी यात्रा सफल हुई; जब तुम्हारे भीतर कोई संदेह न रहा।
शुरू-शुरू में तो बड़े संदेह होते हैं, जो स्वाभाविक है। जो आदमी भी भीतर की तरफ जाना शुरू करता है, हजार संदेह पकड़ते हैं। क्योंकि सारा संसार बाहर जा रहा है। तुम अकेले निकलते हो एक पगडंडी पर। राजपथ से उतरते हो। हजार डर घेर लेते हैं। अंधेरा मार्ग! मील के कोई निशान नहीं। नक्शा कोई साथ नहीं। पहुंचोगे या भटकोगे?
राजपथ पर पहुंचो या न पहुंचो, नक्शा साफ है। मील के किनारे पत्थर के निशान लगे हैं। हर मील पर हिसाब है। कहीं पहुंचता नहीं यह रास्ता, लेकिन बिल्कुल साफ-सुथरा है, कंटकाकीर्ण नहीं है। और फिर हजारों-करोड़ों की भीड़ है। उस भीड़ में भरोसा रहता है। इतने लोग जाते हैं तो ठीक ही जाते होंगे। इतने लोग भूल तो न करेंगे!
यही तो तर्क हैं तुम्हारे। भीड़ का तर्क है। वह तर्क यह है कि इतने लोग भूल तो न करेंगे। इतने लोग नासमझ तो न होंगे। एक तुम्हीं समझदार हो? करोड़ों-करोड़ों जन, जो राजपथ पर चल रहे हैं और सदा से चल रहे हैं, जिनकी भीड़ कभी चुकती नहीं, एक गिरता है तो दूसरा आ जाता है और सम्मिलित हो जाता है, भीड़ बढ़ती ही चली जाती है, जरूर कहीं जाते होंगे, अन्यथा इतने लोगों को कौन धोखे में रखेगा?
अकेला आदमी जब चलना शुरू करता है तो पैर डगमगाते हैं। संदेह, शंकाओं
का तूफान उठ आता है। आंधियां घेर लेती हैं अकेले आदमी को। वह जो भीड़ का संग-साथ था, वह जो भीड़ का आसरा था, सुरक्षा थी, सांत्वना थी, राहत थी, साया था, सब छूट जाता है। अकेले हैं। अकेले तुम्हारे भीतर जो-जो दबा रखा था तुमने, सब प्रकट होने लगता है। पत्ते हिलते हैं तो भय लगता है। हवा चलती है तो भय लगता है। भीड़ में भरोसा था। इतने लोग साथ थे, भय कैसा!
तुमने देखा? रास्ता निर्जन हो तो डर लगता है। भीड़-भाड़ हो तो डर नहीं लगता। हालांकि लुटेरे सब भीड़-भाड़ में हैं। निर्जन में लुटेरा भी नहीं। रोशनी हो तो डर नहीं लगता, अंधेरे में डर लगता है। क्यों? अंधेरे में तुम एकदम अकेले हो जाते हो। कोई दूसरा हो भी तो दिखाई नहीं पड़ता। तुम बिल्कुल अकेले हो जाते हो।
मैं एक घर में मेहमान था। उस घर में एक छोटा बच्चा था। वह बड़ा भयभीत था भूत-प्रेतों से। तो घर के लोग उसे मेरे पास ले आए। उन्होंने कहा, कुछ इसको समझाएं। इसको न मालूम कहां से यह भय पकड़ गया है। तो घर का जो पाखाना था, वह आंगन के पार था। वहां इसको अगर जाना पड़ता है तो किसी को साथ ले जाना पड़ता है रात। वह बाहर खड़ा रहे तो ही यह अंदर रहता है, नहीं तो यह बाहर निकल आता है।

तो मैंने उसको कहा कि अगर तुझे अंधेरे से डर लगता है, तो दिन में तो डर नहीं लगता? उसने कहा, दिन में बिल्कुल नहीं लगता। तो मैंने कहा, तू लालटेन लेकर चला जाया कर।
उसने कहा, क्षमा करिए! अंधेरे में तो किसी तरह मैं उन भूत-प्रेतों से बचकर निकल भी आता हूं। और लालटेन में तो वे मुझे देख ही लेंगे।
मुझे उसकी बात जंची। अंधेरे में तो किसी तरह धोखा-धड़ी देकर, यहां-वहां
से भागकर वह निकल ही आता है। लालटेन में तो और मुसीबत हो जाएगी। ख्याल करना, उजाले में ज्यादा डर हो सकता है, क्योंकि दूसरा भी तुम्हें देख रहा है। अंधेरे में क्या डर है? न तुम दूसरे को देखते हो, न दूसरा तुम्हें देखता है।
उस भयभीत बच्चे का तर्क महत्वपूर्ण है। लेकिन अंधेरे में डर लगता है।
डर का कारण यह नहीं है कि कोई तुम्हें नुकसान पहुंचा देगा। डर का कारण बुनियादी यही है कि तुम अकेले हो गए। जहां भी तुम अकेले हो जाते हो, वहां घबड़ाहट पकड़ने लगती है। तुम्हारे सब सोए भय उठने लगते हैं, जो दूसरों की मौजूदगी में दबे रहते हैं। दूसरों की मौजूदगी में आदमी अपनी दृढ़ता बनाए रखता है। एकांत में सब भय उभरने लगते हैं।
तो भीड़ से हटकर चलना कठिन है। मन होगा कि किसी का साथ पकड़ लें। बुद्ध कहते हैं, साथ पकड़ना ही हो तो या तो अपने से श्रेष्ठ का पकड़ना जो तुमसे आगे गया हो, जो तुमसे ज्यादा भीतर गया हो; कि उसके साथ उसकी लहर पर सवार होकर तुम भी भीतर की यात्रा पर पहुंचने में सुगमता पाओ। अगर यह न हो, अगर कोई सदगुरु न मिले, आगे गया हुआ व्यक्ति न मिले, तो कम से कम ऐसे का साथ पकड़ना, जो कम से कम उतना तो जा ही रहा हो, जितना तुम गए हो। अगर आगे ले जाने में साथी न बने, तो कम से कम पीछे ले जाने का कारण न बने। और अगर यह भी न हो सके-- क्योंकि यह भी बहुत मुश्किल है--तो अकेले ही विचरना। मूढ़ का साथ अच्छा नहीं।
और एक बात स्मरण रखना, अकेले ही तुम आए हो, अकेले ही तुम जाओगे। सब संग-साथ मन को समझाने की बातें हैं। इसलिए अकेले होने की कला तो सीखनी ही पड़ेगी।
और यह भी ख्याल रखने की बात है कि जितना आदमी अपने भीतर गया होगा, उसके साथ तुम उतना ही साथ भी पाओगे और अपने को अकेला भी पाओगे। भीड़ पैदा होती है बहिर्मुखी व्यक्तियों से। अंतर्मुखी व्यक्तियों से भीड़ पैदा नहीं होती। यह बड़ा चमत्कार है।
अगर एक कमरे में दस अंतर्मुखी व्यक्ति बैठे हों, तो दस व्यक्ति नहीं बैठे हैं; एक-एक व्यक्ति बैठा है। अंतर्मुखी व्यक्ति अपने भीतर हैं, बाहर कोई सेतु नहीं बनाते। अगर दस बहिर्मुखी व्यक्ति बैठे हों तो दस नहीं बैठे हैं, भीड़ दस हजार की है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति बाकी दस से जुड़ रहा है। और हजार तरह के संबंध पैदा हो रहे हैं। अंतर्मुखी व्यक्ति अगर साथ भी होते हैं तो एक-दूसरे को अकेला छोड़ते हैं।
जिसके साथ होकर भी तुम अकेले रह सको, वही साथ करने योग्य है। जिसके साथ होकर भी तुम्हारा अकेलापन दूषित न हो, जिसके साथ होकर भी तुम्हारे अकेलेपन का व्यभिचार न हो; तुम्हारा कुंआरापन कायम रहे; तुम्हारी तन्हाई, तुम्हारा एकांत शुद्ध रहे; जो अकारण तुम्हारी तन्हाई में प्रवेश न करे; जो तुम्हारी सीमाओं का आदर करे; जो तुम्हारे एकांत को व्यर्थ ही नष्ट-भ्रष्ट न करे; जो आक्रामक न हो; तुम जब बुलाओ तो पास आए, उतना ही पास आए जितना तुम बुलाओ; तुम जब अपने भीतर जाओ तो तुम्हें अकेला छोड़ दे... ।
बुद्ध ने भिक्षुओं का बड़ा संघ खड़ा किया। बुद्ध के भिक्षुओं के संघ की परिभाषा यही हैः ऐसे लोगों का संग-साथ, जो संग होते भी संग नहीं होते; जिनका अकेलापन कायम रहता है। क्योंकि अंतर्मुखी व्यक्ति जो अपने भीतर जा रहे हैं, वे दूसरे से संबंध नहीं बनाते।
दस हजार भिक्षु बुद्ध के साथ चलते थे। बड़ी भीड़ थी। एक पूरा गांव था। लेकिन ऐसा सन्नाटा छाया रहता था, जैसे बुद्ध अकेले चलते हों। दस हजार लोग चलते थे, अकेले-अकेले चलते थे। दस हजार लोग साथ-साथ नहीं चलते थे। अपने- अपने भीतर जा रहे हैं। अपनी-अपनी मस्ती में हैं। दूसरे से सेतु नहीं बनाते

हैं। दूसरे से संबंध नाममात्र का है। इतना ही संबंध है कि दोनों ही एक ही अंतर्यात्रा पर जा रहे हैं। लेकिन अंतर्यात्रा का मार्ग राजपथ जैसा नहीं है, पगडंडियों जैसा है। और हर व्यक्ति को अपने भीतर की पगडंडी अपनी ही खोजनी पड़ती है।
यह हुजूमे-गम है महदूदे-हुदूदे-जिंदगी
आदमी आया है तनहा और तनहा जाएगा
जिंदगी तो दुखों की एक भीड़ है; दुखों का एक समूह है। और जितने तुम समूह में बंधते हो, उतने तुम इस दुखों के समूह में ही बंधते हो। और एक बात भूलती चली जाती है कि तुम अकेले आए हो और अकेले जाओगे।
काश! तुम अकेलेपन को यहां भी पवित्र रख सको, तो तुम संन्यस्त हो। संन्यासी वह नहीं है, जो जंगल के एकांत में चला गया। संन्यासी वह है, जिसने भीड़ में अपने एकांत को पा लिया। जो साथ होकर भी साथ नहीं। जो साथ होकर भी दूर-दूर है। जो पास होकर भी दूर-दूर है। वह अपने में है, तुम अपने में हो। तो ऐसे मित्र खोजना, जो तुम्हें बाहर न खींचें।
इसलिए बुद्ध कहते हैं, "मूढ़ का साथ अच्छा नहीं।"
मूढ़ का मतलब ही है, बाहर जाता हुआ आदमी। अमूढ़ का अर्थ है, भीतर जाता हुआ आदमी। मूढ़ का अर्थ है, वस्तुओं के प्रति जाता हुआ आदमी। अमूढ़ का अर्थ है, चैतन्य के प्रति जाता हुआ आदमी। मूढ़ता का अर्थ है, मूर्च्छा। अमूढ़ता का अर्थ है, अमूर्च्छा, जागरण, अवेयरनेस।
"पुत्र मेरे हैं, धन मेरा है, इस प्रकार मूढ़ चिंतारत होता है। परंतु मनुष्य जब अपना आप नहीं है, तब पुत्र और धन अपने कैसे होंगे?"

अत्ता ही अत्तनो नत्थि।

"अपने भी हम अपने नहीं हैं।"

कुतो पुत्तो कुतो धनं।

"तो धन और पुत्र तो हमारे कैसे होंगे?"
हम ही अपने नहीं हैं। हम ही अपने से पराए हैं। इसे थोड़ा समझें।
मूढ़ का अर्थ है, जो कहता है, पुत्र मेरे हैं, धन मेरा है। वस्तुओं की तरफ, संबंधों की तरफ तृष्णातुर भागती चेतना का नाम मूढ़ता है। वस्तुएं मेरी हैं। जो अपने होने के बोध को वस्तुओं के संग्रह से बढ़ाता है। इतनी वस्तुएं मेरी हैं, इतना बड़ा राज्य मेरा है, इतना धन मेरे पास है, इतने मेरे पुत्र हैं, इतने मेरे संबंधी हैं, इतने मेरे मित्र हैं--जो इस भांति अपने को फैलाता है।
यह फैलाव ही संसार है। जितनी बड़ी यह फैलाव की व्यवस्था हो जाती है, उतना ही जो अकड़कर चलता है कि मैं बड़ा हूं। वस्तुओं के सहारे जो बड़ा होने की सोच रहा है। सीढ़ियों पर चढ़कर जो सोचता है, हम ऊंचे हो जाएंगे। काश, बात इतनी आसान होती!
तुमने छोटे बच्चों को देखा होगा। बाप बैठा हो तो कुर्सी के पास स्टूल रखकर खड़े हो जाते हैं। वे कहते हैं, देखो, मैं तुमसे बड़ा हूं।
सीढ़ियों पर चढ़कर जो सोचता हो कि हम ऊंचे हो जाएंगे। सीढ़ियों पर चढ़कर शरीर ऊपर पहुंच जाएगा, लेकिन तुम्हारी ऊंचाई तो भीतर की वही की वही रहेगी। तुम जो थे, वही के वही रहोगे। क्या फर्क पड़ेगा?
आदमी को चांद पर पहुंचा दो, आदमी आदमी ही रहेगा। यही बीमारियां! यही उपद्रव! आदमी को चांद पर बसा दो; आदमी ऐसे ही युद्ध करेगा, ऐसी ही हिंसा! यही खून और खराबी! यही उत्पात! कोई फर्क न पड़ेगा। चांद की ऊंचाई से आदमी में थोड़े ही ऊंचाई आती है!
आदमी तो एक ही ऊंचाई से ऊंचा होता है--वह चैतन्य की ऊंचाई है; वह चैतन्य का ऊर्ध्वगमन है। सीढ़ियां चढ़ने से नहीं, आत्मा चढ़ने से। बाहर के सोपानों पर यात्रा करने से नहीं, भीतर के सोपानों पर यात्रा करने से।

एक तो गौरीशंकर बाहर है, उस पर तुम चढ़ जाना। तेनसिंह चढ़ा, और चढ़े लोग, हिलेरी चढ़ा। इससे कोई मनुष्यता की ऊंचाई थोड़े ही आ जाती है! एक गौरीशंकर भीतर है। उसको ही हम समाधि का शिखर कहते हैं। उसी को हमने कैलाश कहा है। उसी शिखर पर शिव का निवास है। उसी शिखर पर बुद्धों का वास है।
कहना चाहिए, तुम्हारी प्रबुद्धता में, तुम्हारे रोज-रोज जागने में एक घड़ी ऐसी आती है कि तुम्हारे भीतर कोई भी सोया हुआ कण नहीं रह जाता। सब जाग गया होता है। सब रोशन! एक भी कोना तुम्हारे अंतर का अंधकार में भरा नहीं रह जाता, दबा नहीं रह जाता। भीतर बस रोशनी ही रोशनी हो जाती है। तुम नहाए हुए-- भीतर की सूरज की रोशनी में! तुम अपने शिखर पर प्रतिष्ठित! तुम कैलाश को उपलब्ध!
सहस्रार कहा है योगियों ने उसे। तुम्हारी आखिरी ऊंचाई चैतन्य की। कहो परमात्मा, समाधि, संबोधि, निर्वाण, मोक्ष। अंतर नहीं पड़ता शब्दों से। लेकिन भीतर की कुछ सीढ़ियां चढ़नी हैं।
मूढ़ वही है, जो बाहर की सीढ़ियां चढ़ रहा है; और बाहर की सीढ़ियों पर भरोसा कर रहा है; और सोचता है, सीढ़ियों पर चढ़कर मैं चढ़ जाऊंगा। बाहर धन इकट्ठा करता है और सोचता है, इससे मेरी निर्धनता मिट जाएगी। निर्धनता मिटती है जरूर, पर भीतर का धन खोजना पड़ता है। भीतर है निर्धनता, तो भीतर के धन से ही मिटेगी। बाहर के धन से भीतर की निर्धनता कैसे मिटेगी? साम्राज्य बड़ा होता जाएगा। तुम तो जैसे थे, वैसे ही रहोगे। भय है कि कहीं और न सिकुड़ जाओ। क्योंकि साम्राज्य बढ़ाने में तुम्हें आत्मा गंवानी पड़ेगी। साम्राज्य बड़ा करना हो तो तुम्हें चुकाना पड़ेगा मूल्य अपनी आत्मा के कतरों से। तोड़-तोड़कर, बांट-बांटकर अपने को मिटाना पड़ेगा।
"पुत्र मेरे हैं, धन मेरा है, इस प्रकार मूढ़ चिंतारत होता है।"
मूढ़ की सारी चिंता यही है। अगर मूढ़ की खोपड़ी में उतरो तो धन, पद, पुत्र, इनके अतिरिक्त तुम कुछ भी न पाओगे। तुम ऐसा कूड़ा-करकट पाओगे कि मूढ़ की खोपड़ी, जैसे म्युनिसपल का कचरा-घर हो, जिसमें जन्मों से कोई सफाई नहीं हुई है। वह तो अच्छा है कि खोपड़ी में परमात्मा ने खिड़कियां नहीं बनायीं। नहीं तो कोई तुम्हारी खोपड़ी में झांक ले तो सब रहस्य खुल जाए!
तो ऊपर हम मुस्कुराए चले जाते हैं। ऊपर से हम अपने को सुंदर बना लेते हैं, मुस्कुराहटों में ढांक लेते हैं, फूलों में सजा लेते हैं।
इससे क्या फायदा रंगीन लबादों के तले
रूह जलती रहे, घुलती रहे, पजमुर्दा रहे
ओंठ हंसते हों दिखावे के तबस्सुम के लिए
दिल गमे-जीस्त से बोझिल रहे, आजुर्दा रहे
इससे क्या फायदा रंगीन लबादों के तले
खूब रंगीन कपड़ों में हम अपने को छिपा लेते हैं। शायद दूसरों को धोखा
भी हो जाता हो रंगीन लबादों के कारण, मखमली लिबास के कारण। इन रंग-बिरंगे इंद्रधनुषी वस्त्रों के कारण शायद दूसरों को धोखा भी हो जाता हो--लेकिन नहीं, दूसरों को भी न होता होगा। क्योंकि वे भी तो यही कर रहे हैं। उन्हें भी तो तुम्हारा गणित मालूम है। उनका भी तो यही गणित है।
इससे क्या फायदा रंगीन लबादों के तले
रूह जलती रहे...
किसे धोखा दे रहे हो? धन इकट्ठा होता जाता है, भीतर निर्धनता खलती है, सालती है। तुमने अमीर आदमियों में थोड़ा झांककर देखा? उनकी जलती रूह देखी? तुम वहां भीतर छिपे हुए भिखारी पाओगे। भिखारियों से भी बदतर भिखारी पाओगे। क्योंकि भिखारी की भिक्षा तो उसके पात्र के भर जाने से पूरी हो जाती है। फिर फिक्र छोड़ देता है। फिर रात पैर फैलाकर सो जाता है वृक्ष के तले। अमीर का भिखमंगापन रात भी जारी रहता है। उसके सपनों में भी छाया रहता है। उसके सपनों में भी वही धन की दौड़ जारी रहती है। भिक्षा-पात्र हाथ में रहता है। भिखारी के भिक्षा-पात्र की तो सीमा है। कल की तो चिंता नहीं। आज रोटी मिल गई, बहुत! धनी के भिक्षा-पात्र कभी नहीं भरते।
इससे क्या फायदा रंगीन लबादों के तले
रूह जलती रहे, घुलती रहे, पजमुर्दा रहे

मुर्झाई आत्मा को लेकर अगर तुमने बहुत फूल भी अपने चारों तरफ सजा लिए
और आत्मा मुर्झाती गई, इससे क्या फायदा!
ओंठ हंसते हों दिखावे के तबस्सुम के लिए
और सिर्फ इसलिए हंसते हों कि लोगों को तुम्हारी मुस्कुराहट का ख्याल बना रहे और भीतर आंसू दबे हों--इससे क्या फायदा!
ओंठ हंसते हों दिखावे के तबस्सुम के लिए
दिल गमे-जीस्त से बोझिल रहे...
और जिंदगी और हृदय सिर्फ दुख में दबा रहे--आजुर्दा रहे, दुखी रहे। भीतर नर्क हो और बाहर तुमने झूठे किस्से और कहानियां अपने संबंध में फैला रखे हों। नहीं, इससे कुछ भी फायदा नहीं।
"पुत्र मेरे हैं, धन मेरा है, इस प्रकार मूढ़ चिंतारत होता है।"
ऐसे वह लबादों के संबंध में ही सोचता रहता है। रूह जलती रहती है, आत्मा सड़ती रहती है। भीतर नासूर बनते जाते हैं। भीतर आंसू इकट्ठे होते जाते हैं। और ऊपर से वह झूठी मुस्कुराहटों का अभ्यास करता चला जाता है। किसे तुम धोखा देते हो? तुम अपनी ही जिंदगी के साथ बड़ा खेल करते हो! किसी और को यह धोखा नहीं, यह आत्मघात है। यह आत्महत्या है।
"परंतु मनुष्य जब अपना आप नहीं है, तब पुत्र और धन अपने कैसे होंगे?"
अपने आप भी! तुम थोड़ा सोचो, अपने नहीं हो। मौत आ जाएगी, क्या करोगे? मौत ले जाएगी, क्या करोगे? अपने आप भी तो हम अपने मालिक नहीं!
लाई हयात आए कजा ले चली चले
जन्म हो गया, ठीक। मौत आ गई, ठीक। अपने भी तो हम मालिक नहीं हैं। इस स्थिति में तुम और किसके मालिक होने के पागलपन में पड़े हो? पति सोचता है, पत्नी का मालिक है। पति शब्द का मतलब ही मालिक होता है। अपने तुम मालिक नहीं, किसके पति होने के पागलपन में पड़े हो?
कल एक मित्र ने संन्यास लिया और पूछा कि मैं संन्यासियों को स्वामी क्यों कहता हूं?
याद दिलाने को कि जब तक तुम अपने स्वामी नहीं, तब तक किसी और चीज के स्वामी होने के पागलपन में मत पड़ना।
दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं। एक, जो अपने मालिक हैं--संन्यस्त। जो अपनी मालकियत की खोज में हैं कम से कम--संन्यस्त। जिन्हें कम से कम यह समझ में आ गया कि और कोई मालकियत काम की नहीं। सब मालकियत धोखे की हैं। चीखते रहो, चिल्लाते रहो, मेरा मकान है; मकान यहीं पड़ा रह जाता है, तुम चले जाते हो।
सब ठाठ पड़ा रह जाएगा
जब लाद चलेगा बंजारा
जो तुम्हारा नहीं है, वह तुम्हारे साथ न जा सकेगा। वही तुम्हारे साथ जाएगा, जो तुम्हारा है। उसको ही खोज लो, जिसके तुम वस्तुतः मालिक हो। उसी को बुद्ध सदधर्म कहते हैं। वही जीवन का परम अनुभव खोज लो, जो तुम्हारा है और बस तुम्हारा है; और सदा तुम्हारा होगा।
"मनुष्य जब अपना आप नहीं है... ।"

अत्ता ही अत्तनो नत्थि।

अपने ही अपने नहीं हैं हम। अब किसके और दावेदार बनें?
मूढ़ दूसरों पर दावे करता है। जिसे मूढ़ता तोड़नी हो, उसे एक ही दावा खोजना चाहिए--अपने पर।
हर नफस है निशात से लबरेज
तर्क जिस दिन से इख्तियार में है
हर नफस है निशात से लबरेज
हर श्वास सुख-चैन से भर गई है।
हर नफस है निशात से लबरेज
तर्क जिस दिन से इख्तियार में है

जिस दिन से भोग की व्यर्थता दिखी, त्याग की सार्थकता समझ में आई; जिस दिन से त्याग की सार्थकता समझ में आई, उसी दिन से श्वास एक सुख-चैन से भर गई है।
मुझे तो याद नहीं है कोई खुशी ऐसी
शरीक जिसमें किसी तरह का मलाल न था
जिंदगी तुम्हें जो खुशियां देती है, अगर गौर से देखोगे, तुम ऐसी कोई खुशी न पाओगे, जिसमें किसी तरह का दुख सम्मिलित न हो।
मुझे तो याद नहीं है कोई खुशी ऐसी
शरीक जिसमें किसी तरह का मलाल न था
और ऐसी खुशी भी क्या खुशी, जिसमें दुख सम्मिलित हो! ऐसा अमृत क्या अमृत, जिसमें जहर सम्मिलित हो! ऐसी जिंदगी भी क्या जिंदगी, जिसमें मौत सम्मिलित हो!
पर एक ऐसी खुशी है, जो बुद्ध पुरुषों ने जानी, जहां श्वास-श्वास एक परम आनंद से भर जाती है, एक निगूढ़ आनंद से भर जाती है। लेकिन वह तभी, जब त्याग का अर्थ समझ में आ जाए।
भोगी है, वह इकट्ठा करने में लगा है। त्यागी वह है, जिसे यह समझ में आ गया कि अपने ही होना है; अपनी ही मालकियत खोजनी है। दूसरे की मालकियत की खोज भोग है। अपनी मालकियत की खोज त्याग है।
"पुत्र मेरे हैं, धन मेरा है, इस प्रकार मूढ़ चिंतारत होता है। परंतु मनुष्य जब अपना आप नहीं, तब पुत्र और धन अपने कैसे होंगे?"
उस आदमी का साथ मत करना, जो मूढ़ है; उससे बचना। मूढ़ता छूत की बीमारी है। भाग खड़े होना मूढ़ से। अकेले होना बेहतर। बुद्ध कहते हैं, अकेले होना बेहतर। अकेले ही चल लेना। मूढ़ का संग-साथ मत खोजना; अन्यथा गर्दन में चट्टान की तरह पड़ जाती है मूढ़ता। अपनी ही मूढ़ता डुबाने को काफी है और दूसरे की मूढ़ता का संग-साथ मत कर लेना।
ठीक उलटी घटना घटती है, जब तुम किसी ऐसे साथी को खोज लेते हो, जो मूढ़ नहीं है। उसका संग-साथ नाव जैसा हो जाता है। उसके सहारे तुम दूर तक पार हो सकते हो।
"जो मूढ़ अपनी मूढ़ता को समझता है, वह इस कारण ही पंडित है।"
पंडित की बड़ी सीधी व्याख्या बुद्ध कर रहे हैं--
"जो मूढ़ अपनी मूढ़ता को समझता है, वह इस कारण ही पंडित है।"
जिसने जान लिया कि मैं मूढ़ हूं, उसके पांडित्य का प्रारंभ हुआ। जिसने जाना कि मैं अज्ञानी हूं, ज्ञान की पहली किरण फूटी। जिसने समझा कि मैं अंधकार में हूं, प्रकाश की तरफ उसकी अभीप्सा की यात्रा शुरू हुई। जिसने जाना कि मैं बीमार हूं, वह औषधि की तलाश में निकल ही जाएगा।
प्यास को पहचान लिया, सरोवर को खोजने से कैसे बचोगे? हां, खतरा तो तब है, जब तुम प्यास को प्यास ही नहीं जानते, फिर तो सरोवर का कोई सवाल ही नहीं। सरोवर शायद आंख के सामने भी हो तो भी चूक जाओगे।
मूढ़ों की खूबी है कि वे अपने को पंडित समझते हैं। हजारों लोगों के निकट, हजारों लोगों के जीवन में झांकने का मुझे मौका मिला। इनमें मैंने पंडितों से ज्यादा मूढ़ दूसरे व्यक्ति नहीं देखे। पंडित कभी-कभी मेरे पास आ जाते हैं--मैंने इंतजाम किए हैं कि वे न आ पाएं--फिर भी कभी रास्ता खोज लेते हैं। पंडित जब भी मेरे पास आ जाते हैं तो मुझे बड़ी हैरानी होती है कि उनका क्या करो! उनको कोई साथ नहीं दिया जा सकता।
दो दिन पहले ही एक पंडित का आगमन हुआ। उन्होंने कहा, मैं आपके पास इसलिए आया हूं कि आपका कहने का ढंग मुझे बहुत पसंद है। मैंने उनसे कहा, मैं जो कहता हूं, उसकी बात करो। कहने के ढंग का क्या प्रयोजन! असत्य को भी ढंग से कहा जा सकता है। असत्य को कहना हो तो ढंग से ही कहना पड़ता है। कहने के ढंग से कोई बात सच नहीं हो जाती। कहने के ढंग की फिक्र छोड़ो। तुम तो मुझे यह कहो, जो मैं कहता हूं। तो उन्होंने कहा, जो आप कहते हैं, वह तो मैं भी कहता हूं। कहने के ढंग का ही फर्क है।
अब इस आदमी की कोई सहायता नहीं की जा सकती। यह आदमी सहायता की जरूरत में है, मगर इसको ख्याल है कि यह जानता है।

वे कहने लगे, मैं खुद ही समझाता हूं लोगों को आत्म-ज्ञान। मैं खुद ही व्याख्यान देता हूं। और भारत में ही नहीं, भारत के बाहर भी हो आया हूं।
फिर मैंने पूछा कि फिर तुम यहां किसलिए आए हो?
कि नहीं, आपके पास आया हूं कि ध्यान सीख लूं।
ये पंडित की मुसीबतें हैं, तुमसे कह रहा हूं।
ध्यान का क्या करोगे? आत्म-ज्ञान जब तुम लोगों को ही समझाते हो तो तुम्हें तो हो ही गया होगा। अब ध्यान का क्या करना है?
तब उन्हें थोड़ी बेचैनी हुई।
ध्यान का क्या करना है? जब आत्म-ज्ञान तुम्हें हो गया तो बात ही खतम
हो गई। अब औषधि की तलाश किसलिए कर रहे हो? बीमारी से तो छुटकारा हो चुका। तुम तो दूसरों को भी बीमारी से छुटकारे की राह बता रहे हो!
तब उस आदमी के चेहरे पर परेशानियां आ गयीं। वह ध्यान तो समझना चाहता है, क्योंकि आत्म-ज्ञान तो हुआ नहीं। जल तो पाना चाहता है, लेकिन यह भी स्वीकार नहीं करने को तैयार है कि प्यासा है। क्योंकि वह अहंकार को चोट लगती है।
तो मैंने कहा, तब आना जब तुम स्वीकार कर लो कि प्यास है। क्योंकि यह पानी उन्हीं के लिए है जिनको प्यास हो। तभी आना, जब समझ में आ जाए कि तुम्हें अभी समझ में नहीं आया है। अन्यथा मेरे पास आने का प्रयोजन क्या है?
पंडित को साथ देना, सहारा देना बड़ा मुश्किल है। वह अपनी सुरक्षा किए बैठा है।
"जो मूढ़ अपनी मूढ़ता को समझता है, वह इस कारण ही पंडित है। और जो मूढ़ अपने को पंडित समझता है, वही यथार्थ में मूढ़ है।"
जानने वालों ने अपने को जानने वाला नहीं समझा है। जितना जाना, उतना ही पाया कि कितना कम जानते हैं। जितनी आंख खुली, उतना ही पाया कि सत्य इतना विराट है कि हम जान-जानकर भी उसे चुका कहां पाएंगे! अपनी प्यास बुझा ली, एक बात; इससे कोई पूरा सागर थोड़े ही पी गए हैं! अपनी प्यास तो एक चुल्लूभर पानी में बुझ जाती है। वह चुल्लूभर पानी सरोवर थोड़े ही है।
सत्य सरोवर जैसा है, अनंत सरोवर जैसा है। हमारी प्यास तो थोड़े में बुझ जाती है। हमारी प्यास ही कितनी बड़ी है? हमारी प्यास हमसे बड़ी तो नहीं है। प्यास बुझ जाने का यह अर्थ नहीं है कि हमने सत्य को जान लिया। सत्य की झलक ही प्यास को बुझा देती है। सत्य का पास आना ही प्यास को बुझा देता है। लेकिन इससे हमने सत्य को जान लिया, ऐसा थोड़े ही!
सुकरात ने कहा है, जब मैंने जाना तो पाया कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। जब तक मैं सोचता था, मैं कुछ जानता हूं, तब तक मैंने कुछ भी न जाना था। यूनान में देल्फी का मंदिर है। और देल्फी के मंदिर की देवी घोषणाएं करती थी--कोई वर्ष में कुछ विशेष दिनों पर। लोग पूछते थे, देवी से उत्तर आते थे। किसी ने यह भी पूछ लिया भीड़ में कि इस समय यूनान में सबसे ज्यादा ज्ञानी पुरुष कौन है? तो देवी ने कहा कि सुकरात।
लोग गए और उन्होंने सुकरात से कहा। सुकरात ने कहा, कहीं कुछ भूल हो गई है। अगर तुम कुछ वर्षों पहले ऐसी खबर लेकर आए होते तो मैंने भी स्वीकृति दी होती। लेकिन अब नहीं दे सकता। अब मैं था.ेड़ा-थोड़ा जानने लगा हूं। मैं तुमसे कहता हूं कि मुझसे बड़ा अज्ञानी कोई भी नहीं है। तुम जाओ; देवी को कहो कि सुधार कर ले। घोषणा में कहीं कुछ भूल हो गई है।
वे गए वापस। उन्होंने देवी को कहा कि कुछ भूल हो गई है। क्योंकि सुकरात खुद इनकार करता है। तो हम किसकी मानें? तुम्हारी मानें या उसकी मानें? वह खुद ही कहता है, मैं कोई ज्ञानी नहीं; मैं अज्ञानी हूं। मुझसे बड़ा अज्ञानी कोई भी नहीं।
देवी ने कहा, इसीलिए तो उसे ज्ञानी कहा। मेरे वक्तव्य में और सुकरात
के वक्तव्य में कोई विरोध नहीं। इसीलिए तो उसे ज्ञानी कहा कि उससे बड़ा ज्ञानी अब कोई भी नहीं है, क्योंकि उसे अपने अज्ञान का पता हो गया है। अज्ञान का पता अहंकार का अंत है। अहंकार के लिए सहारा चाहिए धन का, पद का, त्याग का, ज्ञान का। ज्ञान आखिरी सहारा है। जब सब सहारे छूट जाते हैं,

तब भी ज्ञान का टेका लगा रहता है। आखिरी सहारा जब गिरता है--ज्ञान का भी; तो अहंकार विसर्जित हो जाता है। उसी क्षण तुम नहीं रहते, बूंद सागर हो जाती है।
बुद्ध ठीक कहते हैं, "जो मूढ़ अपनी मूढ़ता को समझता है, वह इस कारण ही पंडित है। और जो मूढ़ अपने को पंडित समझता है, वही यथार्थ में मूढ़ है।" जैसे-जैसे तुम जागोगे, वैसे-वैसे तुम पाओगे, कुछ भी तो पता नहीं। तुम
एक छोटे बालक की भांति हो जाओगे।
जीसस ने कहा है, जो छोटे बच्चों की भांति होंगे, वे ही परमात्मा के राज्य में प्रवेश पा सकेंगे।
छोटे बच्चों की भांति? छोटे बच्चों की भांति का अर्थ है, जिनको ज्ञान
की कोई भी अकड़ न होगी। जिनको जानने का कोई भी ख्याल न होगा। जो अपनी नासमझी में निर्दोष होंगे।
मैं बेकरार, मंजिले-मकसूद बेनिशां
रस्ते की इंतिहा न ठिकाना मुकाम का
जब तुम जागोगे तो पाओगे, मैं बेकरार! बड़ी अभीप्सा है किसी को पाने की। किसको पाने की--उसका भी कुछ पता नहीं। मंजिले-मकसूद बेनिशां--लक्ष्य का कोई पता नहीं। रास्ते पर कोई निशान नहीं है, कहां जा रहा हूं। रस्ते की इंतिहा--रास्ता कहां अंत होगा, इसका भी कोई पता नहीं। न ठिकाना मुकाम का-- रास्ते में कभी ऐसी भी कोई जगह आएगी, जहां मुकाम होगा, जहां मंजिल होगी, इसका भी कोई पता नहीं।
मैं बेकरार, मंजिले-मकसूद बेनिशां
रस्ते की इंतिहा न ठिकाना मुकाम का
ऐसी घड़ी में तुम ठिठककर खड़े हो जाओगे। ऐसी घड़ी में तुम शुद्ध अभीप्सा
हो जाओगे। ऐसी घड़ी में बस प्यास जलती होगी--एक दीए की तरह। न कहीं जाना, क्योंकि जाओ कहां? न कुछ जानना, क्योंकि जानो क्या? ऐसी जगह जाकर चैतन्य ठिठक जाता है। इस ठिठकी अवस्था में, इस अवाक हो जाने में ही ज्ञान की पहली किरण उतरती है।
जल्दी करो अज्ञान को स्वीकार कर लेने की। जल्दी करो ज्ञान से छुटकारा पाने की। और जब मैं यह कह रहा हूं, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम ऊपर से थोप लेना अपने को, कि कहने लगना कि मैं अज्ञानी हूं और भीतर-भीतर सोचना कि यही तो ज्ञानी का लक्षण है।
यह ज्ञानी का लक्षण है, लेकिन ज्ञानी को इसका पता नहीं होता। तुम तो समग्र भाव से बाहर-भीतर, पोर-पोर तुम्हारी निर्दोष स्वीकार कर ले कि मुझे कुछ भी पता नहीं--कहां से आता? कहां जाता? कौन हूं? क्या हूं? कुछ भी पता नहीं।
ऐसी बेपता हालत में क्या करोगे? ठिठककर खड़े हो जाओगे। चैतन्य अकंप हो जाएगा। तुम एक छोटे बच्चे की भांति हो जाओगे। पुनः तुम्हारा बचपन आएगा-- दूसरा बचपन!
इस दूसरे बचपन में ही ऋषियों का जन्म होता है। इस दूसरे बचपन में ही ज्ञान का पहला आविर्भाव होता है, पहला सूत्रपात होता है।
ज्ञान, ज्ञान के संग्रह का नाम नहीं; ज्ञान, अज्ञान में उतरी किरण है। अज्ञान के स्वीकार-भाव में उतरी किरण है। अज्ञान की शून्यता में भर गया पूर्ण है।
तुम अपने घड़े को खाली करो। तुम बहुत भरे हो। तुम जरूरत से ज्यादा भरे हो। व्यर्थ की चीजों से भरे हो, लेकिन जरूरत से ज्यादा भरे हो। तुम्हारे चैतन्य के घड़े में जरा भी जगह नहीं है। उलटा दो इसे। खाली हो जाओ।
इस सूत्र को ध्यान से जोड़ने की कोशिश करो। ध्यान का अर्थ है, उलीचना; खाली होना। ध्यान तुम्हारे भीतर जो कूड़ा-करकट भरा है, जिसको तुम ज्ञान कहते हो, उससे तुम्हें उलीच देगा, खाली कर देगा। ध्यान तुम्हारे घड़े को खाली कर देगा ज्ञान से। ध्यान तुम्हें जगाएगा तुम्हारे अज्ञान के प्रति। यह पहली घटना होगी।
और जिस दिन घड़ा खाली हो जाएगा, उसी दिन तुम पाओगे, उसी खाली घड़े में उतरने लगा कुछ अलौकिक। उतरने लगा कोई पार से। आने लगी दूर की आवाज। बरसने

लगे मेघ। उसी क्षण आकाश पृथ्वी से मिलता है; उसी क्षण परमात्मा आत्मा से।
वही क्षण संबोधि का क्षण है।
तो ध्यान दो काम करता है। इधर तुम्हें खाली करता है तथाकथित ज्ञान से; उधर तुम्हें तैयार करता है वास्तविक ज्ञान के लिए।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 3
बाईसवां प्रवचन

बुद्धि, बुद्धिवाद और बुद्ध

पहला प्रश्नः भगवान बुद्ध का मार्ग संदेह के स्वीकार से शुरू होता है। क्या उनका युग भी आज के युग जैसा ही बुद्धिवादी था, संदेहवादी था? और क्या आज के समय में धम्मपद सबसे ज्यादा प्रासांगिक है?

नहीं--बुद्ध का युग तो बुद्धिवादी नहीं था; न ही संदेहवादी था। बुद्ध अपने समय से बहुत पहले पैदा हुए थे। अब ठीक समय था बुद्ध के लिए--पच्चीस सौ साल बाद।
बुद्ध जैसे व्यक्ति सदा ही अपने समय के पहले होते हैं। जमाने को बड़ी देर लगती है उस जगह पहुंचने में, जो बुद्ध पुरुषों को पहले दिखाई पड़ जाता है। बुद्धत्व का अर्थ है देखने की ऊंचाइयां। जैसे कोई पहाड़ पर चढ़कर देखे, दूर सैकड़ों मील तक दिखाई पड़ता है। और जैसे कोई जमीन पर खड़े होकर देखे तो थोड़ी ही दूर तक आंख जाती है।
बुद्ध पुरुष सदा ही अपने समय के पहले होते हैं। और इसलिए बुद्ध पुरुषों को सदा ही उनका समय, उनका युग इंकार करता है, अस्वीकार करता है।
बुद्ध ने जो बातें कहीं हैं, अभी भी उनके लिए पूरा-पूरा समय नहीं आया। कुछ आया है; अभी भी पूरा नहीं आया।
समझने की कोशिश करें।
बुद्ध ने एक ऐसे धर्म को जन्म दिया, जिसमें ईश्वर की कोई जगह नहीं है।
एक ऐसी प्रार्थना सिखाई, जिसमें परमात्मा का कोई स्थान नहीं। अड़चन है--आज भी अड़चन है। आज भी तुम बिना परमात्मा के प्रार्थना कैसे करोगे? आज भी तुम्हें कठिनाई होगी। प्रार्थना बिना परमात्मा के होगी कैसे? तुम वस्तु में आधार खोजते हो, बाहर सहारा खोजते हो। परमात्मा भी बाहर ही तुम कल्पित करते हो।
तुम्हें प्रार्थना भी करनी हो... प्रार्थना तो भीतर की भावदशा है। उसके लिए भी बाहर कोई निमित्त चाहिए!
बुद्ध ने सब निमित्त छुड़ा लिए। बुद्ध ने कहा, प्रार्थना पर्याप्त है, परमात्मा की कोई जरूरत नहीं। अभी भी देर है मनुष्य के इतने धार्मिक होने में, जहां प्रार्थना परमात्मा के बिना पर्याप्त होगी। इसका अर्थ हुआ कि मनुष्य परिपूर्ण रूप से अंतर्मुखी हो। यह परमात्मा की बात भी बाहर देखने की ही बात है। जब भी तुम परमात्मा शब्द का उपयोग करते हो, तब तुम्हारी आंख बाहर गई। यहां तुमने कहा परमात्मा, वहां मंदिर बने। यहां तुमने कहा परमात्मा, वहां प्रतिमा बनी। इधर तुम्हारे मन में परमात्मा का ख्याल आया कि कहीं आकाश में तुम्हारी आंख उसे खोजने लगी। कहा परमात्मा, और परमात्मा एक व्यक्ति हो गया--स्रष्टा, पृथ्वी को, जगत को बनाने वाला हो गया। फिर तुम झुकते हो।
तुम किसी के सामने झुकते हो। तुम्हारा झुकना शुद्ध नहीं। तुम मजबूरी में झुकते हो। झुकना तुम्हारा आनंद नहीं। तुम कारण से झुकते हो, अकारण नहीं।
बुद्ध ने कहा, प्रार्थना पर्याप्त है। प्रतिमा की कोई जरूरत नहीं। झुकना इतना आनंदपूर्ण है कि किसी के सामने झुकने का बहाना भी क्यों खोजना? इसे थोड़ा समझो। कठिन है, बड़ी दूर की बात है। अभी भी युग आया हुआ नहीं मालूम होता। रोज किताबें बुद्ध पर लिखी जाती हैं। करीब-करीब सभी किताबें जो बुद्ध पर लिखी जाती हैं, वे यही परेशानी अनुभव करते हैं लेखक उनके, कि धर्म और बिना ईश्वर के? तो फिर नास्तिकता क्या है?
बुद्ध ने एक ऐसा धर्म दिया, जिसमें नास्तिक होकर भी तुम धार्मिक हो सकते हो। आस्तिकता को शर्त न बनाया। बेशर्त धर्म दिया। आस्तिकता में तो सीमा बन जाती है कि केवल वे ही बुलाए जाएंगे, जो मानते हैं। बुद्ध ने कहा, मानने या न मानने का कोई सवाल नहीं है। जो झुकने को तैयार हैं, वे बुला ही लिए गए।

और झुकने का कोई संबंध किसी के सामने झुकने से नहीं है। यह हमारी आदत गलत है। यह सोचने का ढंग गलत है। क्या तुम अकारण नहीं झुक सकते? क्या झुकना अपने आप में अपना अंत नहीं हो सकता? साधन न हो, साध्य हो? मार्ग न हो, मंजिल हो? नारद ने जैसे कहा है, भक्ति फलरूपा है, क्या झुकना अपने आप में साध्यरूप नहीं हो सकता? किसी के सामने... ।
बुद्ध कहते हैं, कोई सामने होगा तो तुम पूरे झुक ही कैसे पाओगे? अड़चन पड़ेगी। किसी की मौजूदगी बाधा डालेगी। तुम पूरे मुक्त न हो पाओगे। दूसरे की मौजूदगी सीमा बनाएगी। कटघरा खड़ा करेगी। दूसरा देखता है। बुद्ध ने कहा, अगर परमात्मा है तो मनुष्य कभी स्वतंत्र न हो पाएगा। मोक्ष कैसे होगा? दूसरा बना ही रहेगा... बना ही रहेगा। दूसरा देखता ही रहेगा। उसकी आंखें, टकटकी तुम पर लगी ही रहेगी। तुम कभी खुलकर सहज न हो पाओगे।
बुद्ध ने एक धर्म दिया, जो परमात्मा से मुक्त है। बुद्ध ने एक मोक्ष दिया, जिसमें परमात्मा की कोई आवश्यकता नहीं। इतनी ऊंचाई पर कोई धर्म कभी नहीं पहुंचा। थोड़ा सोचो तो! धर्म की इतनी ऊंचाई, कि परमात्मा भी अनावश्यक हो जाए। प्रार्थना की इतनी बुलंदी कि परमात्मा भी आवश्यक न रह जाए। झुकना अपने आप में इतना परिपूर्ण आनंद है कि इसे दूसरे के सहारे की जरूरत नहीं। सहज-स्फूर्त! आत्म-भाव!
लेकिन अगर यहीं तक बात होती, तो इतनी बात तो महावीर ने भी कर दी थी। बुद्ध की कुछ विशेषता न थी। और महावीर बुद्ध से कुछ वर्ष पहले, उम्र में बुजुर्ग थे। वे कोई तीस-चालीस साल बड़े थे। यह बात तो महावीर ने कह दी थी।
और महावीर ने कोई नई बात न कही थी। जैन परंपरा में महावीर के पहले तेईस तीर्थंकर और हो चुके थे। बड़ी पुरानी परंपरा थी ईश्वर-रहित धर्म की भी।
छोटी धारा थी; जैन कभी बड़े विस्तार रूप में नहीं फैल पाए--फैल नहीं सकते। उनका भी ठीक समय नहीं आया। उनकी भी बात बड़ी समय के पहले हो गई। क्षीण धारा रही, लेकिन थी। यह कोई नई बात न थी।
अगर बुद्ध ने इतना ही कहा होता तो बुद्ध भी जैन धारा के एक अंग हो जाते। लेकिन बुद्ध ने बुलंदी और भी ऊंची ली। बुद्ध ने पंख और भी बड़े आकाश की तरफ उठाए। और बुद्ध ने ऐसी बात कही, जिसको समझना तो दूर, कोई कहेगा इस पर भी भरोसा नहीं आता।
बुद्ध ने कहा, आत्मा भी नहीं है। परमात्मा तो है ही नहीं। जिसकी तुम प्रार्थना करो वह तो है ही नहीं, जो प्रार्थना करता है, वह भी नहीं है; सिर्फ प्रार्थना ही है। जिससे तुम प्रेम करो वह तो है ही नहीं, जो प्रेम करता है वह भी नहीं है। प्रेम-पात्र भी नहीं है, प्रेमी भी नहीं है। ध्यान का विषय भी नहीं है और ध्यानी भी नहीं है। बस, ध्यान है। दोनों किनारे नहीं हैं। द्वैत बिल्कुल नहीं है। द्वंद्व बिल्कुल नहीं है। बुद्ध ने कहा, शून्य है। न परमात्मा है, न प्रार्थी है। परमात्मा के कारण बाधा पड़ती है। और तुम परमात्मा को तब तक न छोड़ पाओगे, जब तक तुम हो। तुम्हारे कारण भी बाधा पड़ती है।
अब इसे हम समझें।
जब तक तुम हो, तब तक तुम यह न मान पाओगे कि परमात्मा नहीं है। तुम्हारे होने की धारणा में ही परमात्मा के होने की धारणा का बीजारोपण है। मैं हूं, तो तू भी होगा। इस विराट तू का नाम ही परमात्मा है। अगर तू नहीं है तो मैं कैसे हो सकता हूं? मैं और तू साथ-साथ ही सार्थक हैं; अलग-अलग व्यर्थ हो जाते हैं।
तो बुद्ध ने पहले तो कहा, परमात्मा नहीं है। वहां तक महावीर का संग-साथ रहा। इसलिए जैन बुद्ध को महात्मा कहते हैं, भगवान नहीं। आदमी भला है, थोड़ी दूर तक गया है। महात्मा है, भगवान नहीं है। अभी पूरा नहीं पहुंचा है। आधी बात तक तो साथ गया है, फिर इसका मार्ग अलग हो गया है। फिर इसने तो जड़ ही तोड़ दी। परमात्मा नहीं था यह तो कहा ही; आत्मा भी नहीं है! इसने होने की धारणा ही बदल दी। इसने होने की सब सीमाएं उखाड़ दीं।
बड़ी अड़चन होती है बुद्धि को। कुछ भी नहीं है तो फिर इतना सब है और इस
सब के नीचे कुछ भी नहीं है? और बुद्ध कहते हैं, यह सब जो है, इस सब के भीतर कहीं भी कोई सीमा नहीं है। यह विराट है, लेकिन यह विराट कहीं भी बंटा हुआ,

कटा हुआ नहीं है। न मैं में बंटा है, न तू में बंटा है। अविच्छिन्न है यह धारा। इसमें आत्मा कहीं भी नहीं है। इसमें कहीं भी मैं कहने की गुंजाइश नहीं है। जहां मैं कहा, वहीं असत्य हुआ।
और ये जो बातें बुद्ध ने कहीं, ये कोई दार्शनिक की बातें न थीं, एक अनुभव सिद्ध पुरुष के वचन थे। तुम भी जब गहरे ध्यान में जाओगे तो न परमात्मा को पाओगे, न स्वयं को पाओगे। अस्तित्व होगा निर्विकार, जिस पर कोई सीमा न होगी, कोई सरहद न होगी। अस्तित्व होगा निर्विकार, जैसे कोरा आकाश! बदलियों के रूप भी न होंगे। इस परम शून्य को बुद्ध ने निर्वाण कहा। संदेह से शुरू की यात्रा और शून्य पर पूर्ण की। संदेह और शून्य के बीच में बुद्ध का सारा बोध है। अभी भी समय नहीं आया। संदेह को धर्म का आधार बनाया और शून्य को धर्म की उपलब्धि। बाकी सारे धर्म विश्वास को आधार बनाते हैं और पूर्ण को उपलब्धि। यह तो बिल्कुल उलटा हो गया। नाव उलटा दी। इतने उलटे धर्म को समझने के लिए बड़ी गहन प्रज्ञा चाहिए। सीधा-सीधा धर्म समझ में नहीं आता, जहां विश्वास से शुरुआत होती है और जहां पूर्ण पर अंत होता है। सीधा-सीधा धर्म भी समझ से छूट-छूट जाता है। जो तुमसे ज्यादा मांग भी नहीं करता। कहता है, सिर्फ श्रद्धा करो। वह भी नहीं हो पाता। हम ऐसे अभागे! उतना भी नहीं सधता। श्रद्धा ही करने को कहता है साधारण धर्म, मान लो। खोज की बात ही नहीं कहता।
बुद्ध कहते हैं, मानने से न चलेगा। बड़ी खोज करनी पड़ेगी। पहले कदम के पहले भी बड़ी यात्रा है। साधारण धर्म कहता है, पहला कदम बस तुम्हारे भरोसे की बात है; उठा लो। इससे ज्यादा कुछ करना नहीं। तुमसे ज्यादा मांग नहीं करता।
लेकिन बुद्ध का धर्म तो तुमसे पहले कदम पर पहुंचने के लिए भी बड़ी लंबी यात्रा की मांग करता है। वह कहता है, संदेह की प्रगाढ़ अग्नि में जलना होगा; क्योंकि तुम जो भरोसा करोगे वह तुम्हीं करोगे न! तुम जो भरोसा करोगे, वह तुम्हारी बुद्धि ही करेगी न! तुम्हारी बुद्धि अगर बाधा है तो तुम्हारी बुद्धि से आया भरोसा सीढ़ी कैसे बनेगा? तुम्हारी बुद्धि में ही अगर रोग है तो उस रोग से जन्मा हुआ विश्वास भी बीमारी ही होगा।
इसलिए तो सारी दुनिया पर मंदिर हैं, मस्जिद हैं, गुरुद्वारे हैं--इतना विश्वास फैला हुआ है, लेकिन कहीं खबर मिलती धर्म की? कहीं सुगंध उठती धर्म की? कहीं दीए जलते धर्म के? गहन अंधकार है। कहीं कोई चिराग नहीं। मंदिर अंधेरे पड़े हैं। मंदिर अंधेरे ही नहीं पड़े हैं, अंधेरे के सुरक्षा-स्थल बन गए हैं। मस्जिदों में अंधेरा शरण पा रहा है। आस्था के नाम पर सब तरह के पाप पलते हैं। विश्वास के नीचे सब तरह का झूठ चलता है। धर्म पाखंड है, क्योंकि शुरुआत में ही चूक हो जाती है। पहले कदम पर ही तुम कमजोर पड़ जाते हो। पहले कदम पर ही साहस से खोज नहीं करते। तुम्हारा विश्वास तुम्हारा ही होगा। तुम्हारा विश्वास तुम्हें तुमसे पार न ले जा सकेगा।
इसलिए बुद्ध ने कहा, तोड़ो विश्वास, छोड़ो विश्वास। सब धारणाएं गिरा देनी हैं। संदेह की अग्नि में उतरना है। दुस्साहसी चाहिए, खोजी चाहिए, अन्वेषक चाहिए--अभियान पर जाने की जिनकी क्षमता हो, चुनौती स्वीकार करने का जिनके भीतर साहस हो।
और बुद्ध कहते हैं, आश्वासन कोई भी नहीं है। क्योंकि कौन तुम्हें आश्वासन दे? यहां कोई भी नहीं है जो तुम्हारा हाथ पकड़े। अकेले ही जाना है। मरते वक्त भी बुद्ध ने कहा, अप्प दीपो भव। अपने दीए बनो। मैं मरा तो रोओ मत। मैं कौन हूं? ज्यादा से ज्यादा इशारा कर सकता था। चलना तुम्हें था। मैं रहूं तो तुम्हें चलना है, मैं जाऊं तो तुम्हें चलना है। मेरे ऊपर झुको मत। मेरा सहारा मत लो। क्योंकि सब सहारे अंततः तुम्हें लंगड़ा बना देते हैं। सब सहारे अंततः तुम्हें अंधा बना देते हैं। सहारे धीरे-धीरे तुम्हें कमजोर कर जाते हैं। बैसाखियां धीरे-धीरे तुम्हारे पैरों की परिपूर्ति हो जाती हैं। फिर तुम पैरों की फिक्र ही छोड़ देते हो।
बुद्ध ने कहा, संदेह करो। बुद्ध का धर्म वैज्ञानिक है। संदेह विज्ञान
का प्राथमिक चरण है।

इसलिए भविष्य में जैसे-जैसे लोकमानस वैज्ञानिक होता जाएगा, वैसे- वैसे समय बुद्ध के अनुकूल होता जाएगा। जैसे-जैसे वैज्ञानिक चित्त का विस्तार होगा, जैसे-जैसे लोग सोचने और विचारने की गहनता में उतरेंगे और उधार और बासे विश्वास न करेंगे, हर किसी की बात मान लेने को राजी न होंगे, बगावत बढ़ेगी, लोग हिम्मती होंगे, विद्रोही होंगे, वैसे-वैसे बुद्ध की बात लोगों के करीब आने लगेगी।
पश्चिम में आज जितना बुद्ध का आदर है, किसी और का नहीं। जीसस का भी नहीं। साधारण आदमियों की बात छोड़ दें, लेकिन पश्चिम में जो भी विचारक हैं, चिंतक हैं, वैज्ञानिक हैं, उनके मन में बुद्ध का आदर रोज बढ़ता जाता है। बाकी लोगों के आदर रोज कम होते जाते हैं। बाकी लोग हारती बाजी लड़ रहे हैं; बुद्ध बिना लड़े जीतते चले जाते हैं। क्योंकि जो बड़ी बात बुद्ध ने कही, वह यह है, कि हम तुमसे मानने को नहीं कहते, खोजने को कहते हैं। यह सूत्र है विज्ञान का। जब खोज लेंगे तो मानेंगे। बिना खोजे कैसे मान लेंगे?
किसी दूसरे के बताए कहीं सत्य मिला है? सत्य इतना सस्ता नहीं है। सत्य कोई संपत्ति नहीं है कि पिता मरे और बेटे के नाम वसीयत कर जाए। न ही सत्य कोई प्रसाद है कि गुरु अनुकंपा करे और दे दे। देने-लेने की बात ही नहीं; खोजना पड़ेगा। कंटकाकीर्ण मार्गों पर चलना पड़ेगा। लहूलुहान, थके-हारे पहुंच जाओ, सौभाग्य! जरूरी नहीं है कि पहुंच ही जाओ। क्योंकि भटकाव बहुत हैं, खाई-खड्ड बहुत हैं, भ्रम-जाल बहुत हैं, माया-मरीचिकाएं बहुत हैं, कहीं भी खो जा सकते हो।
और तुम्हारे भीतर भी कमजोरियां बहुत हैं। थक जाओ तो कहीं भी भरोसा करके रुक सकते हो। किसी भी मंदिर के सामने, किसी भी मस्जिद के सामने पस्त हिम्मत, थके-हारे सिर झुका सकते हो। इसलिए नहीं कि तुम्हें कोई जगह मिल गई, जहां सिर झुकाने का मुकाम आ गया था, बस सिर्फ इसलिए कि अब तुम थक गए; अब और नहीं खोजा जाता। तुम ख्याल करना, तुम्हारे झुकने में कहीं पस्त-हिम्मती तो नहीं है! कहीं सिर्फ हार गए, पराजित हो गए, ऐसा तो नहीं है? हारे को हरि नाम--कहीं ऐसा तो नहीं है? कि हार गए, अब करें क्या, तो हरिनाम जपने लगे। कहीं ऐसा तो नहीं है कि धर्म तुम्हारी मजबूरी है, असहाय अवस्था है?
बुद्ध तुम्हें कोई जगह नहीं देते। तुम्हारी कमजोरी के लिए वहां कोई जगह नहीं है। बुद्ध कहते हैं, ज्ञान तो मिलता है आत्म-परिष्कार से; शास्त्र से नहीं। सत्य कोई धारणा नहीं है। सत्य कोई सिद्धांत नहीं है। सत्य तो जीवन का निखार है। सत्य तो ऐसा है, जैसे सोने को कोई आग में डालता है तो निखरता है; जलता है, पिघलता है, तड़फता है, निखरता है। व्यर्थ जल जाता है, सार्थक बचता है। सत्य तो तुममें है, कूड़े-करकट में दबा है। और जब तक तुम आग से न गुजरो, तुम उस सत्य को कैसे खोज पाओगे?
जल्दी मत करना--बुद्ध कहते हैं--भरोसा कर लेने की। भरोसा तभी करना, जब संदेह करने की जगह ही न रह जाए।
इस फर्क को ख्याल में लो। दूसरे धर्म कहते हैं, भरोसा कर लो संदेह के विपरीत। संदेह को ओझल कर दो आंख से। उपेक्षा कर दो। संदेह है माना, तुम भरोसा कर लो। संदेह को दबा दो भरोसे की राख में। संदेह को भूल जाओ भरोसे की आड़ में। भरोसे की छाया में टिक जाओ। ढांक लो अपना सिर, जैसे शुतुर्मुर्ग दुश्मन को देखकर रेत में सिर गपा लेता है। ऐसे चारों तरफ संदेह ने तुम्हें घेरा है। तुम अपने सिर को आस्था के रेत में दबा लो। भूल जाओ। देखो ही मत आंख खोलकर क्योंकि आंख खोलकर। देखोगे तो संदेह उठेंगे।
और धर्म कहते हैं कि श्रद्धा कर लो संदेह के विपरीत। बुद्ध कहते हैं, संदेह कर लो। पूरी तरह कर लो। इतना कर लो कि संदेह गिर जाए और श्रद्धा का आविर्भाव हो। वह बड़ी अलग बात है। वह बिल्कुल ही अलग बात है। और धर्मों की श्रद्धा संदेह के विपरीत है। बुद्ध की श्रद्धा संदेह का अभाव है। जब संदेह नहीं बचता तो जो बचती है, वही श्रद्धा है।
इसलिए पहले संदेह से जूझ लो। अगर संदेह के रहते श्रद्धा कर ली तो ऊपर-ऊपर श्रद्धा होगी, भीतर-भीतर संदेह होगा। और जो भीतर है, वही निर्णायक है। किसे धोखा देना है? ऊपरी वस्त्रों से कुछ भी न होगा।
क्या फायदा रंगीन लबादों के तले

रूह जलती रहे, घुलती रहे, पजमुर्दा रहे
क्या फायदा? वह तुम्हारे भीतर जो दबा है, वही तुम हो। बुद्ध कहते हैं, उसे बाहर निकाल लो। उससे छुटकारा पाने का एक ही उपाय है, उसे रोशनी में ले आओ।
ऐसा नहीं कि बुद्ध श्रद्धा के विरोधी हैं। वस्तुतः तो बुद्ध ही श्रद्धा के पक्षपाती हैं। लेकिन उनकी श्रद्धा हिम्मतवर की श्रद्धा है; कमजोर की नहीं, कायर की नहीं। उनकी श्रद्धा साहसी की, दुस्साहसी की श्रद्धा है। उनकी श्रद्धा वैज्ञानिक की श्रद्धा है, अंधविश्वासी की नहीं।
अभी समय नहीं आया। आता लगता है; पहली पगध्वनियां सुनाई पड़ने लगीं, पहली किरण सुबह की फूटी। उनका समय आता लगता है। भविष्य बुद्ध का है। जब राम और कृष्ण, क्राइस्ट और जरथुस्त्र के दीए बुझने-बुझने को होंगे, जब उनके दीए आखिरी घड़ियां गिनते होंगे, तब बुद्ध का सूरज उगेगा। बुद्ध इस पृथ्वी पर रहने वाले हैं। ऐसी तो घड़ी की मैं कल्पना कर सकता हूं, जब लोग जीसस को भूल जाएं। इसकी संभावना है। ऐसी घड़ी की कल्पना भी करनी मुश्किल है, जब बुद्ध को भूल जाएं। क्योंकि रोज-रोज लोग चिंतनशील बनेंगे। रोज-रोज हिम्मतवर होंगे। रोज-रोज आदमी बड़ा हो रहा है, प्रौढ़ हो रहा है; बचपने की बातें खो रहीं हैं। तो आज नहीं कल, कल नहीं परसों, बुद्ध के दिन करीब आते चले जाएंगे। आ ही रहे हैं।
बुद्ध ने एक अनूठी श्रद्धा को जन्म दिया है। श्रद्धा की बात ही नहीं की। क्योंकि श्रद्धा की बात क्या करनी! जब बीमारी नहीं होती तो तुम स्वस्थ होते हो। जब संदेह नहीं होता तो तुम श्रद्धालु होते हो। तो बुद्ध कहते हैं, श्रद्धा का आरोपण नहीं करना है, न श्रद्धा का आचरण करना है, न श्रद्धा का अनुशासन अपने ऊपर थोपना है। श्रद्धा की बात ही भूल जाओ। तुम तो ठीक संदेह कर लो। क्योंकि संदेह करने से ही मिटता है। संदेह कर-कर के ही जाता है। जो नहीं करता, उसमें ही बचा रहता है। जो कर लेता है, वह एक न एक दिन संदेह की सीमांत पर आ जाता है।
तर्क तर्क से ही जाता है, जैसे कांटे कांटे से निकाले जाते हैं और जहर जहर से मिटाया जाता है। तर्क तर्क से ही जाता है। तर्क ठीक से ही कर लो। बुद्ध कहते हैं, जल्दी मत करना। तर्क की परिपक्वता चाहिए। परिपक्वता सब कुछ है।
फिर एक दिन तुम उस घड़ी, उस सीमा पर आ जाते हो, जहां तर्क के पार के आकाश दिखाई पड़ने शुरू होते हैं। तर्क ही वहां ले आता है। फिर तर्क को छोड़ना नहीं पड़ता। जब और पार के आकाश दिखाई पड़ने लगते हैं, तर्क छूट जाता है। संदेह में कोई जी नहीं सकता, अगर ठीक से संदेह करे। क्योंकि संदेह नकारात्मक है। नकार में जीओगे कैसे? जीने के लिए विधेय चाहिए। बीमारी में जीओगे कैसे? जीने के लिए स्वास्थ्य चाहिए। संदेह तो मृत्यु जैसा है, श्रद्धा जीवन जैसी है। संदेह में कोई सदा के लिए ठहर नहीं सकता।
लेकिन लोग ठहर गए हैं। चमत्कार घट गया है। और चमत्कार इसलिए घट गया है
कि लोगों ने झूठी श्रद्धा ओढ़ ली है। उस झूठी श्रद्धा में वे खुद ही नहीं छिप गए हैं, उनके सारे संदेह भी सुरक्षित हो गए हैं।
तुमने आस्तिक को देखा--तथाकथित आस्तिक को? बाजार भरे हैं। नगर उससे भरे हैं। मंदिरों और गिरजों में प्रार्थना कर रहा है। तुमने उसे गौर से देखा, कितना डरा हुआ है? उसकी आस्था कितनी डगमगाती हुई है? तुमने कभी उससे बात की? डरता है। उसकी श्वास फूल आती है अगर संदेह की बात करो। अगर प्रार्थना करते तुम उससे पूछो कि सच में तुम्हें पक्का भरोसा है कि ईश्वर है?
मेरे एक शिक्षक थे। बूढ़े हो गए। जब गांव जाता था, उनके पास जाता था। आखिरी बार गया तो उन्होंने खबर भेजी कि मत आना। फिर भी मैं गया। मैंने उनसे पूछा कि अब कभी न आऊंगा। जब आपने खबर भेजी तो न आऊंगा। लेकिन कारण पूछने आया हूं कि मुझे क्यों इंकार किया है? वे कहने लगे, इंकार का कोई कारण नहीं है। वर्षों तुम्हारी प्रतीक्षा करता हूं, जब आते हो। लेकिन अब

डरने लगा हूं। तुम्हारी बातों से संदेह पैदा हो जाता है। मंत्र लड़खड़ाने लगते हैं। अब मौत मेरी करीब है। अब मुझे आस्था से मर जाने दो।
मैंने कहा, यह आस्था जो इतनी लड़खड़ाती है, जो जिंदगी में भी जिंदा नहीं है, यह मौत में काम आएगी? ये मंत्र जो इतने लड़खड़ाते हैं, जिनकी कोई जड़ें नहीं, जो मेरे हिलाए हिल जाते हैं, ये कितने दूर साथ देंगे मौत में? ये कहां तब साथ जाएंगे?
तब तो, मैंने कहा, मुझे आना ही पड़ेगा। फिर अब मैं तुम्हारे इंकार को न सुनूंगा। आता ही रहूंगा। क्योंकि मौत करीब है; इसलिए जल्दी करो। जिंदगी यूं ही गंवाई। इन संदेहों से छुटकारा हो सकता था। इनको तुम छुपाए बैठे रहे। इनको तुमने पानी दिया। इनको तुमने भोजन दिया। इनको तुमने बचाया। तुम्हारी आस्था इनके लिए शक्तिदाई हुई। तुम्हारी आस्था ने इनके ऊपर कंबल लपेटा। ये मुर्झा गए होते, ये मर गए होते, लेकिन तुमने इन्हें न मरने दिया। और अब मौत करीब आती है। तुम मरने के करीब हो तो भी तुम इनको बचा रहे हो। अब तो जल्दी करो। अब तो इनको उभर आने दो। कोई हर्जा नहीं, कि तुम संदेह करते हुए ही मर जाओ। उतना साहस तो कम से कम साथ होगा। उतना आत्मविश्वास तो कम से कम साथ होगा। उस परमात्मा के सामने प्रार्थना करते हुए मर रहे हो, जिस पर तुम्हें भीतर भरोसा ही नहीं। तुम्हारी प्रार्थना झूठी। तुम्हारा प्रेम झूठा। झूठ से कहीं कोई सत्य तक पहुंचा है?
बुद्ध ने संदेह दिया। इसलिए नहीं कि बुद्ध का युग बुद्धिवादी था; नहीं, बुद्ध बुद्धिवादी थे। वे प्रगाढ़ संदेह से ही श्रद्धा तक पहुंचे थे। उन्होंने लंबे और कठिन मार्ग से यात्रा की थी। लेकिन लंबे और कठिन मार्ग से ही यात्रा होती है। कोई शार्ट कट है ही नहीं। तुम जिसको श्रद्धा माने हो, वह शार्ट कट है। तुम बिना गए, बिना कहीं पहुंचे, बिना कुछ हुए श्रद्धा कर लिए हो। तुम्हारी श्रद्धा नपुंसक है।
तुम जानते हो भलीभांति। इसलिए तुम ऐसे लोगों की बातें सुनते फिरते हो, जहां तुम्हारी श्रद्धा में थोड़ा बल आ जाए, थोड़ी ताकत आ जाए। तुम भयभीत हो। तुम्हारे शास्त्रों में लिखा है, नास्तिकों की बातें मत सुनना। नास्तिक कुछ कहे तो कान में उंगलियां डाल लेना।
इन शास्त्रों को छुट्टी दो। ये शास्त्र कमजोरी सिखाते हैं। ये शास्त्र परमात्मा तक कैसे ले जाएंगे? जो आस्था इतनी डरपोक हो कि नास्तिक की बात सुनने से कंपती हो, इससे तो नास्तिक बेहतर। कम से कम उसके शास्त्रों में कहीं तो नहीं लिखा है कि आस्तिक की बात सुनने से डरना। लगता है, उसकी नास्तिकता में उसका भरोसा ज्यादा है; तुम्हारी आस्तिकता से। और जिस पर तुम्हें ही भरोसा नहीं है उससे क्या... क्या सिद्ध हो सकता है?
तो ध्यान रखना, बुद्ध ने संदेह दिया। संदेह प्रक्रिया है श्रद्धा को पाने की। संदेह करते-करते तुम संदेह से मुक्त हो जाते हो। संदेह में चलते- चलते तुम उस जगह आ जाते हो जहां श्रद्धा का सूरज उगता है।
थी वह शायद अपनी ही बेचारगी की एक पुकार
जिसको अपनी सादालौही से खुदा समझा था मैं
तुमने जिसे परमात्मा समझा है, कहीं वह तुम्हारी असहाय अवस्था की पुकार ही तो नहीं!
थी वह शायद अपनी ही बेचारगी की एक पुकार
असहाय अवस्था में भयभीत, पीड़ित, दुखी आदमी परमात्मा को पुकारने लगता है। कहीं वह तुम्हारी बेचारगी की पुकार ही तो नहीं है?
जिसको अपनी सादालौही से खुदा समझा था मैं
जिसको अपनी नासमझी से, बालपन से तुमने परमात्मा समझा है, वह कहीं असहाय अवस्था की पुकार ही तो नहीं! जिसको तुमने झुकना समझा है, वह कहीं तुम्हारे कंपते और भयभीत पैरों की कमजोरी ही तो नहीं! जिसको तुमने समर्पण समझा है, वह कहीं तुम्हारी कायरता ही तो नहीं!
समर्पण के लिए संकल्प चाहिए। झुकने के लिए खड़े होने वाला बल चाहिए। परमात्मा को पुकारने के लिए बेचारगी नहीं, भीतर की एक असहाय अवस्था नहीं, भीतर का परम संतोष, परम अहोभाव चाहिए।

बुद्ध ने परमात्मा नहीं छीना, तुमसे तुम्हारी बेचारगी छीनी। तुमने बेचारगी को ही परमात्मा का नाम दे दिया था। बुद्ध ने तुमसे मंदिर नहीं छीने, तुम्हारे कमजोरी के शरणस्थल छीने। और बुद्ध ने कहा, तुम्हें खुद ही चलना है। बुद्ध ने तुम्हारे पैरों को सदियों-सदियों के बाद फिर से खून दिया। तुम्हें अपने पैरों पर खड़े करने की हिम्मत दी।
बुद्ध सदगुरु हैं। और बुद्ध उसी को सदधर्म कहते हैं, जो तुम्हें तुम्हारे भीतर छिपे हुए सत्य से परिचित कराए। झूठी आस्थाओं में नहीं, धारणाओं में नहीं, शास्त्रों में नहीं, व्यर्थ के शब्दजालों में न भटकाए। जो तुम्हें तुमसे ही मिला दे।
और जब तुम अपने से मिलोगे तो तुम पाओगे, विराट शून्य है वहां। तुम्हारे ठीक भीतर कोई भी नहीं है। इससे हमें ऐसा लगता है, कोई भी नहीं है तो फिर सार क्या खोजने का? कोई भी नहीं है तो फिर आत्म-ज्ञान? आत्मा को पाने की बातें?
जो जानते हैं, उन्होंने आत्मा के स्वरूप को भी शून्य ही कहा है, निर्गुण ही कहा है। बुद्ध ने उसे ठीक-ठीक अभिव्यक्ति दी। उन्होंने आत्मा शब्द में भी खतरा देखा। क्योंकि उससे लगता है कि तुम किसी चीज की तलाश में हो, जो भीतर रखी है। जब तुम कहते हो, मेरे भीतर आत्मा है, तुमने ख्याल किया-- ऐसे ही, जैसे तुम्हारे घर में कुर्सी रखी है, तुम्हारे भीतर आत्मा रखी है! आत्मा कोई वस्तु है कि गए भीतर और पा गए?
गौर से देखो, कौन भीतर जाएगा? अगर आत्मा भीतर रखी है तो फिर यह भीतर जाने वाला कौन है? अगर आत्मा भीतर रखी है तो फिर यह बाहर कौन गया? बुद्ध कहते हैं, न बाहर, न भीतर। वह जो यात्रा है, वह जो बाहर और भीतर आने वाला जाने वाला चैतन्य है, वही है। और वह चैतन्य वस्तु नहीं है, प्रवाह है। वह चैतन्य कोई ठहरा हुआ जल का सरोवर नहीं है; गंगा की सागर की तरफ भागती धारा है।
बुद्ध ने आत्मा शब्द का उपयोग नहीं किया, क्योंकि आत्मा से जड़ता का पता चलता है। तुम बड़े हैरान होओगे, क्योंकि तुम तो आत्मा का उपयोग जड़ता के विपरीत करने के आदी हो। तुम तो कहते हो, यह पत्थर जड़ है, इसमें कोई आत्मा नहीं। तुम तो कहते हो, आदमी में आत्मा है। आदमी जड़ नहीं।
बुद्ध ने कहा, आत्मा शब्द में ही जड़ता है। आत्मा शब्द का मतलब यह हुआ
कि कुछ तुम्हारे भीतर ठहरा हुआ है, रुका हुआ है। कुछ तुम्हारे भीतर मौजूद ही है। तो जो मौजूद ही है, वह जड़ है।
तुम्हारे भीतर कुछ हो रहा है--सतत। उसको आत्मा कैसे कहें? प्रवाहमान है, होने की अवस्था है, "है" नहीं। सदा हो रहा है। चैतन्य एक यात्रा है। तीर्थयात्रा कहो! कोई ठहराव नहीं है, कोई मुकाम नहीं है। चलते जाने का नाम है, होते जाने का नाम है। और यह होना कभी पूरा नहीं होता, क्योंकि जो पूरा हो जाए तो फिर जड़ता।
इसलिए बुद्ध की बात को समझना कठिन है। बुद्ध हुए बिना समझना कठिन है।
लेकिन बुद्ध कहते हैं, मानना मत। समझना हो तो तैयारी रखना यात्रा की। मानना हो तो किसी और द्वार पर जाकर सो रहना। बुद्ध का द्वार तुम्हारे लिए नहीं है।
"भगवान बुद्ध का मार्ग संदेह के स्वीकार से शुरू होता है। क्या उनका युग आज के युग जैसा ही बुद्धिवादी था?"
नहीं, युग से कोई संबंध नहीं है। बुद्ध अपने युग के बहुत पहले आ गए थे। बुद्ध पुरुष सदा ही अपने युग के पहले होते हैं। बुद्ध पुरुष कभी भी समसामयिक नहीं होते, कंटेम्प्रेरी नहीं होते। जहां होते हैं, वहां से आगे होते हैं। इसलिए जब भी होते हैं, जहां भी होते हैं, वहीं समझे नहीं जाते। वे जो भी कहते हैं, वही दीवालों पर पड़ता है, कानों पर नहीं। वे जो भी बताते हैं, अंधी आंखों पर पड़ता है, आंखों पर नहीं। हम उन्हें सुन लेते हैं, समझ नहीं पाते।
इतना ही होता तो भी कुछ बुरा नहीं था। हम उन्हें गलत समझ पाते हैं। इतना ही होता कि हम कहते कि हम नहीं समझ पाए, तो भी कोई हर्जा न था; हम उन्हें गलत समझ पाते हैं। क्योंकि यह तो हम मान ही नहीं सकते कि हम समझ

नहीं सकते। ठीक नहीं समझ सकते तो गलत समझ लेते हैं। लेकिन यह धारणा तो मन में परिपोषित करते ही चले जाते हैं कि समझ लिया।
जिन्होंने बुद्ध को सुना, जिन्होंने बुद्ध को माना, जो बौद्ध बन गए, उन्होंने भी समझा नहीं। उन्होंने परमात्मा को छोड़ दिया, बुद्ध को पकड़ लिया। वे बुद्ध की पूजा करने लगे। बात कुछ बनी नहीं। पुराने मंदिर हट गए, नया मंदिर आ गया। पुरानी परंपरा चली गई, नई परंपरा ने जगह ले ली। पुराने शास्त्र, वेद और गीता हट गए तो बुद्ध के वचन शास्त्र बन गए। समझे नहीं लोग। बुद्ध ने तुम्हें तुम पर फेंका था। बुद्ध ने कहा था, तुम ही तुम्हारे शास्ता हो। तुम ही तुम्हारे गुरु हो। तुम ही तुम्हारे शास्त्र हो और तुम्हारे चैतन्य के सिवाय कहीं कोई सहारा मत खोजना। चैतन्य को जगाना। उसी जागने में तुम एक दिन पाओगे, कि इधर तुम भी खो गए, उधर परमात्मा भी खो गया; मात्र चैतन्य का सागर बचा। उसको बुद्ध ने निर्वाण कहा है। जहां बूंद सागर से एक हो जाती है। जहां बूंद पाती है कि सागर ही है।
लेकिन बुद्ध ने सभी शब्द नकारात्मक उपयोग किए। वह भी तुम्हारी वजह से। कोई अड़चन न थी कि वे शून्य की जगह पूर्ण कह देते। कोई अड़चन न थी। तुम्हारे कारण। क्योंकि जैसे ही कोई विधायक शब्द उपयोग किया जाए, तुम तत्क्षण श्रद्धा करने को तैयार हो। तुम चलने को राजी नहीं हो, तुम विश्वास करने को राजी हो। तो बुद्ध ने सब नकारात्मक शब्दों का उपयोग किया। मोक्ष तक का उपयोग नहीं किया। क्योंकि मोक्ष शब्द को सुनते ही तुम्हें ऐसा लगता है कि कोई ऐसा वक्त आएगा जहां हम परिपूर्ण रूप से मुक्त होंगे--मगर होंगे। जहां मैं रहूंगा, मुक्त होकर रहूंगा; बंधन न होंगे, मैं होऊंगा।
बुद्ध ने कहा, तुम्हीं बंधन हो। जब बंधन न होंगे तो तुम भी न होओगे। कुछ होगा, जिसका तुम्हें कोई भी पता नहीं है। उसे मैं मत कहो, और आज कोई उपाय नहीं है उसे समझने का। आज तक तो तुमने जो जाना है वे बंधन ही बंधन जाने हैं। अब तक तो तुम बंधनों का जोड़ हो। तुम एक कारागृह हो।
तो बुद्ध ने कहा, मैं मुक्त होकर रहेगा, ऐसा नहीं; मैं से मुक्ति हो जाएगी।
इसलिए बुद्ध ने मोक्ष शब्द का उपयोग न किया। नया शब्द गढ़ा--निर्वाण। निर्वाण का अर्थ होता है, जैसे तुम दीए को फूंक देते हो, दीया बुझ जाता है, तो कहते हैं दीए का निर्वाण हो गया। निर्वाण का अर्थ है, जैसे दीया बुझ जाता है। फिर तुम खोजकर भी न पा सकोगे कि ज्योति कहां गई? तुम फिर बता न सकोगे कि पूरब गई ज्योति कि पश्चिम गई। फिर तुम बता न सकोगे कि आकाश में ठहर गई कि पाताल में ठहर गई। फिर तुम कह न सकोगे कहां है ज्योति। विराट में खो गई। नहीं हो गई।
तो बुद्ध ने एक अनूठा शब्द गढ़ाः निर्वाण। निर्वाण के दो अर्थ हैं। एक अर्थ है, दीए का बुझ जाना। जैसे दीया बुझ गया, ऐसे ही तुम बुझ जाओगे। फिर मत पूछो कि कहां रहोगे--मोक्ष में, स्वर्ग में परियों से घिरे, परियों के झुरमुट में, कल्पतरु के नीचे बैठे, जो-जो वासनाएं त्याग दी थीं उनका भोग करते हुए, या नर्क में पापों का कष्ट, दंड पाते हुए? कहां होओगे, बुद्ध ने कहा, मत पूछो यह बात। जैसे दीया बुझ जाता है, निर्वाण में ऐसे ही तुम बुझ जाओगे।
निर्वाण का दूसरा अर्थ होता है--वाण का अर्थ होता है, वासना--निर्वाण
का अर्थ होता है, वासना का बुझ जाना। जैसे दीया बुझ जाता है, ऐसी वासना बुझ जाएगी। और तुम एक वासना हो। दूसरे धर्म कहते हैं कि तुम अलग हो, वासनाओं ने तुम्हें घेरा। बुद्ध कहते हैं, तुम सभी वासनाओं का जोड़ मात्र हो। यह बड़ा क्रांतिकारी विचार है। दूसरे धर्म कहते हैं, तुम हो और वासनाएं हैं। बुद्ध कहते हैं, वासनाएं हैं, उनके जोड़ का नाम तुम हो।
जैसे हम लकड़ियों का एक गट्ठर बांधते हैं। दस लकड़ियां पड़ी थीं, उनको बांधकर एक गट्ठर बना लिया। अब हम इसको बंडल कहते हैं, गट्ठर कहते हैं।
लेकिन गट्ठर क्या दस लकड़ियों से कुछ अलग है? दस लकड़ियां इकट्ठी हैं। एक-एक लकड़ी बाहर निकाल लो तो पीछे गट्ठर बचेगा? जब दसों लकड़ियां निकाल लोगे तो पीछे कुछ भी न बचेगा।

ऐसा बुद्ध ने कहा कि तुम अलग और तुम्हें वासनाओं ने घेरा, ऐसा नहीं; तुम वासना हो, तुम तृष्णा हो, हवस, होने की दौड़! बस! तुम सारी वासनाओं का जोड़ हो। एक-एक वासना निकालते जाओ। उतने ही तुम कम होते जाओगे। जिस दिन आखिरी वासना बुझ जाएगी, उस दिन तुम न हो जाओगे। उस दिन पीछे तुम बचोगे नहीं। जैसा कि और लोग कहते हैं कि पीछे तुम बचोगे, शुद्ध आत्मा बचेगी। ऐसा बुद्ध कहते हैं, क्या बचेगा? गट्ठर पीछे नहीं बचेगा, सब खो जाएगा। इस खो जाने को निर्वाण कहते हैं। मोक्ष नहीं कहा, कैवल्य नहीं कहा, परमपद नहीं कहा, ब्रह्मलोक नहीं कहा, क्योंकि वे सब विधायक शब्द हैं। उनको सुनते से ही तुम्हारी वासनाओं में प्राण आ जाते हैं।
अभी तुम मुझे सुन रहे हो, लेकिन कहीं तुम्हारे भीतर कोई कहे चला जा रहा होगा कि नहीं-नहीं, ऐसा कैसे होगा? सब वासनाएं शून्य हो जाएंगी तो हम न होंगे? नहीं, सब वासनाएं शून्य हो जाएंगी, मगर हम होंगे। शुद्ध रूप में होंगे। मगर शुद्ध रूप का मतलब क्या होता है? शुद्ध तुम तभी होते हो, जब नहीं होते हो। जब तक हो, तब तक तो अशुद्धि रहेगी। होना ही अशुद्धि है। बुद्ध ने बड़ी बारीक बात कही। बारीक से बारीक, जो कभी किसी ने नहीं कही थी। फिर उस पर कोई और परिष्कार नहीं हो सका। हो भी न सकेगा। बुद्ध ने आखिरी बात कही। बुद्ध अंतिम वक्तव्य हैं। उसमें और सुधार करना, तरमीम करनी, संशोधन करना मुश्किल है।

दूसरा प्रश्नः आपका ही वचन हैः समझ आवश्यक है, पर पर्याप्त नहीं। बुद्धि के पास अवश्य एक छोटा सा द्वीप है प्रकाशित, लेकिन वह द्वीप एक अर्द्ध प्रकाशित सागर में है। और वह अर्द्ध प्रकाशित सागर एक पूर्णतः अप्रकाशित महासागर में है। क्या इस वक्तव्य पर प्रकाश डालने की कृपा करेंगे?

निश्चित ही, समझ आवश्यक है। अनावश्यक तो इस जगत में कुछ भी नहीं है। अन्यथा होता ही नहीं। है, तो आवश्यक ही होगा। है, तो आवश्यकता से ही है। अनावश्यक होगा ही कैसे? होगा ही क्यों? अनावश्यक आएगा कहां से? आया है, सिलसिला है, संबंध है। कार्य-कारण का कोई प्रवाह है, जोड़ है।
समझ उपयोगी है। क्योंकि समझ ही तो तुम्हें समझाएगी कि समझ काफी नहीं है। समझ से ही तो तुम समझोगे कि समझ के पार जाना है। समझ ही तो तुम्हें जगाएगी कि यह समझ की नींद से उठो। बहुत देखे सपने विचारों के। प्रत्यय और धारणाओं के जाल में बहुत जीए। अब उठें। सुबह हुई, भोर हुई।
कौन तुम्हें जगाएगा लोभ से? कौन तुम्हें जगाएगा क्रोध से? कौन तुम्हें जगाएगा काम से? अगर कोई सदगुरु के वचन भी सार्थक हो जाते हैं तुम्हें जगाने में, तो इसीलिए कि उस सदगुरु के वचन तुम्हारी समझ के साथ, तुम्हारी सोई हुई समझ के साथ कोई संबंध स्थापित कर लेते हैं। किसी सदगुरु के वचन अगर तुम्हें जगाने में समर्थ हो जाते हैं, तो इसीलिए कि तुम्हारी समझ और सदगुरु के बीच सेतु बन जाता है; अन्यथा कोई उपाय न था। पत्थरों को तो जगाऊं! सुनते रहेंगे, पड़े रहेंगे। तुममें भी बहुत पत्थर हैं, जो सुनते रहेंगे, पड़े रहेंगे। किसी के भीतर समझ होगी तो करवट लेगी, अंगड़ाई लेगी, जगेगी।
देख के कररोफर दौलत का तेरा जी ललचाए
धन को देखकर ईर्ष्या जगती है, महत्वाकांक्षा जगती है।
देख के कररोफर दौलत का तेरा जी ललचाए
सूंघ के मुस्की जुल्फों की बू नींद सी तुझको आए
जैसे बेलंगर की कश्ती लहरों में बुलाए
मन की मौज में नीयत यूं है तेरी डांवाडोल
तौल, अपने को तौल!
लेकिन तौलने का तो एक ही सूत्र है, भीतर की समझ थोड़ी देखना शुरू करे। तुमने अब तक अपनी समझ का एक ही उपयोग किया है--नासमझी को साथ दिया है। क्रोध करना है तो तुमने समझ का सहारा दिया है क्रोध को। समझ तो तुम्हारे

पास है; ठीक उतनी ही, जितनी किसी बुद्ध पुरुष के पास है। उपयोग कहीं गलत हो रहा है, गलत दिशा में हो रहा है।
जब तुमने क्रोध किया है तो तुमने हजार तर्क खोजे हैं कि क्रोध जरूरी था। तुमने अपने बच्चे को मारा है, क्रोध किया है, तो तुमने कहा, न मारेंगे तो सुधरेगा कैसे? जैसे कि यह कोई सिद्ध प्रमाण हो कि मारने से कोई कभी सुधरा है। कौन सुधरा है? नहीं, लेकिन बहाना है। असली बात थी कि तुम क्रोधित हो गए थे। लेकिन क्रोध को सीधा-सीधा करने की तो तुम्हारी भी हिम्मत नहीं। लोग क्या कहेंगे? तुम अच्छे-अच्छे कारण खोजते हो। तुम कहते हो, बच्चे को सुधारना है।
शिक्षक स्कूल में बच्चों को पीटता है, इसलिए नहीं कि बच्चों को सुधारने से उसे कुछ लेना-देना है; क्या प्रयोजन है? लेकिन जब भी बच्चे उसके अधिकार को कहीं भी चोट करते हैं, उसके अहंकार को कहीं भी चोट करते हैं, तब वह ऐसा नहीं कहता कि मेरे अहंकार को चोट पहुंची है, इसलिए मैं तुम्हें मारूंगा। क्योंकि यह बात तो फिर जरा मुश्किल हो जाएगी, इसको छिपाना मुश्किल हो जाएगा। वह कहता है, तुम्हारे सुधार के लिए, तुम्हारे हित के लिए तुम्हें मारना जरूरी है।
तुमने कभी गौर किया कि तुम कितने तर्क और कितने कारण खोजते हो क्रोध
के लिए! लोभ के लिए तुम समझ का कितना सहारा देते हो! ईर्ष्या को भी तुम ईर्ष्या नहीं कहते, स्पर्धा कहते हो। यह समझ का सहारा है। तुम कहते हो, स्पर्धा न होगी तो जीवन जड़ हो जाएगा। प्रतियोगिता न होगी तो विकास कैसे होगा? प्रगति कैसे होगी?
मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं कि अगर प्रतियोगिता खो गई तो प्रगति खो जाएगी। तो प्रगति को बचाने के लिए प्रतियोगिता करनी उनको जरूरी मालूम पड़ती है। यद्यपि प्रतियोगिता के अच्छे नाम के नीचे सिर्फ ईर्ष्या छिपी है, जलन छिपी है। किसी दूसरे के पास है और उनके पास नहीं है। कोई दूसरा आगे है और वे पीछे हैं।
तो तुमने लोभ को सहारा दिया है, क्रोध को सहारा दिया है, तुमने कामवासना को सहारा दिया है। तुमने समझ का अब तक गलत उपयोग किया है।
समझ का एक और उपयोग है, सही उपयोग है। वही सदधर्म है। वह उपयोग है, क्रोध को समझने के लिए समझ का उपयोग। क्रोध क्या है? लोभ क्या है? जिसने क्रोध को समझा, वह क्रोध से दूर हटने लगा। जिसने लोभ को समझा, वह लोभ से दूर हटने लगा। क्योंकि लोभ ने सिवाय नर्कों के और कुछ बनाया नहीं तुम्हारे लिए। और क्रोध ने दूसरों को जलाया--जलाया हो, न जलाया हो, तुमको तो जलाया ही है। क्रोध से तुमने दूसरों पर कुछ अंगारे फेंके जरूर, लेकिन अंगारों को पहले अपने भीतर तो पैदा करना पड़ता है।
जब तुम किसी को गाली देते हो तो दूसरे को चोट पहुंचेगी न पहुंचेगी, यह
उस पर निर्भर है, तुम्हारी गाली पर नहीं। क्योंकि तुम किसी बुद्ध पुरुष को गाली दोगे तो नहीं चोट पहुंचेगी। गाली चोट नहीं पहुंचाती। वह तो किसी बुद्धू पर निर्भर है कि वह गाली को पकड़ लेगा तो चोट खाएगा। तुम्हारी गाली ने चोट नहीं पहुंचाई, लेकिन गाली देते वक्त गाली को पैदा करना पड़ता है भीतर। तुम्हारे भीतर नासूर चाहिए। नहीं तो गाली पैदा कैसे होगी? नाली के कीड़े पैदा करने हों तो गंदी नाली चाहिए। गालियां पैदा करनी हों तो हृदय में नासूर चाहिए, दुखते घाव चाहिए, मवाद चाहिए। नहीं तो गाली कैसे पैदा होगी? गाली कहीं आकाश से तो नहीं आती।
गुलाब की झाड़ी पर गुलाब लगते हैं। जड़ों से सम्हालता है, तब गुलाब की झाड़ी पर गुलाब लगते हैं। तुम्हारी झाड़ी पर अगर गालियां लगती हैं तो जड़ों से आती होंगी। कहीं अल्सर होंगे भीतर--आत्मा के अल्सर। कहीं घाव होंगे भयंकर। वहां तुम पहले पोसते हो, पालते हो, गालियों को बड़ा करते हो। तुम्हारे भीतर कोई गर्भ होगा, जहां गालियां सुरक्षित होती हैं, निर्मित होती हैं। कोई कारखाना होगा। फिर तुम वहां तैयार करते हो। अपने को गंवाकर, अपने को मिटाकर अंगारे पैदा करते हो। फिर उन्हें फेंकते हो दूसरों पर, कि दूसरे भी जलें। तुम पहले ही जल चुके होते हो।

तुम से बहुत बार कहा गया है कि क्रोध मत करना, दंड पाओगे। मैं तुमसे कहता हूं कि क्रोध मत करना, क्योंकि क्रोध के पहले ही तुम दंड पा चुके होते हो। क्रोध के बाद दंड मिले, यह बात ही गलत। कौन देगा बाद में दंड? कोई नियंता नहीं बैठा है। नियंता होता तो तुम उससे बचने की तरकीब भी निकाल लेते। वकील खड़े कर लेते। रिश्वत खिला देते। बहुत यही कर रहे हैं। वे सोचते हैं, प्रार्थना एक रिश्वत है। पूजा एक रिश्वत है। पुजारी एक वकील है। जरा इसका आना-जाना है भगवान के पास, इसके सहारे वे अपनी भी खबर पहुंचा देते हैं।
नहीं, गाली देने के पहले ही तुम्हें दंड मिल चुका। लोभ करने के पहले ही, लोभ के पालने में ही तुम सड़ चुके। अब और दंड की कोई जरूरत नहीं है। काफी हो गई बात।
समझ का दूसरा उपयोग है, क्रोध को समझो; सहारा मत दो। और जैसे ही तुम बिना सहारा दिए क्रोध को देखोगे, तुम पाओगे, यह तो जहर था। यह तो आत्मघात था। तुम कर क्या रहे थे अब तक? अपने को मिटाने में लगे थे! तुम हटने लगोगे दूर। और जो ऊर्जा, जो शक्ति क्रोध में संलग्न होकर व्यर्थ नष्ट होती थी, विध्वंस होती थी, वही ऊर्जा करुणा बन जाएगी।
जब क्रोध हटता है तो करुणा पैदा होती है। क्योंकि ऊर्जा को कहीं तो जाना होगा। जब कांटे न बनेंगे तो ऊर्जा मुक्त होगी, फूल बनेगी। जो लोभ बनती थी ऊर्जा, वही दान बनेगी। जो काम बनती थी ऊर्जा, वही प्रेम बनेगी।
और अनंत सीढ़ियां हैं आत्म-जीवन की। धीरे-धीरे तुम ऊपर उठते जाते हो। गुरुत्वाकर्षण तुम्हें खींचता नहीं। एक ऐसी घड़ी आती है सदधर्म की, जहां तुम्हें पंख लग जाते हैं; जहां तुम प्रसादरूप हो जाते हो; जहां तुम्हें कोई बाधा नहीं रह जाती।
करे जो हिम्मत तो कुछ फजाएं इन आसमानों के पार भी हैं
करे जो हिम्मत तो कुछ फजाएं इन आसमानों के पार भी हैं
ये मैंने माना सकूं मयस्सर तुझे तहे-आसमां नहीं है
यह मैंने माना कि जहां तुम हो, जैसे तुम जी रहे हो, जिस आसमान के तले तुमने अपना घर बनाया है, बड़ा छोटा है। आंगन तुम्हारा बहुत छोटा है, रहने योग्य नहीं। तुम जिस काल-कोठरी में रह रहे हो; काम, क्रोध, लोभ, मोह से तुमने जो अपने आसपास घर बना लिया है, वह नर्क है।
ये मैंने माना सकूं मयस्सर तुझे तहे-आसमां नहीं है
यह जो छोटा सा आसमान तुम्हारे जीवन का है, इसके नीचे कोई सुकून, कोई शांति, कोई आनंद संभव नहीं है, यह माना। लेकिन घबड़ाने की कोई बात नहीं है! करे जो हिम्मत तो कुछ फजाएं इन आसमानों के पार भी हैं
आसमानों के पार और भी आसमान हैं। आसमानों के पार--और पार--और भी आसमान हैं। आसमानों का कोई अंत नहीं है।
इस अनंत आसमानों के विस्तार को बुद्ध ने शून्य कहा है। यह शून्य वही है, जिसको उपनिषद ब्रह्म कहते हैं। इन अनंत आसमानों के साथ अपने को एक कर लेने को बुद्ध ने निर्वाण कहा है। यह निर्वाण वही है, जिसको और बुद्ध पुरुषों ने मोक्ष कहा है।
बुद्धि बड़ी छोटी सी बात है। बुद्धि से ही अगर तुमने सारे जीवन को समझना चाहा, तो तुमने बड़ी संकीर्ण सीमाएं लगा दीं अस्तित्व पर। तुम्हारी संकीर्ण सीमाओं के कारण ही तुम अस्तित्व से वंचित रह जाओगे।
बुद्धि उपयोगी है, उसका उपयोग कर लो। उसका उपयोग कर लो उसके पार जाने
के लिए। उसकी सीढ़ी बना लो। उस पर चढ़ जाओ। उससे छलांग लगाने का उपयोग कर लो। दीवार से घिरा था हरम का कुसूर क्या
पैदा अगर हदूद में वुसअत न हो सकी
मंदिर का क्या कुसूर? मस्जिद का क्या कुसूर? दीवाल से घिरी है।
दीवार से घिरा था हरम का कुसूर क्या
काबा का क्या कुसूर? काशी का क्या कुसूर? दीवाल से घिरी हैं।
पैदा अगर हदूद में वुसअत न हो सकी
अगर विशालता पैदा न हो सकी तो कुसूर कुछ भी नहीं, क्योंकि दीवालें थीं।

तुम्हारी बुद्धि विचारों की दीवाल से घिरी है। उस दीवाल को हटाना ही पड़ेगा; तो वुसअत पैदा हो जाए; तो विशालता पैदा हो जाए।
तुमने कभी एक भी क्षण अनुभव किया, जब विचार नहीं होते, तुम होते हो? जब विचार नहीं होते, तुम भी नहीं होते। जब विचार नहीं होते, तब एक विराट आकाश होता है। तब बीच की कोई दीवाल नहीं होती जो बांटे, अलग करे। कोई विभाजन नहीं होता। तुम अविभाज्य होते हो। अस्तित्व के साथ एक होते हो। उसी को भक्तों ने भगवान कहा है।
वह भक्तों की भाषा है। बुद्ध को वह भाषा प्रिय नहीं। क्योंकि बुद्ध
ने उस भाषा के बड़े दुष्परिणाम देखे। भक्तों के लिए ठीक रही होगी, लेकिन भक्तों के पीछे जो चलते हैं, उन्होंने कुछ और ही समझ लिया।
थोड़ा देखो, भगवान का अर्थ है, विशालता। इसलिए भक्त वह है, जिसने जीवन
की विशालता जानी। जिसने ऐसा जीवन जाना, जिस पर कोई सीमा नहीं। लेकिन फिर हिंदू भक्त है, वह हिंदू भगवान की पूजा करता है। उसका भगवान भी सीमित है। फिर ईसाई है, वह ईसाई भगवान की पूजा करता है। उसका भगवान भी सीमित है। भगवान का अर्थ ही है, जो असीम हो। और अंधों ने भगवान पर भी सीमाएं लगा
दी हैं। उन्होंने विशालता के चारों तरफ भी दीवाल खड़ी कर दी। उन्होंने कहा, यह हमारी विशालता है, वह तुम्हारी विशालता है। ये अलग-अलग हैं। उन्होंने एक-दूसरे के सिर भी फोड़े, मंदिर तोड़े, मस्जिदें जलायीं। लेकिन सारी सीमाएं मूलतः बुद्धि की सीमाएं हैं। और जब तक भीतर बुद्धि विशाल न हो जाए, तब तक तुम बाहर मंदिर-मस्जिद खड़े करते ही रहोगे। उससे कोई भेद न पड़ेगा।
समझ जरूरी है। छोटा सा द्वीप है समझ का, जिस पर थोड़ी रोशनी है। उसका उपयोग कर लो। उस रोशनी को हाथ में ले लो। उस रोशनी की मशाल बना लो। तो द्वीप के चारों तरफ घना अंधकार है, तुम मशाल लेकर चल पड़ो। तुम जहां रहोगे, वहां अंधकार न रहेगा।
समझ सीमित घेरे में न रह जाए तो मशाल बन जाती है। फिर तुम जहां जाते हो, वहीं तुम्हारा मार्गदर्शन करती है। अगर सीमित घेरे में रह जाए तो बंधन बन जाती है। तो फिर तुम डरने लगते हो अंधेरे में जाने से। तुम ऐसे आदमी हो, जिसने घर में दीया जला रखा है; बाहर जाने से डरता है, क्योंकि बाहर अंधेरा है। मैं तुमसे कहता हूं, बाहर अंधेरा है, माना; और अंधेरे में जाने से डर है यह भी माना; दीया हाथ में क्यों नहीं उठा लेते? दीए को साथ बाहर क्यों नहीं ले जाते? जहां जाओ, दीए को साथ ले जाओ। तुम जहां रहोगे, वहां अंधेरा न रहेगा।
समझ की मशाल बनानी जरूरी है। समझ को ठोंककर कहीं गाड़ मत दो; हिंदू- मुसलमान की मत बनाओ, मंदिर-मस्जिद में सीमित मत करो; मुक्त रखो। मशाल बना लो। जहां जाओगे, वहां रोशनी बढ़ती जाएगी। इन अनंत विस्तार में तुम समझ की नाव बना लो। इसको तुम राह की खूंटी मत बनाओ। उससे बंधो मत, नाव बना लो। यह तुम पर निर्भर है। जिस लकड़ी से खूंटी बनती है, जिससे तुम बंधते हो, उसी लकड़ी से नाव भी बन जाती है।

तीसरा प्रश्नः भगवान बुद्ध आत्मा को नहीं लेकिन चैतन्य को, अप्रमाद
को तो मानते हैं। और चैतन्य शायद परम है, या क्या उसका भी निर्वाण होता है?

कठिन होगा समझना। चैतन्य का भी निर्वाण हो जाता है। क्योंकि चैतन्य
की जरूरत तभी तक है, जब तक तुम्हारे भीतर अचैतन्य है; अचेतना है। जब तक घर में अंधेरा है, तभी तक रोशनी की जरूरत है। और जब तक भीतर बीमारी है, तभी तक औषधि की जरूरत है। और जब बीमारी ही चली गई तो औषधि का क्या करोगे? और जब अंधेरा ही न रहा तो रोशनी को क्या करोगे? सुबह तो दीया बुझा देते हो न! जब सूरज उग आया तो दीए का क्या करोगे? जब सूरज उग आया तो मशाल लेकर चलोगे तो लोग पागल समझेंगे।
एक ऐसी घड़ी आती है आखिरी, जहां चैतन्य की भी जरूरत नहीं रह जाती। इतना विराट चैतन्य चारों तरफ फैला होता है कि अपने चैतन्य का क्या सवाल है? उसको भी ढोना बोझ मालूम पड़ने लगता है।
होने ही को है ऐ दिल तकमील मुहब्बत की

एहसासे-मुहब्बत भी मिटता नजर आता है
प्रेम पर, प्रेम की यात्रा में ऐसा पड़ाव आता है, जहां प्रेम का भाव भी विलीन हो जाता है। क्योंकि सभी भाव विपरीत पर निर्भर हैं।
होने ही को है ऐ दिल तकमील मुहब्बत की
अब प्रेम की पूर्णता करीब ही आती है। यह करीब ही आने लगी ऐ दिल, प्रेम
की पूर्णता!
एहसासे-मुहब्बत भी मिटता नजर आता है
अब तो प्रेम का भाव भी मिटता हुआ नजर आ रहा है। तो पूर्णता करीब आने लगी।
इसे समझो। विपरीत के कारण आवश्यकता है। क्रोध है, इसलिए समझाते हैं, करुणा चाहिए। जब क्रोध ही न होगा तो करुणा भी क्या चाहिए? इसका यह मतलब नहीं है कि तुम कठोर हो जाओगे। इसका मतलब इतना ही है कि तुम इतने करुणा से एक हो जाओगे कि तुम्हें पता ही न चलेगा कि करुणा है। करुणा का पता भी कठोर लोगों को चलता है।
तुम रास्ते पर किसी को दान दे आते हो, तो तुम कहते फिरते हो कि दान दे आए। यह लोभी आदमी का लक्षण है। लोभ के कारण दान का पता चला। अगर लोभ बिल्कुल मिट गया हो तो देने का पता कैसे चलेगा? दे दोगे ऐसे ही, जैसे श्वास बाहर आती है, भीतर जाती है। किसको पता चलता है? हां, कभी-कभी पता चलता है श्वास का; श्वास की कोई बीमारी हो जाए तो पता चलता है। नहीं तो श्वास का कहीं पता चलता है? चलती रहती है, आती-जाती रहती है। स्वास्थ्य का कोई पता नहीं चलता, बीमारी का ही पता चलता है।
तुम्हें प्रेम का पता चलता है, क्योंकि तुम्हारे भीतर घृणा अभी भी मौजूद है। जब घृणा बिल्कुल मिट जाएगी, तुम क्या किसी से कह सकोगे कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं? कैसे कहोगे? तुम प्रेम-रूप हो गए होओगे। कौन कहेगा, मैं प्रेम करता हूं? कौन अलग होकर कहेगा कि मैं प्रेम करता हूं? प्रेम करने के लिए भी घृणा करने की क्षमता चाहिए। प्रेम करता हूं, ऐसा पता चलने के लिए घृणा शेष चाहिए। जब घृणा बिल्कुल ही शून्य हो जाती है, तो प्रेम कैसा! इधर घृणा गई, प्रेम का भाव भी गया। इसका यह मतलब नहीं है कि प्रेम नहीं बचता। प्रेम ही प्रेम बचता है, लेकिन बोध कैसे हो?
जब तक भीतर मूर्च्छा है, तब तक चेतना भी पता चलती है। जब मूर्च्छा बिल्कुल चली जाती है तो चेतना का भी पता नहीं चलता। पता किसको चले? कैसे चले? पता चलने के लिए विपरीत की मौजूदगी चाहिए।
तुम बाहर हो जेलखाने के; तुम्हें पता चलता है जेल के बाहर होने का? कुछ पता नहीं चलता। एक दफा जेल होकर आओ। तब जेल से छूटोगे, राह पर आकर खड़े हो जाओगे, तो तुम्हें पता चलेगा स्वतंत्रता का। राह से हजारों लोग निकल रहे हैं, उनमें से किसी को पता नहीं चलता। तुम अगर उनसे कहोगे, नाचो! मुक्त हो तुम! जेल के बाहर हो। वे कहेंगे, पागल हो गए? दफ्तर जा रहे हैं। अपने घर जा रहे हैं। नाचें किसलिए? तुमको लगता है, नाचें। तुम जेल में थे। जंजीरों ने तुम्हें स्वतंत्रता का बोध दिया। लेकिन कितनी देर यह याद रहेगी? एक-आध दिन, दो दिन, चार दिन, दस दिन। जैसे-जैसे स्वतंत्रता स्वीकार हो जाएगी, वैसे-वैसे बोध खो जाएगा।
सिर का पता चलता है, जब सिर में दर्द होता है। जब सिर में दर्द नहीं होता, सिर का पता नहीं चलता। जिसको सिर में दर्द कभी हुआ ही नहीं है, उसे सिर का पता ही नहीं है।
शांति का पता चलता है, क्योंकि अशांति है।
विश्राम का पता चलता है, क्योंकि थकान है।
प्रकाश का पता चलता है, क्योंकि अंधकार है।
जीवन का पता चलता है, क्योंकि मौत है।
जिन्होंने अमृत जीवन को जाना, उनको धीरे-धीरे जीवन का पता भी नहीं चलता। जहां मृत्यु नहीं है, वहां जीवन का पता कैसे चले?
होने ही को है ऐ दिल तकमील मुहब्बत की
एहसासे-मुहब्बत भी मिटता नजर आता है
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 3
तेईसवां प्रवचन

सत्संग-सौरभ

यावजीवम्पि ते बालो पंडितं पयिरुपासति।
न सो धम्मं विजानाति दब्बी सूपरसं यथा।। 58।।

मुहुत्तमपि चे विज्यू पंडितं पयिरुपासति।
खिप्पं धम्मं विजानाति जिह्वा सूपरसं यथा।। 59।।

चरंति बाला दुम्मेधा अमित्तेनेव अत्तना।
करन्तो पापकं कम्मं यं होति कटुकफ्फलं।। 60।।

आज सत्संग की कुछ बात करें। इन सूत्रों में सत्संग की ही आधारशिला है। सत्संग से ज्यादा महत्वपूर्ण कुछ और नहीं है। अंधे को जैसे आंख मिल जाए, या गूंगे को जबान; या मुर्दा जैसे जग जाए और जीवित हो जाए, ऐसा सत्संग है। सत्संग का अर्थ हैः तुम्हें पता नहीं है; किसी ऐसे का साथ मिल जाए जिसे पता है, तो जैसे तुम्हें ही पता हो गया; तो जैसे तुम्हारे हाथ में अंधेरे में मशाल आ गई।
सत्संग का अर्थ हैः जैसे तुम अंधकार में हो और अचानक बिजली कौंध जाए।
एक रोशनी चारों तरफ फैल जाए। फिर चाहे अंधेरा घिर जाए, लेकिन तुम दुबारा वही न हो सकोगे। तुम फिर अंधेरे में न हो सकोगे। अब तुम जानते हो कि रास्ता है। अब तुम जानते हो कि मंजिल है। सत्संग में न केवल तुम्हें रास्ते का पता चलता है, मंजिल का पता चलता है। तुम्हें उस आदमी का भी स्वाद मिल जाता है, जो मंजिल पर पहुंच गया है। तुम्हें अपने भविष्य की झलक मिलती है। तुम जो हो सकते हो, उसका सपना जगता है। तुम जो नहीं हो पा रहे हो, उसकी पीड़ा पैदा होती है।
सत्संग परम सुख भी है, परम पीड़ा भी।
पीड़ा--कि गंवाया बहुत। पीड़ा--कि अब तक व्यर्थ ही भटके। पीड़ा--कि अब तक चले तो बहुत, लेकिन पैर मार्ग पर न पड़े। पीड़ा--कि जन्मों-जन्मों में कितनी यात्रा की, और इंचभर मंजिल से दूरी कम न हुई।
और सुख, एक महासुख, कि भला हम न पहुंचे हों, कोई और हम जैसा पहुंच गया। भला हम न पहुंचे हों, लेकिन पहुंचना संभव है। भला हम न पहुंचे हों, लेकिन मनुष्य पहुंच सकता है, यह भरोसा।
पीड़ा बड़ी है, लेकिन सत्संग का सुख उससे भी बड़ा है। पीड़ा के उन्हीं कांटों के बीच सत्संग का गुलाब खिलता है, फूल खिलता है। अपने लिए तुम रोते हो, लेकिन अब किसी और के लिए, और किसी और में अपने भविष्य की झलक पाकर अपने लिए भी नाचते हो।
सत्संग कुछ ऐसी बात है, जिसका पूरब को पता है, पश्चिम को पता ही नहीं।
वह आयाम पश्चिम से अपरिचित ही रह गया। और आधुनिक मनुष्य, चाहे पूरब में हो चाहे पश्चिम में, करीब-करीब पश्चिम का है, पाश्चात्य है। इसलिए आधुनिक मनुष्य को भी सत्संग का राज चूका जाता है। पूरब में हमने एक अनूठी बात जानी, कि कुछ ऐसे राज हैं कि अगर तुम जानने वाले आदमी के पास बैठ भी जाओ तो तुम्हें रूपांतरित कर देते हैं।
सदगुरु केटालिटिक है। कुछ करता नहीं और तुम्हारे भीतर कुछ हो जाता है। उसकी मौजूदगी काफी है। उसकी मौजूदगी करती है। तुममें भर इतना साहस चाहिए कि तुम अपने द्वार-दरवाजे थोड़े उसके लिए खोलो। तुममें इतना साहस चाहिए कि तुम अपनी आंख को मींचकर न बैठे रहो। आंख थोड़ी खोलो। तुममें इतना साहस चाहिए कि तुम उसका स्वागत करो कि आओ मेरे भीतर, पधारो।
तुम्हारी तरफ से इतना आमंत्रण--और ऐसी रोशनी जो तुमने कभी नहीं जानी, अचानक तुम्हारे भीतर उतरने लगती है। ठीक होगा कहना, उतरती नहीं, तुम्हारे भीतर जगती है। तुम्हारे भीतर सोई पड़ी थी। समान समान से आंदोलित हो जाता है। समान समान से आकर्षित हो जाता है। समान की समान पर कशिश है।

तो जब किसी व्यक्ति के भीतर रोशनी का सागर होता है, तो तुम्हारे भीतर
का सोया सागर भी करवट लेने लगता है। दूसरे की वासना तुम्हारी वासनाओं को जगा देती है। दूसरे की कामना तुम्हारी कामनाओं में अंकुरण कर देती है। दूसरे का कामना-मुक्त जीवन, तुम्हारे भीतर भी नए आयाम की शुरुआत होती है। दूसरे का करुणा से भरा हुआ हृदय तुम्हारे भीतर भी क्षणभर को उन ऊंचाइयों पर तुम्हें उठा देता है, जिन पर तुम अभी गए नहीं। जैसे छोटा बच्चा अपने बाप के कंधों पर बैठकर बाप से भी ऊंचा हो जाता है। जहां तक बाप को भी नहीं दिखाई पड़ता, वहां तक छोटे बच्चे को दिखाई पड़ने लगता है--बाप के कंधों पर। सत्संग का अर्थ हैः किन्हीं के चरणों में इतना झुक जाना, किन्हीं के प्रति इतना समर्पित हो जाना, कि तुम उन कंधों पर बैठने के हकदार बन सको। गुरु तुम्हें कंधों पर उठा लेता है। लेकिन उस उठाने के पहले जरूरी है कि तुम छोटे बच्चे की तरह झुक जाओ। तुम छोटे बच्चे की तरह निर्दोष हो जाओ। सत्संग की बड़ी कीमिया है, अल्केमी है। उसका अपना पूरा शास्त्र है। बाहर से खड़ा कोई देखता रहे तो उसे पता भी न चलेगा। यह कोई जोर-जोर से होने वाली वार्ता नहीं है। यह तो दो दिलों के बीच होने वाली गुफ्तगू है। यह तो दो दिलों के बीच होने वाली फुसफुसाहट है। कानों-कान इसकी किसी को खबर भी नहीं होती। बात कही भी नहीं जाती और पहुंच जाती है। कुछ किया भी नहीं जाता और क्रांति घट जाती है। बस, इतना ही चाहिए कि तुम आंख खोलकर देखने को तैयार हो।
सदगुरु यानी सत्संग।
सदगुरु का कुछ और उपयोग नहीं है। एक अर्थ में सदगुरु बिल्कुल ही गैर-उपयोगी है। तुम अगर संसार में उसका उपयोग खोजने जाओ तो कुछ भी उपयोग नहीं है। तुम उसे बेचने जाओ संसार में तो कुछ मूल्य न पा सकोगे। बाजार में उसकी कोई कीमत नहीं। क्योंकि सदगुरु कोई कमोडिटी, कोई बाजार की दुकान पर बिकने वाली चीज नहीं है। वस्तुतः उपयोगिता के जगत में उसका कोई भी मूल्य नहीं। सदगुरु का मूल्य निर-उपयोगिता के जगत में है। या उस जगत में है, जहां
हम उपयोगिता के भी पार उठते हैं। अतिक्रमण होता है फूलों के जगत में, सुगंधों के जगत में। जहां होना ही आनंद है। जहां हम किसी और क्षण के लिए नहीं जीते। जहां जीवन एक साधन नहीं है, परम साध्य है। जहां प्रतिक्षण मोक्ष है, मुक्ति है।
सदगुरु के पास होना सदगुरु का उपयोग है।
सत्संग का अर्थ हैः पास होना।
उपनिषद शब्द का भी यही अर्थ है। उपनिषद का अर्थ हैः गुरु के पास होना।
उपनिषद की वर्षा हुई उन लोगों पर, जो गुरु के पास हो गए। उन पर फूल ही बरस गए। उनके जीवन में नए चांद-तारों का आविर्भाव हुआ।
पास कैसे होओगे? समर्पण की कला सीखो, तो सत्संग उपलब्ध होता है।
समर्पण के बीज से ही सत्संग का फूल खिलता है।
बुद्ध के ये सूत्र सत्संग के सूत्र हैं। पहलाः
"यदि मूढ़ जीवनभर पंडित के साथ रहे तो भी वह धर्म को वैसे ही नहीं जान सकता है, जैसे कलछी दाल के रस को नहीं जानती।"
रहती जीवनभर साथ है। कलछी दाल में ही पड़ी रहती है। लेकिन दाल का रस उसे कभी पता नहीं चलता।

न सो धम्मं विजानाति दब्बी सूपरसं यथा।

ऐसे ही मूढ़--वही मूढ़ है बस, जो सत्संग का अवसर पाकर भी वंचित रह जाए।
ऐसा अपूर्व अवसर मिले और जो कलछी की तरह दाल में पड़ा रह जाए और जिसे स्वाद न आए।
मूढ़ता का एक ही अर्थ है कि जो अपने को खोले न, बंद रखे।
ऐसे मूढ़ तो अपने मन में यही समझता है कि बड़ा होशियार है। वह मूढ़ का लक्षण है, कि वह अपने को होशियार समझता है। अपनी होशियारी में ही मरता है।
होशियारी ही ले डूबती है।

मैंने यही देखा। नासमझों को पार होते देखा, समझदारों को डूब जाते देखा। नासमझी नाव भी बन जाती है। लेकिन समझदारी तो सिर्फ डुबाती है, सिर्फ डुबाती है। क्योंकि अहंकार वजनी चट्टान है। गर्दन से बांध ली तो नदी पार न हो सकोगे। अकेले तो पार हो भी जाते। बिना नाव के भी पार हो जाते। नदी नहीं डुबाती, नदी ने कभी किसी को नहीं डुबाया। गर्दन में बंधी चट्टान डुबाती है। और तुम अपनी कुशलता में, अपनी समझदारी में बड़ी से बड़ी चट्टानों को ढोने का आग्रह रखते हो।
तुम्हारी चेष्टा यही है कि तुम परमात्मा में "तुम" रहते प्रविष्ट हो जाओ। बस, यह "तुम" ही गले में बंधी चट्टान है। यह अहंकार ही ले डूबेगा। मूढ़ का अर्थ हैः जो अपनी समझदारी में अपने को बचाए चला जाता है।
थोड़ा समझना, क्योंकि थोड़ी न बहुत मूढ़ता सभी के भीतर है। कम ज्यादा हो, मात्रा में फर्क हो, है तो जरूर। तो समझने की कोशिश करना। मूढ़ता का अर्थ हैः तुम सोचते हो कि तुम बड़ी बहुमूल्य चीजें बचा रहे हो।
कल एक युवती ने मुझे कहा कि वह बगावती है, विद्रोही है। तो कुछ भी उसे कहा जाए, उससे उलटा करती है।
अब यह मूढ़ता का लक्षण हुआ। लेकिन वह अकड़ी है। उसका ख्याल है, उसके पास कुछ बेजोड़ व्यक्तित्व है। बगावती है, विद्रोही है।
अहंकार बड़ी तरकीबें खोजता है। बगावत के आभूषण खोजता है। विद्रोह के आवरणों में छिप जाता है। अच्छे-अच्छे नारे लिख लेता है अपने चारों तरफ।
उनके बीच सुरक्षित हो जाता है। अब यह भी मूढ़ता की बात हुई कि जो भी कहा जाए, उसी को हां कहने में कठिनाई मालूम पड़ती है।
जरूर न कहने की तैयारी रखो। बहुत कुछ है जिंदगी में, जिसको न कहना है। अगर न कहना नहीं जानते तो तुम्हारे हां कहने का कोई भी अर्थ नहीं, कोई मूल्य नहीं। तुम्हारी हां कचरा है। तुम्हारे न से ही बल आता है, शक्ति आती है। जरूर न कहने की तैयारी रखो, लेकिन न कहने की तैयारी का मतलब इतना ही है कि हां कहने की तैयारी में सहयोगी हो। नकार अपने आप में मूल्यवान नहीं है। जरूर घास-पात को काटो, लेकिन फूलों के बीज भी बोओ। जरूर व्यर्थ को जलाओ, लेकिन सार्थक को सम्हालो भी। कंकड़-पत्थर को छोड़ो, निश्चित छोड़ना ही है, लेकिन हीरों को मत फेंक देना। न कहो, लेकिन हर चीज के लिए न कहोगे? तब तो आत्मघात हो जाएगा। तुम्हारा इंकार बगावत न हुई, आत्महत्या हुई।
जरूर न कहो, पर तुम्हारी न तुम्हारे अत्यंत विवेक से निकले, विद्रोह
से नहीं। न कहने के मजे से नहीं, न कहना है इसलिए नहीं, न कहने के लिए नहीं। हां की तलाश में बहुत न भी कहनी पड़ेंगी। हीरों की खोज में बहुत पत्थर छोड़ने पड़ेंगे। लेकिन खोज पर नजर रहे। ध्यान विधेय पर हो; नकार का उपयोग कर लेना है।
उपनिषद कहते हैं, नेति-नेति विधि है ब्रह्म को पाने की। न कहना... न कहना विधि है ब्रह्म को पाने कीः यह भी नहीं, वह भी नहीं। लेकिन ध्यान रखना, खोजते चले जाना। यह तो न कहना तो सिर्फ उपाय है, ताकि व्यर्थ का इंकार हो जाए, सार्थक बच रहे, सार्थक में डुबकी लग जाए।
अब अगर न कहना ही जीवन की आदत हो जाए, यह जीवन की शैली बन जाए, कि तुम हां कहने में असमर्थ हो जाओ, पंगु हो जाओ, कि हां तुमसे निकल ही न सके, कि हां की गरदन तुम घोंट दो भीतर, तो फिर तुमने आत्महत्या कर ली। यह फिर मूढ़ता हो गई। फिर नहीं ने तुम्हें मारा। फिर नहीं तुम्हारी कब्र बन गई। फिर तुम नहीं का उपयोग न कर सके। नहीं ने ही तुम्हारा उपयोग कर लिया।
मत कहो इसे विद्रोह। मत कहो बगावत। बगावत बड़ी बात है। विद्रोह कीमती शब्द है। ऐसी क्षुद्रता के लिए उसका उपयोग मत करो। यह सिर्फ अहंकार है। और अहंकार मूढ़ता है। मैं तुम्हें न कहना सिखाता हूं, ताकि तुम हां कह सको किसी दिन। मैं चाहता हूं कि तुम्हारी न इतनी प्रगाढ़ हो जाए कि जब तुम हां कहो तो तुम्हारी हां की कोई सीमा न रहे। न जरूर कहो, ताकि हां में धार आ जाए। लेकिन न पर ही धार मत देते रहना। अन्यथा खुद की ही गरदन काट लोगे। कोई और न कटेगा इससे, खुद ही कटोगे।
लेकिन जिस युवती ने मुझे यह कहा, वह अपने को बुद्धिमान समझती है। सुशिक्षित है। लेकिन सुशिक्षित होने से कहीं कोई बुद्धिमान हुआ? अन्यथा

दुनिया में इतने बुद्धिमान होते, जिसका हिसाब न रहता। सुशिक्षित लोग तो बहुत हैं। पढ़े-लिखे लोग तो बहुत हैं। लेकिन पढ़े-लिखे होने से, साक्षर होने से सुबुद्धि का कोई भी संबंध नहीं। निरक्षर होकर भी सुबुद्धि हो सकती है, साक्षर होकर भी न हो।
अक्सर ऐसा ही होता है कि साक्षर अपनी साक्षरता में ही सुबुद्धि को खो देता है। समझ लेता है कि बस, विश्वविद्यालय की उपाधियों में सब ज्ञान मिल गया। इसलिए तो संसार में बुद्धों का होना कम होता चला गया है। क्योंकि ज्ञान के नाम पर मूढ़ता ने घर बना लिए हैं। ज्ञान के नाम पर मूढ़ता ने इतना इंतजाम कर लिया है, विश्वविद्यालयों की इतनी उपाधियां इकट्ठी कर ली हैं अपने चारों तरफ, कि बुद्धत्व के जन्म की संभावना न रही।
बुद्धत्व के जन्म का पहला सूत्र हैः अपने अज्ञान को समझना।
मूढ़ वही है, जो सोचता है कि ज्ञानी है। और अमूढ़ वही है, जिसने समझा कि मैं अज्ञानी हूं। अमूढ़ सत्संग को उपलब्ध हो सकेगा। मूढ़ दाल में कलछी की तरह पड़ा रहे जीवनभर, तो भी उसे कुछ स्वाद न लगेगा।
ऐसे लोगों को मैं जानता हूं, जिनसे मेरा संबंध वर्षों का है, लेकिन वे कलछी की भांति ही मुझसे जुड़े रहे। उन्हें कुछ स्वाद नहीं लगा। उन पर दया आती है। उनके लिए आंसू बहते हैं, लेकिन कोई उपाय नहीं। कलछी कलछी है। जब तक वही राजी न हो बदलने को, तब तक कुछ भी किया नहीं जा सकता।
"यदि मूढ़ जीवनभर पंडित के साथ रहे तो भी वह धर्म को वैसे ही नहीं जान सकता है, जैसे कलछी दाल के रस को नहीं जानती है।"
कलछी बड़ी कठोर है, सख्त है। उसकी सख्ती के कारण ही संवेदना-शून्य है।
तुम कलछी की भांति मत रहना। सख्त मत रहना। थोड़े संवेदनशील बनो। अपने चारों तरफ एक पर्त को मत खड़ी करो। उस पर्त के कारण न तुम रो सकते हो, न तुम हंस सकते हो। उस पर्त के कारण तुम्हारा सब झूठा हो गया है, अप्रामाणिक हो गया है। सूरज उगता है, लेकिन तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। फूल खिलते हैं, लेकिन तुम्हारे प्राणों से उनका कोई संबंध नहीं जुड़ता। हवाएं आती हैं, लेकिन तुम्हें बिना छुए गुजर जाती हैं।
परमात्मा हजार-हजार ढंग से तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है। तुम हजार-हजार ढंग से अपने को समझा लेते हो, कुछ और होगा, कोई राहगीर होगा, या कोई भिखमंगा आ गया होगा, या हवा का झोंका आया होगा। उसकी पगध्वनियां बहुत बार तुम्हारे करीब आती हैं। तुम्हारे हृदय की धड़कन से भी ज्यादा करीब उसकी पगध्वनियां हैं। सत्य तुम्हारे तुमसे भी ज्यादा करीब है, क्योंकि सत्य तुम्हारा स्वाभाव है। एस धम्मो सनंतनो। लेकिन तुम अपने ऊहापोह में ऐसे उलझे हो कि जो निकटतम है, समीपतम है, वह भी सुनाई नहीं पड़ता। संवेदनशील बनो। सत्संग का पहला सूत्र है, संवेदनशील बनो। अगर तुम परमात्मा की हवाओं के लिए मुक्त नहीं, अगर परमात्मा की सूरज की किरणें तुम पर पड़ती हों लेकिन तुम अछूते रह जाते हो, तो तुम परमात्मा के लिए भी खुले नहीं हो। और जब परमात्मा किसी सदगुरु में तुम्हारे बीच खड़ा हो जाएगा, तब तुम हजार तरह की व्याख्याएं कर लोगे। तुम्हारी व्याख्याएं ही तुम्हारे और सदगुरु के बीच में दीवालें बन जाएंगी। तुम्हारे शब्द, तुम्हारी समझदारी ही तुम्हारी आंख पर पर्दा डाल देगी। और तुम वही समझ लोगे, जो तुम समझ सकते थे। सत्संग वहीं चूक जाता है। वह समझो, जो सदगुरु है। वह मत समझो, जो तुम समझ सकते हो।
अपनी समझ को थोड़ा किनारे रखो। अपनी समझ को थोड़ी बाद दो। अपनी समझ को कभी-कभी छोड़ भी आए घर। जहां जूते उतारते हो, वहीं उसे भी उतार आए। कभी-कभी बुद्धि को छोड़कर भी जीयो। हृदय से ही, कभी-कभी प्रेम से ही देखो; विचार से नहीं।
कभी संवेदनशीलता में ऐसे डूब जाओ, कि भूल ही जाओ कौन हो तुम--स्त्री या पुरुष, गरीब या अमीर, काले या गोरे, बच्चे या बूढ़े, सुंदर या कुरूप, बुद्धिमान कि बुद्धिहीन। कभी प्रेम में ऐसी डुबकी लगाओ कि ये सब कोटियां भूल ही जाएं। तुम रहो, कोई कोटि तुम्हारे आसपास न हो। कोई लेबल न रह जाए, कोई विशेषण न हो। हिंदू नहीं, मुसलमान नहीं, ईसाई नहीं, जैन नहीं, बस तुम-- खाली, निर्विकार, कोरे कागज की भांति।

तत्क्षण तुम्हारे ऊपर वेद उतरने शुरू हो जाते हैं। तुम उपलब्ध हो गए। तुम खुल गए। उपनिषदों की वर्षा होनी शुरू हो जाती है।
सदगुरु जो कहना चाहता है, या सदगुरु का अस्तित्व जो कह रहा है, उसे समझने के लिए तुम्हें अपने को जरा अपने से दूर रखना ही पड़ेगा। क्योंकि वह किसी और लोक की खबर लाया है। वह गीत लाया है किसी और लोक के। वह संपदाएं लाया है अपरिचित, अनजान, अज्ञेय की। तुम जरा अपनी परख और समझ को किनारे रखो।
मिश्र में एक अदभुत फकीर हुआ, झुन्नून। एक युवक ने आकर उससे पूछा, मैं
भी सत्संग का आकांक्षी हूं। मुझे भी चरणों में जगह दो। झुन्नून ने उसकी तरफ देखा--दिखाई पड़ी होगी कलछी--उसने कहा, तू एक काम कर। खीसे से एक पत्थर निकाला और कहा, जा बाजार में, सब्जी मंडी में चला जा, और दुकानदारों से पूछना कि इसके कितने दाम मिल सकते हैं।
वह भागा गया। उसने जाकर सब्जियां बेचने वाले लोगों से पूछा। कई ने तो कहा कि हमें जरूरत ही नहीं है, दाम का क्या सवाल? दाम तो जरूरत से होता है। हटाओ अपने पत्थर को। पर किसी ने कहा कि ठीक है, सब्जी तौलने के काम आ जाएगा। तो दो पैसे ले लो, चार पैसे ले लो, पत्थर रंगीन है।
पर झुन्नून ने कहा था, बेचना मत, सिर्फ दाम पूछकर आ जाना। ज्यादा से ज्यादा कितने दाम मिल सकते हैं? सब तरफ पूछकर आ गया, चार पैसे से ज्यादा कोई देने को तैयार न था।
आकर कहा कि चार पैसे से ज्यादा कोई देने को तैयार नहीं है। बहुत तो लेने को ही तैयार नहीं। बहुतों ने तो झिड़का कि हटो यहां से, सुबह का वक्त! हम ग्राहकों से बात करें, कि यह पत्थर लेकर आ गए! शाम को आना। किसी ने उत्सुकता भी दिखाई तो इसीलिए कि सब्जी तौलने के काम आ जाएगा। एक आदमी ऐसा भी मिला, उसने कहा कि कोई काम का तो नहीं, लेकिन बच्चे खेलेंगे। अब तुम ले आए हो तो चलो, चार पैसे ले लो। बड़ी दया से उन्होंने चार पैसे देने को कहा है। बेच आऊं?
गुरु ने कहा, अब तू ऐसा कर, सोने-चांदी के बाजार में चला जा, वहां पूछ
आ। लेकिन बेचना नहीं है, सिर्फ दाम पता लगाने हैं। वह वहां गया, वह तो हैरान होकर लौटा। सोने-चांदी के दुकानदार हजार रुपया देने को तैयार थे। भरोसा ही न आया। कहां चार पैसे, कहां हजार रुपए! बहुत फर्क हो गया। लगा कि बेच ही दे। जो आदमी दे रहा है हजार रुपए; फिर दे या न दे, कल बदल जाए। पर गुरु ने मना किया था। लौटकर आया। कहा, कि अब रोकना ठीक नहीं। हजार रुपए देने वाला एक आदमी मिल गया। पांच सौ से कम में तो किसी ने मांगा ही नहीं। गुरु ने कहा, अब तू ऐसा कर, बेच मत देना। अब तू जाकर हीरे-जवाहरात जहां बिकते हैं, जौहरी और पारखी जहां हैं, वहां ले जा; लेकिन बेचना नहीं है। चाहे कोई कितना ही दे और तेरे मन में कितना ही उत्साह आ जाए, बेचना भर नहीं।
वहां गया तो चकित हो गया। वहां तो लोग दस लाख रुपया तक देने को तैयार
थे उस पत्थर के। वह तो पगलाने लगा। कहां दो पैसे और कहां दस लाख! कई बार तो मन हुआ कि बेचो और रुपए ले जाओ। और यह आदमी पीछे दे, न दे। लेकिन गुरु ने मना किया था।
लौटकर आया। गुरु ने पत्थर ले लिया। उसने कहा, बेचना नहीं है। सिर्फ तुझे यह बताने को पत्थर दिया था कि सत्य का तू आकांक्षी है, इतने से ही सत्य नहीं मिलता; पारखी भी है या नहीं? नहीं है तो हम सत्य देंगे और तू दो पैसे दाम बताएगा। तू दो पैसे का भी न समझेगा। पारखी होकर आ। सत्य तो है और हम देने को भी तैयार हैं। लेकिन सिर्फ इतना तेरे कह देने से कि तू आकांक्षी है, काफी नहीं हल होता। क्योंकि मैं देखता हूं, अकड़ तेरी भारी है। पैर भी तूने झुककर छुए हैं। शरीर तो झुका, तू नहीं झुका। छू लिए हैं उपचार वश, छूने चाहिए इसलिए। और लोग भी छू रहे हैं इसलिए। झुकना ही तुझे नहीं आता, तो जिन हीरों की यहां चर्चा है, वह तो झुकने से ही उनकी परख आती है। तो पहले झुकना सीखकर आ।
एक दूसरी दुनिया है सत्संग की। और बाहर से तुम जाकर देखोगे, एक सदगुरु
के पास किसी को सत्संग करते, तुम्हें कुछ भी समझ में न आएगा। क्योंकि यह

भाषा और है। यह कंकड़-पत्थरों का मामला ही नहीं है। तुम सब्जी मंडी में रहते हो; या बहुत हुआ तो सोने-चांदी की दुकान चलाते हो। लेकिन यह किन्हीं और ही लोक की बातें हैं। और इनके लिए इतना झुक जाना जरूरी है कि करीब-करीब मिट ही जाओ।
इसलिए जीसस ने कहा है, जो मिट जाएंगे, वे बच जाते हैं। और जो बचाएंगे अपने को, मिट जाते हैं।
बचाना अपने को मूढ़ता है। फिर तुम कलछी हो जाते हो।
तुम जिस दुनिया में जीते हो, उस दुनिया को तुमने अपना घर समझा है।
सदगुरु कहते हैं, सराय है।
यह दुनिया इक सरा है इसको आखिर छोड़ जाना है
अगर दो-चार दिन आकर यहां ठहरे तो क्या ठहरे
लेकिन तुम्हारा सारा जीवन-दृष्टिकोण, तुम्हारे देखने का ढंग, इस दुनिया को सब कुछ मानकर चलता है। जन्म और मौत के बीच तुम्हारा सब कुछ है। सदगुरु का जन्म के पहले और मृत्यु के बाद सब कुछ है। तुम्हारा सब कुछ जन्म और मृत्यु के बीच में है। यह जो थोड़ी सी सरायें हैं, जहां दो दिन ठहरे तो क्या ठहरे, यहीं तुम्हारा सब कुछ है। सराय की भाषा ही तुम्हारी एकमात्र भाषा है। शाश्वत की तुम्हें कोई अनुभूति नहीं।
और सदगुरु बात करता है तुम्हारी उस समय की, जब तुम पैदा भी न हुए थे।
और बात करता है तुम्हारी तब, जब मौत घट जाएगी और फिर भी तुम होओगे; सनातन की, शाश्वत धर्म की, अमृत की। तुम मृत्यु में डूबे खड़े हो। मृत्यु से तुम्हारी एकमात्र पहचान है। जीवन को तो तुम जानते ही नहीं, तो तुम सदगुरु को कैसे जानोगे, जो महाजीवन है? तो तुम कलछी की भांति पड़े रह जाओगे।
"मूढ़ यदि जीवनभर भी सदगुरु के साथ रहे तो भी धर्म को वैसे ही नहीं जान पाता, जैसे कलछी दाल के रस को नहीं जानती है।"
सदगुरु में मृत्यु भी है, अमृत भी। मृत्यु, क्योंकि तुम जैसी ही देह
भी वहां है। और अमृत भी, क्योंकि तुम्हें जिस आत्मा का पता नहीं, वह आत्मा वहां अभिव्यक्त हुई है अपने हजार-हजार रंगों में। उस आत्मा का इंद्रधनुष अनंत के छोरों को छू रहा है। तुम जैसा भी है सदगुरु, तुम से भिन्न भी।
इक जाम में घोली है बेहोशी-ओ-होशियारी
सर के लिए गफलत है दिल के लिए बेदारी
अगर तुमने सिर से ही समझने की कोशिश की, तो तुम सदगुरु के पास से और भी मूर्च्छित होकर लौटोगे।
सर के लिए गफलत है दिल के लिए बेदारी
और दिल के लिए होश है, जाग जाना है। अगर तुम सदगुरु के पास सिर के साथ
ही गए, सिर लेकर गए, सिर से ही सदगुरु का आगमन हुआ तुम्हारे भीतर और आना- जाना चला, सिर ही खुला रहा और हृदय बंद रहा, तो तुम और भी गफलत से भरकर लौटोगे; और भी बेहोश होकर लौटोगे। तुम और भी पंडित होकर लौटोगे। वैसे ही तुम काफी ज्ञानी थे। तुम्हारे ज्ञान में थोड़ी मात्रा और बढ़ जाएगी। ऐसे ही तुम काफी जानते थे अब तुम और होशियार हो जाओगे। सदगुरु के पास जाकर तुम थोड़ी सूचनाएं और इकट्ठी कर लोगे। जानकारियां इकट्ठी कर लोगे। थोड़ा शास्त्र-ज्ञान बढ़ जाएगा। तुम और कुशल हो जाओगे। तुम्हारी खोपड़ी और थोड़ी वजनी हो जाएगी। नाव में और थोड़े पत्थर इकट्ठे हो जाएंगे। गर्दन पर और थोड़ी चट्टान लटक जाएगी। डूबना आसान हो जाएगा, पार होना और मुश्किल हो जाएगा। शास्त्रों को सिर पर रखकर कभी कोई पार हुआ है? तुमने कभी सुना कि पंडित कभी मोक्ष को उपलब्ध हुआ हो?
पंडित से मेरा अर्थ है, जिसका सिर भारी। पंडित से मेरा वही अर्थ नहीं,
जो बुद्ध का है। बुद्ध के समय पंडित शब्द अभी भी विकृत न हुआ था। अभी भी उसका अर्थ थाः प्रज्ञावान, जागा हुआ। पंडित का वही अर्थ था, जो बुद्ध का अर्थ है।
अब तो पंडित का अर्थ है, जिसने उधार जूठन इकट्ठी कर ली है। इधर से, उधर
से कचरा इकट्ठा कर लिया है। कचरे की ही संपत्ति का ढेर लगाकर उसके ऊपर बैठ गया है। उधार से कभी कोई पार हुआ? नगद चाहिए अनुभव।

तो अगर तुम पंडित हो तो तुम ऐसे हो, जैसे चिकना घड़ा हो। वर्षा होती है, छूता नहीं। सब बह जाता है।
इक जाम में घोली है बेहोशी-ओ-होशियारी
सर के लिए गफलत है दिल के लिए बेदारी
कहां से लोगे, इस पर निर्भर है। मुझे सुनते हो तुम; कहां से सुनते हो? सिर से सुनते हो, मस्तिष्क से सुनते हो, विचारों से सुनते हो? या निर्विचार से, ध्यान से, प्रेम से? श्रद्धा का द्वार खोलते हो मेरे लिए या विचार का?
अपने भीतर देखना। दोनों झरोखे संभव हैं। और दोनों का स्वाद अलग-अलग। अगर सिर से तुम सुनते हो, तो तुम धीरे-धीरे जानकार होते चले जाओगे। लेकिन अगर हृदय से तुम सुनते हो, तो तुम धीरे-धीरे और भी अपने अज्ञान से भरते चले जाओगे। विनम्र होओगे। जानोगे, कुछ भी तो जानता नहीं। चुप होने लगोगे, मौन होने लगोगे। अवाक रह जाओगे। ठिठकोगे। और उसी अवाक रह जाने में समझ का जन्म है। समझदारी में नहीं, नासमझी के बोध में समझ का जन्म है।
इधर बहुत वर्षों में बहुत तरह के लोग मेरे निकट आए। धीरे-धीरे मुझे अनुभव हुआ कि अगर मुझे उन लोगों को तृप्ति देनी है, जिनका संबंध मस्तिष्क का है, तो वे लोग जो हृदय के कारण मेरे करीब आए हैं, कुम्हला जाएंगे। जो लोग हृदय के कारण मेरे पास आए हैं, और जिन्होंने हृदय दांव पर लगाया है, अगर उनके लिए मुझे बरसना है, तो मस्तिष्क के कारण जो लोग मेरे पास आए हैं, वे दूर हट जाएंगे। न केवल दूर हट जाएंगे, नाराज भी हो जाएंगे। इन दोनों को एक साथ तृप्त करना असंभव है। बहुत मैंने चेष्टा की कि दोनों के लिए सहारा मिलता रहे। शायद जो मस्तिष्क से आज भरा है, कल झुक जाए। पर लगा, नहीं, असंभव है। कलछी दाल में कितने ही समय रहे, रस न ले सकेगी। फिर मुझे उनकी फिक्र ही छोड़ देनी पड़ी। आज भी उनके लिए दया है मेरे मन में। लेकिन उनको खुद ही अपने पर दया नहीं आती, तो मेरी दया क्या कर सकती है?
कितने कांटों की बददुआ ली है
चंद कलियों की जिंदगी के लिए
नाराज हैं वे, विरोध में हैं। हजार तरह की आलोचना और निंदा उनके मन में है। उनकी नाराजगी मैं समझ सकता हूं। लेकिन यह सौदा करने जैसा लगा। कितने कांटों की बददुआ ली है
चंद कलियों की जिंदगी के लिए
यह करने जैसा लगा। एक कली भी खिल जाए और हजार कांटे गालियां देते रहें, क्या फर्क पड़ता है? कोई हर्ज नहीं है। इतना तो तय है कि कांटे न खिलते। हां, उन पर ज्यादा ध्यान देने से हो सकता था, यह कली न खिल पाती।
तो अब तो मेरा संबंध सिर्फ उनसे है, जो हृदय को दांव पर लगाने की हिम्मत रखते हैं, जुआरी हैं। अब दुकानदारों से संबंध नहीं है। इसलिए मैंने सब ऐसे उपाय कर लिए हैं कि उस तरह के लोगों को आने की सुविधा ही न रह जाए। क्योंकि आते हैं, तो अकारण समय व्यर्थ होता है; अकारण शक्ति, अकारण समय। और उन्हें कुछ होने वाला नहीं है; जब तक कि वे सीखने ही न आएंगे।
अब विद्यार्थियों में मेरी उत्सुकता नहीं है, केवल शिष्यों में है।
और फर्क यही है, कि विद्यार्थी ज्ञान लेने आता है, शिष्य जीवन लेने।
विद्यार्थी, कुछ जानकारी बढ़ जाए, तृप्त। थोड़ी उसकी संपदा समझ की बढ़ जाए, काफी है। शिष्य अपने को मिटाने आता है। शिष्य पुनर्जीवन के लिए आता है।
शिष्य मरने और जीने की तैयारी लेकर आता है। शिष्य चुनौती स्वीकार करता है सदगुरु की। शिष्य सत्संग के लिए आता है, विद्यार्थी शिक्षित होने के लिए। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, यदि हम संन्यास न लें, तो क्या आपका प्रसाद हमें न मिलेगा? मैं उनसे कहता हूं, मेरा तो प्रसाद मिलेगा, लेकिन तुम न ले पाओगे। सवाल मेरे देने का नहीं है, सवाल तुम्हारे लेने का है। संन्यास तो केवल एक भाव मुद्रा है, एक गेस्चर, कि तुम तैयार हो, कि तुम मेरे साथ पागल होने को तैयार हो, कि तुम मेरे साथ चलने को तैयार हो, चाहे सारी दुनिया मेरे खिलाफ जाती हो। संन्यास तो तुम्हारे प्रेम की घोषणा है। संन्यास तो तुम्हारे इस निर्णय की सूचना है कि सारी दुनिया के मुकाबले तुम मुझे चुनते हो।

मैं तो उन्हें भी देने को तैयार हूं, जो संन्यासी नहीं हैं। लेकिन उनकी लेने की तैयारी नहीं है। वे लेना चाहते हैं, पर उनकी एक शर्त है--वे जैसे हैं, वैसे ही रहें और लेना चाहते हैं। तब सिर से उनका संबंध बनेगा, हृदय से नहीं।
"यदि विज्ञ पुरुष मुहूर्तभर भी पंडित के साथ रहे, तो वह तत्काल धर्म
को उसी प्रकार जान लेता है, जिस प्रकार जिह्वा दाल के रस को जान लेती है।" बड़े सीधे सरल वचन हैं बुद्ध के--कलछी और जीभ। विज्ञ पुरुष मुहूर्तभर भी, क्षणभर भी, पलभर भी सत्संग कर ले, सदगुरु के पास हो ले, तो तत्काल धर्म को उसी प्रकार जान लेता है... तत्काल! तत्क्षण! जैसे जिह्वा दाल के रस को जान लेती है।

खिप्पं धम्मं विजानाति जिह्वा सूपरसं यथा।

जीभ की खूबी क्या है? वैसी ही कुछ खूबी शिष्य की है। पहले तो जीभ और कलछी में फर्क है। कलछी मृत है, जीभ जीवित है। बुद्धि मृत है, हृदय जीवित है। इसलिए बुद्धि तो आज नहीं कल यंत्र बन जाएगी--यंत्र है। इसलिए कंप्यूटर बनते हैं। और जल्दी ही आदमी के मस्तिष्क से ज्यादा काम नहीं लिया जाएगा। जरूरत न रहेगी। क्योंकि बेहतर मशीनें होंगी, कम भूल-चूक करने वाली मशीनें होंगी।
मैंने सुना है कि एक कंप्यूटर, बड़े से बड़ा कंप्यूटर जो अभी पृथ्वी पर है--एक सुबह वैज्ञानिक चकित हुए। उससे जो निष्कर्ष आया था, वे हैरान हुए, अवाक रह गए। उनमें से एक वैज्ञानिक ने कहा, इस तरह की भूल करने के लिए दो हजार वैज्ञानिक अगर पांच हजार साल तक कोशिश करें, तभी हो सकती है। इस तरह की भूल!
धीरे-धीरे बुद्धि तो कंप्यूटर के साथ पहुंची जा रही है। आदमी से भूल-चूक होती है, कंप्यूटर भूल भी नहीं करेगा। करेगा भी तो ऐसी भूल करेगा, जिसको आदमी हजारों वर्ष में कर पाए मुश्किल से। असंभव जैसी बात करेगा; नहीं तो नहीं होगी भूल।
आज नहीं कल छोटे कंप्यूटर हो जाएंगे, जिन्हें तुम अपने खीसे में रखकर
चल सकोगे, कि तुम्हें सिर में इतना बोझ लेकर चलने की जरूरत न रह जाएगी। कंप्यूटर से तुम पूछ सकते हो कि फलां-फलां उपनिषद में फलां-फलां पेज पर क्या है? वह फौरन जवाब दे देगा। तुम्हें कंठस्थ करने की जरूरत क्या? अभी भी यही कर रहे हो तुम। जिसको तुम पंडित कहते हो, वह कंप्यूटर है। उसने कंठस्थ कर लिया है। उसने रट लिया है। यह रटन तो मशीन भी कर सकती है। मस्तिष्क मुर्दा है, क्योंकि मस्तिष्क का सारा संबंध अतीत से है। जो बीत गया, जो जान लिया, वही मस्तिष्क में संगृहीत होता है। जो नहीं जाना, जो अभी हुआ नहीं, उसकी मस्तिष्क में कोई छाप नहीं होती। हृदय भविष्य के लिए धड़कता है। मस्तिष्क अतीत के लिए धड़कता है। मस्तिष्क पीछे की तरफ देखता है। हृदय आगे की तरफ--जो होने वाला है। हृदय खुला है भविष्य के लिए। मस्तिष्क तो पीछे देख रहा है। जैसे कार में दर्पण लगा होता है पीछे की तरफ देखने के लिए, वैसा मस्तिष्क है। वह पीछे की तरफ देख रहा है। जो रास्ता बीत चुका, जिससे गुजर चुके, जो धूल अब बैठने के करीब हो गई है, उस धूल का दृश्य बनता रहता है।
मस्तिष्क है अतीत का जोड़; इसलिए मुर्दा है। अतीत यानी मृत, जो अब नहीं है; जा चुका, मर चुका। अतीत तो कब्रिस्तान है। मस्तिष्क भी कब्रिस्तान है। वहां लाशें ही लाशें हैं तथ्यों की, जो कभी जीते-धड़कते थे; अब नहीं।
तो सदगुरु से तुम दो तरह से जुड़ सकते हो। या तो कलछी की भांति-- मुर्दा। कभी वह भी जीती थी किसी वृक्ष में। वर्षा आती थी तो उसके भीतर भी स्पंदन होता था। पक्षी गीत गुनगुनाते थे तो उनका तरन्नुम उसे भी अहसास होता था। धूप आती थी तो धूप की किरणें उसे भी नींद से उठा देती थीं। कभी वह भी जीवित थी किसी वृक्ष में, अब नहीं है। टूट गई वृक्ष से, अलग हो गई वृक्ष से।

जब तुम छोटे से बच्चे थे, तब तुम्हारा मस्तिष्क भी जीवित था। तब वह तुम्हारे हृदय के साथ ही छाया की तरह चलता था। वह तुम्हारे बड़े व्यक्तित्व का अंग था। फिर धीरे-धीरे अलग हो गया। फिर धीरे-धीरे उसको शिक्षा दी गई अलग होने की। फिर तुम्हें समझाया गया कि विचार करने में प्रेम और घृणा को बीच में नहीं आने देना चाहिए। संवेदनाओं को बीच में नहीं आने देना चाहिए। भावनाओं को बीच में नहीं आने देना चाहिए। तुम्हें शुद्ध विचारक बनाने की कोशिश की गई। मस्तिष्क को काट दिया गया अलग। मस्तिष्क धीरे-धीरे अपने आप अपने भीतर ही चलायमान हो गया। उसका कोई संबंध तुम्हारे पूरे अस्तित्व से न रहा। वह एक टूटा हुआ खंड हो गया।
सोचो, क्या संबंध है तुम्हारे मस्तिष्क का तुमसे? वह चलता जाता है अपने आप ही। तुम सोना चाहते हो, वह चल रहा है। तुम कहते हो, भाई, चुप भी हो जाओ। वह सुनता ही नहीं। वह चला जा रहा है। यह तुम्हारा मस्तिष्क है?
थोड़ा सोचो, तुम बैठना चाहते हो, तुम्हारे पैर चले जा रहे हैं। तुम उनको अपने पैर कहोगे? तुम कहोगे, हम बैठना चाहते हैं और पैर नहीं सुनते और चलते चले जाते हैं। तो कैसे तुम इन पैरों को अपना कहोगे?
तुम रुकना चाहते हो, और जबान बोले चली जाती है। तुम चिल्लाते हो कि मुझे रुकना है और जबान नहीं रुकती। तुम इस जबान को अपना कहोगे? अपना तो वही, जिसकी मालकियत हो।
मस्तिष्क पर तुम्हारी क्या मालकियत है? कोई भी तो मालकियत नहीं। तुम रात सोना चाहते हो, विश्रांति चाहते हो; दिनभर के थके-मांदे, उलझे, परेशान; और मस्तिष्क अपने ताल बजाए जाता है, अपने ताने-बाने बुने जाता है। मस्तिष्क अपनी गुनगुनाहट किए जाता है। तुम्हें नींद आए न आए, मस्तिष्क अपना हिसाब जारी रखता है। तुम सो भी जाओ, मस्तिष्क सपने बुनते रहता है। तुमसे बिल्कुल अलग चलता है। तुम्हारा कोई काबू नहीं रह गया।
मालकियत होती तो मस्तिष्क जीवित रहता। तब तुम्हारी समग्रता का अंग होता। तुम्हारे साथ चलता, तुम्हारे साथ बैठता, तुम्हारे साथ उठता। अब तो अलग ही हो गया, खंड-खंड हो गया। तुम अलग हो गए, मस्तिष्क अलग हो गया।
ध्यान का इतना ही अर्थ है कि यह मस्तिष्क फिर से तुम्हारे खून की चाल
के साथ चले, तुम्हारे हृदय की धड़कन के साथ धड़के। यह तुम्हारी संवेदनाओं, तुम्हारी भावनाओं, तुम्हारे प्रेम, इनके साथ एक रस हो जाए, अलग न रह जाए, अलग-थलग न रह जाए। यह तुम्हारी समस्तता का एक जीवंत अंग हो। तब तुम मालिक हो जाते हो।
शिष्य तो जीभ की भांति है, एक अंग तुम्हारा। कलछी मुर्दा है। मुर्दा कैसे अनुभव करे? बुद्ध ने ठीक ही प्रतीक चुना।
"विज्ञ पुरुष मुहूर्तभर भी पंडित के साथ रहे, तो वह तत्काल धर्म को उसी प्रकार जान लेता है, जिस प्रकार जिह्वा दाल के रस को जान लेती है।"
एक मुहूर्त, एक पल भी! क्योंकि अनुभव कुछ समय की बात नहीं है। जिन अनुभवों की यहां हम चर्चा कर रहे हैं, उन अनुभवों का समय से कोई संबंध नहीं है। वे कालातीत हैं। उनके लिए समय नहीं लगता। समझ लगती है, समय नहीं लगता। होश चाहिए, समय का कोई सवाल नहीं है। ऐसा नहीं है कि तुम बुद्ध पुरुषों के पास हजार साल तक रहोगे तो बहुत ज्यादा सीख लोगे। जो सीख सकता है, एक क्षण में सीख लेगा। जो नहीं सीख सकता, वह हजार साल तक वैसे ही चूका चला जाएगा। असली सवाल समय का नहीं है, असली सवाल बोध का है।
यह तुमने ख्याल किया, कुछ चीजें बोध से समझ आती हैं। घर में आग लग गई, तुम छलांग लगाकर भाग निकलते हो। एक क्षण भी नहीं रुकते। तुम यह नहीं कहते कि भई, समझ तो लेने दो, किसने लगाई? कैसे लगी? लगी भी है कि सिर्फ माया है, सपना है? और लगी भी हो तो अभी और हजार काम भी तो करने जरूरी हैं। पहले उनको निपटा लूं, फिर निपट लेंगे।
नहीं, सब काम रुक जाते हैं। तुम यह भी तो नहीं कहते कि जाऊं, किसी गुरु
से पूछ आऊं, कैसे निकलूं। न तुम जाकर शास्त्र को देखते हो कि शास्त्र में शायद कोई विधि दी हो, कि जब घर में आग लगे तो कैसे निकलना चाहिए। न तुम कपड़े-लत्तों की फिक्र करते, न तुम दर्पण के सामने खड़े होकर अपने को सजाते, संवारते। सब शिष्टाचार, सब सभ्यता एक तरफ पड़ी रह जाती है। अगर तुम बाथरूम

में नग्न खड़े स्नान कर रहे थे तो नंगे ही भाग खड़े होते हो। भूल ही जाते हो कि नग्न हूं। तीव्रता, अग्नि का बोध काफी है।
जब तुम बुद्ध पुरुषों के पास... कभी तुम्हें अवसर मिल जाए, तो त्वरा से जाना चाहिए, तीव्रता से जाना चाहिए, बोध से जाना चाहिए। एक क्षण में घटना घट सकती है। यह कोई सवाल नहीं है कि जिंदगीभर, सैकड़ों साल तक तुम सत्पुरुषों का सत्संग करो, तब तुम्हें बोध आएगा। डर तो यह है कि अगर तुम्हारे भीतर त्वरा नहीं है, तीव्रता नहीं है तो कभी न आएगा। हजारों साल बीत जाएंगे, तुम पर धूल जमती जाएगी। तुम्हारा दर्पण और भी धुंधला होता चला जाएगा।
"विज्ञ पुरुष मुहूर्तभर में... ।"
जरा सा भी होश हो, समझ हो, जीवन के अनुभव की थोड़ी सी भी प्रतीति हो तो
एक क्षण में क्रांति घट जाती है।
"... तत्काल धर्म को जान लेता है, उसी प्रकार, जैसे जिह्वा दाल के रस को जान लेती है।"
कल मैं एक गीत पढ़ रहा था। गीतकार ने तो प्रेयसी के लिए लिखा है। गीतकार उससे बड़े प्रेम को जानते भी नहीं। लेकिन शब्द महत्वपूर्ण हैं और परमात्मा के खोजियों के काम में भी आ सकते हैं।
रात यूं दिल में तेरी खोई हुई याद आई
जैसे वीराने में चुपके से बहार आ जाए
जैसे सहराओं में हौले से चले बादे-नसीम
जैसे बीमार को बेवजह करार आ जाए
एक क्षण में घटती है बात--तेरी खोई हुई याद आई। सत्पुरुष के पास किसी
और की याद तुम्हें नहीं आती, अपनी ही खोई हुई याद आती है। सत्पुरुष के पास, जैसे तुम दर्पण के सामने खड़े हो गए। जैसे तुमने कभी दर्पण न देखा हो, तो तुम्हें अपने चेहरे की कोई खबर न होगी। सत्पुरुष के सामने खड़े होकर जैसे तुम दर्पण के सामने आ गए। अचानक अपना चेहरा पहचाना। कभी न जाना था, तत्क्षण याद आ गई। और याद ऐसी--
जैसे वीराने में चुपके से बहार आ जाए
पता भी न चले, पगध्वनि भी न हो।
चुपके से वीराने में बहार आ जाए
जैसे सहराओं में हौले से चले बादे-नसीम
जैसे मरुस्थलों में, जहां कोई सुबह की ठंडी हवा चलने का सवाल नहीं है, अचानक... अचानक, अकारण शीतल हवा का झोंका आ जाए।
जिसे तुम जिंदगी कहते हो, वह अभी मरुस्थल जैसी है। जिसे तुम जिंदगी कहते हो, वह अभी एक वीराना है। जिसे तुम अभी जिंदगी कहते हो, उसमें तुमने पतझड़ ही जाने हैं, वसंत नहीं। दोपहर की जलती लपटें जानी हैं, सुबह की शीतल हवा नहीं।
जैसे वीराने में चुपके से बहार आ जाए
जैसे सहराओं में हौले से चले बादे-नसीम
जैसे बीमार को बेवजह करार आ जाए
जैसे कोई आदमी बीमार पड़ा है, और कोई कारण नहीं है, अचानक उठकर बैठ जाए।
अचानक स्वास्थ्य की एक लहर आ जाए--बेवजह करार आ जाए।
सत्पुरुष के सत्संग में जो घटता है, बेवजह है। उसका कोई कारण नहीं है।
क्योंकि तुम बिल्कुल तैयार न थे। तुमने कभी सपने में भी न सोचा था कि तुम्हारे इस मरुस्थल में अचानक, चुपचाप, शीतल हवाओं का आगमन हो जाएगा।
तुमने कभी यह विचारा भी न था कि तुम्हारे पतझड़ में वसंत बिना आवाज किए, बिना पगध्वनि किए उतर आएगा। तुमने कभी सोचा न था।
तुम तो करीब-करीब राजी ही हो गए थे। तुमने तो करीब-करीब मान लिया था कि यही जिंदगी है। बस, यही जिंदगी है। तुमने तो स्वीकार कर लिया था जिंदगी का यह रूखा-सूखापन--फूल रहित! फल रहित! तुमने तो मान ही लिया था, इस घिसटन का नाम ही जिंदगी है। तुमने तो इस व्यर्थ की दौड़-धाप, आपाधापी को ही जिंदगी स्वीकार कर लिया था।

लेकिन किसी सदगुरु के पास अचानक तुम्हें याद आती है, जिसे तुमने जिंदगी कहा, वह तो जिंदगी का प्रारंभ भी नहीं। वह तो जिंदगी की भूमिका भी नहीं। वह तो जिंदगी का अ, ब, स भी नहीं। तुमने जिसे जिंदगी समझा, वह तो मौत का ही छिपा हुआ रूप थी। भूल हो गई। भ्रांति में रहे।
यह एक क्षण में हो जाता है। जैसे कोई तुम्हें सोए से झकझोर कर जगा दे, आंख खुल जाए; ऐसा ही सत्संग है। लेकिन तुम संवेदनशील हो तो यह हो पाता है। तुम जीभ की तरह संवेदनशील हो तो यह हो पाता है।
लोग इतने कठोर क्यों हो गए हैं? कलछियां क्यों हो गए हैं? लोगों को एक
और बड़ा भ्रांत ख्याल है कि कठोरता में सुरक्षा है। लोग सोचते हैं, अगर कठोर न हुए तो असुरक्षित हो जाएंगे। हर कोई दबा देगा। हर कोई छाती पर बैठ जाएगा। तो लोग कठोर हो गए हैं, ताकि सुरक्षित हो जाएं। हालत बिल्कुल उलटी है।
तुमने कभी गौर किया? दांत कठोर हैं, धीरे-धीरे गिर जाते हैं। जीभ कठोर नहीं है, कभी गिरती नहीं है। अंत तक साथ बनी रहती है। जीभ इतनी कोमल है और बत्तीस कठोर दांतों के बीच बनी रहती है। दांत आते हैं और चले जाते हैं। जीभ सुरक्षित है।
संवेदनशीलता में सुरक्षा है, क्योंकि संवेदनशीलता में जीवन है।
घबड़ाना मत संवेदनशील होने से। और अपने को कठोर मत कर लेना, अकड़ा मत लेना, क्योंकि उसी अकड़ने में असुरक्षा है। मरने लगे तुम। मरने में नहीं सुरक्षा हो सकती। ज्यादा जीवंत होने में सुरक्षा है।
सदगुरु के पास आ जाना इंकलाब है, एक क्रांति है।
जैसे बीमार को बेवजह करार आ जाए
अचानक, तुम अब तक जो समझते थे ठीक, वह गलत हो जाता है। अचानक, अब तक तुम जिसे समझते थे राह, वह गुमराह हो जाती है। अचानक, अब तक तुम जिसे जीवन समझते थे, उस पर सब पकड़ छूट जाती है।
दिल भी गुलाम दिल की तमन्नाएं भी गुलाम
यूं जिंदगी हुई भी तो क्या जिंदगी हुई
एक सदगुरु को देखकर पहली दफा यह ख्याल आता है। एक मालिक को देखकर पहली दफा ख्याल आता है कि तुम गुलामी में जीए।
डायोजनीज को पकड़ लिया था कुछ डाकुओं ने, और उसे बेचने बाजार में ले गए। तब तो दुनिया में गुलाम होते थे और गुलाम बेचे जाते थे। डायोजनीज को तख्ती पर खड़ा किया गया, बोली लगाए जाने के लिए। बड़ा शानदार आदमी था। नग्न! उसकी शान देखे बनती थी। वहां बड़े धनपति आए थे, गुलामों को खरीदने। लेकिन उन धनपतियों में किसी के भी चेहरे पर यह शान न थी, यह गरिमा न थी। लोग झेंपे-झेंपे से मालूम हो रहे थे इस गुलाम को देखकर।
और जैसे ही बोली लगाने वाला बोली लगाने को था, डायोजनीज ने चारों तरफ नजर डाली। वह उस तख्त पर ऐसे खड़ा था, जैसे कि सम्राट हो। और उसने कहा, ठहरो! यह जो सामने आदमी खड़ा है, कौन है। उस बोली लगाने वाले ने कहा कि यह इस नगर का सबसे बड़ा धनपति है। डायोजनीज ने कहा कि इस गुलाम को इस मालिक की जरूरत है। मुझे इसी के हाथ बेच डालो। इस गुलाम को मुझ मालिक की जरूरत है।
दिल भी गुलाम दिल की तमन्नाएं भी गुलाम
यूं जिंदगी हुई भी तो क्या जिंदगी हुई
पहली दफा तुम्हारा सब झनझनाकर टूट जाता है। जैसे दर्पण गिर पड़े पृथ्वी पर और खंड-खंड हो जाए, चकनाचूर हो जाए।
सदगुरु से मिलन एक सौभाग्यपूर्ण दुर्घटना है। उसके बाद फिर तुम वही न
हो सकोगे। फिर तुम लाख बटोरो उन टुकड़ों को, टूटे हुए शीशे के टुकड़ों को, फिर तुम अपनी तस्वीर दुबारा जमा न पाओगे। अब तो तुम्हें नया होना ही पड़ेगा। लेकिन यह उन्हीं के लिए हो पाता है, जो संवेदनशील हैं। वे ही शिष्यत्व को उपलब्ध होते हैं।
"दुर्बुद्धि मूढ़ जन अपना शत्रु आप होकर, पापकर्म करते हुए विचरण करते हैं, जिसका फल कडुवा होता है।"
चरंति बाला दुम्मेधा, अमित्तेनेव अत्तना।

वे जो दुर्बुद्धि मूढ़ जन हैं, जो सदगुरु के पास आकर भी ऐसे गुजर जाते हैं, जैसे कुछ भी न हुआ। जो ज्ञानियों के पास आकर भी ज्ञान की झलक से वंचित रह जाते हैं, जिन्होंने अपने को इतना कठोर कर लिया है कि करीब-करीब मुर्दा हो गए हैं, ऐसे दुर्बुद्धि मूढ़ जन अपने शत्रु स्वयं हैं। कोई और उन्हें कष्ट नहीं दे रहा है। अपनी ही नासमझी अपने गले की फांसी हो गई है।
"अपने ही शत्रु होकर पापकर्म करते हुए विचरण करते हैं, जिसका फल कडुवा होता है।"
बुद्ध ने बार-बार कहा है, कि पाप करना सिर्फ नासमझी नहीं, आत्मघात है। भूल नहीं, विध्वंस है। तुम जब भी पाप करते हो, तो दूसरे गुरुओं ने तो तुमसे कहा है कि पाप बुरा है, क्योंकि दूसरे को चोट पहुंचानी बुरी है। बुद्ध ने कहा है, पाप बुरा है, क्योंकि पाप में तुम अपने ही गले पर फांसी लगा रहे हो। यह दूसरे से कोई संबंध नहीं है। दूसरे को चोट पहुंचेगी, न पहुंचेगी, यह तो गौण बात है, लेकिन पाप करके तुम अपने को ही आग में डाल रहे हो। अपने को ही चिता पर चढ़ा रहे हो।
"दुर्बुद्धि मूढ़ जन अपना शत्रु आप है।"
बुद्ध ने कहा है, तुम अपने ही मित्र हो अगर संवेदनशील, समझपूर्वक जीयो। अपने ही शत्रु हो, अगर दुर्बुद्धि से, मूढ़ता से, कठोर होकर जीयो। अगर बेहोशी में जीयो तो तुमसे बड़ा शत्रु तुम्हारा कोई दूसरा नहीं। अगर होश में जीयो तो तुमसे बड़ा तुम्हारा कोई मित्र नहीं।
जो व्यक्ति भी पाप करता है, पाप करने के कारण कोई उसे दंड देता है, ऐसा नहीं; पाप करने के कारण वह जीवन के सनातन नियम से दूर पड़ता जाता है। वह दूरी ही कष्ट ले आती है। जितना सनातन नियम से दूर पड़ता है, जितना दूर जाता है, उतनी ही ठंडक खोती चली जाती है। जीवन उष्ण होता चला जाता है। आग की लपटें पकड़ने लगती हैं। जो भी सनातन नियम से दूर हटेगा, वह अपने हाथ अपने रास्ते पर कांटे बो रहा है। कोई दूसरा दंड नहीं देता। कोई दूसरा नियंता नहीं है।
वह जो जीवन का परम नियम है, जिसको बुद्ध धर्म कहते हैं, उसके पास होने में सुख है, दूर होने में दुख है। उसके साथ एक हो जाने में महासुख है। उसके साथ बहुत दूर पड़ जाने में महादुख है। नर्क यानी परम नियम से फासला, स्वर्ग यानी निकटता।
बू-ए-गुल नाला-ए-दिल दूदे-चिरागे-महफिल
जो तेरी बज्म से निकला सो परीशां निकला
प्रेयसी के लिए कहा है कवि ने, कि तेरी महफिल से जो भी निकलता है, तुझसे दूर होने के कारण परेशान हो जाता है। आदमियों की तो बात छोड़ो, बू-ए-गुल, फूल की सुगंध भी तेरी महफिल से बाहर निकलती है तो परेशान हो जाती है। नाला-ए-दिल, दिल की आह भी तेरी महफिल से बाहर निकलती है तो परेशान हो जाती है। दूदे-चिरागे-महफिल, और की तो बात छोड़ो, तेरी महफिल के चिराग का धुआं भी बाहर निकलता है तो डगमगाता और परेशान नजर आता है।
बू-ए-गुल नाला-ए-दिल दूदे-चिरागे-महफिल
जो तेरी बज्म से निकला सो परीशां निकला
लेकिन यही सत्य है धर्म की व्यवस्था का। वहां से जो दूर हुआ, वहां से
जो बाहर निकला, वह परेशान हुआ। जो उस नियम को छोड़ते हैं, वे पीड़ित होते हैं। कोई पीड़ा उन्हें देता नहीं, अपने ही छोड़ने के कारण पीड़ित होते हैं। तुम्हारे जीवन में अगर पीड़ा हो तो किसी के ऊपर दोष मत देना और शिकायत
मत करना। इतना ही जानना कि कहीं न कहीं जीवन के नियम से तुम दूर जा रहे हो। परमात्मा की महफिल से दूर जा रहे हो। लौटना!
पीड़ा सांकेतिक है, और पीड़ा मित्र है, सहयोगी है। क्योंकि बताती है कि दूर जा रहे हो। पीड़ा को थर्मामीटर समझना। वह खबर देती है कि हट रहे हो दूर; पास आ जाओ। जब भी दुख हो तो अपने जीवन की फिर-फिर परीक्षा करना। जब भी दुख हो, अपने जीवन का फिर-फिर निदान करना; फिर-फिर विश्लेषण करना। जरूर कहीं तुम्हारे पैर कहीं गलत पड़े हैं। तुम मंदिर से दूर गए हो।
कवि भी कभी-कभी बड़ी मधुर बातें कह देते हैं। होश में नहीं कहते बहुत। होश में कहें तो ऋषि हो जाएं। बेहोशी में कहते हैं। लेकिन कवि कभी-कभी

बेहोशी में भी झलकें पा लेते हैं, उस परम सत्य की। कवि और ऋषि का यही फर्क है। ऋषि होश में कहते हैं, कवि बेहोश में कहते हैं। ऋषि वहां पहुंचकर कहते हैं, कवियों को वहां की झलक दूर से सपनों में मिलती है। कवि स्वप्न-द्रष्टा है, ऋषि सत्य-द्रष्टा है।
ये मसाइले-तसव्वुफ ये तेरा बयान गालिब
तुझे हम वली समझते जो न बादाख्वार होता
ये मसाइले-तसव्वुफ...
ईश्वरीय प्रेम की ये अदभुत बातें, कि वेद ईर्ष्या करें।
ये मसाइले-तसव्वुफ...
सूफियाना बातें! ये मस्ती की बातें!
ये तेरा बयान गालिब
और तेरा कहने का यह अनूठा ढंग, कि उपनिषद शरमा जाएं।
तुझे हम वली समझते जो न बादाख्वार होता
अगर शराब न पीता होता तो लोग तुझे सिद्ध पुरुष समझते। वह तेरी भूल हो गई। ये बातें तो ठीक थीं, ये बातें बड़ी कीमती थीं, जरा शराब की बू थी, बस! कवि जब होश में आता है तो ऋषि हो जाता है। लेकिन कवियों के वक्तव्य तुम्हारे लिए सहयोगी हो सकते हैं। क्योंकि ऋषि तो तुमसे बहुत दूर है। कवि तुम्हारे और ऋषि के बीच में खड़ा है। तुम जैसा बेहोश, लेकिन तुम जैसा स्वप्नरहित नहीं! ऋषियों जैसा होशपूर्ण नहीं, लेकिन ऋषियों ने जो खुली आंख देखा है, उसे वह बंद आंख के सपने में देख लेता है। कवि कड़ी है।
ये मसाइले-तसव्वुफ ये तेरा बयान गालिब
तुझे हम वली समझते जो न बादाख्वार होता
इसलिए कभी-कभी ऋषियों को समझने के लिए कवियों की सीढ़ियों पर चढ़ जाना उपयोगी है। लेकिन वहां रुकना मत। वह ठहरने की जगह नहीं है। गुजर जाना, चढ़ जाना, उपयोग कर लेना।
"दुर्बुद्धि मूढ़ जन अपना शत्रु होकर जीता है। पाप कर्म करते हुए विचरण करता है, जिसका फल कडुवा होता है।"
पाप पहले भी कडुवा है, मध्य में भी कडुवा है, अंत में भी कडुवा है। पुण्य पहले भी मीठा है, मध्य में भी मीठा है, अंत में भी मीठा है। तुम अगर सच में ही भोगना चाहो जीवन के अर्थ को, जीवन के रस को, तो पुण्य ही उपाय है। पुण्य ही कुंजी है स्वर्ग के द्वार की। पाप है कुंजी नर्क के द्वार की। अगर तुम्हारे जीवन में तुम नर्क पाओ तो मत देना भाग्य को दोष। मत कहना
कि समाज दोषी है। मत कहना कि दुनिया के हालात ऐसे हैं; कि दूसरे लोग सता रहे हैं। ये सब बातें कहोगे तो तुम कभी स्वर्ग की कुंजी अपने हाथ में न पा सकोगे। तुम्हारा विश्लेषण गलत हो गया। इतना ही कहना कि मैं कहीं जीवन के नियम से दूर हट रहा हूं।
जो तेरी बज्म से निकला सो परीशां निकला
तो खोज करना कि कहां-कहां तुम जीवन के नियम से दूर जा रहे हो। अगर क्रोध के कारण तुम्हारे जीवन में कष्ट हो तो क्रोध के प्रति जागना, ताकि क्रोध की ऊर्जा करुणा बन जाए। अगर लोभ के कारण कष्ट हो तो लोभ के प्रति जागना, ताकि लोभ में नियोजित ऊर्जा दान बन जाए। अगर घृणा के कारण कष्ट हो तो घृणा के प्रति जागना, ताकि घृणा में संलग्न ऊर्जा मुक्त हो जाए और प्रेम बन जाए।
जिनको हमने पाप कहा है, वे और कुछ भी नहीं हैं, वे जीवन से दूर ले जाने
के रास्ते हैं। जिनको पुण्य कहा है, वे भी कुछ नहीं हैं, वे वापस अपने घर को खोज लेने के उपाय हैं।
जब भी तुम्हारे मुंह में कडुवा स्वाद आए, कडुवाहट फैले, तब समझना कि जीवन में कुछ करने का समय आ गया। कुछ बदलना पड़ेगा। और इसमें देर मत करना। क्योंकि देर में एक खतरा है। धीरे-धीरे कडुवाहट कम मालूम होने लगेगी। अगर तुम झूठ रोज-रोज बोलते ही गए तो पहले दिन जितना कडुवा होता है, दूसरे दिन उतना कडुवा नहीं होता है। तीसरे दिन और भी कडुवा नहीं होता। धीरे-धीरे तुम अभ्यासी हो जाते हो। कडुवाहट मिट जाती है। यह भी संभव है कि तुम्हें मिठास

भी आने लगे। तब तुम्हारा दुर्भाग्य सुनिश्चित हो गया। उस पर सील लग गई। अब उसे खोलना मुश्किल हो जाएगा।
तो जब भी जीवन में तुम्हें पहली कडुवाहट आए, किसी भी कृत्य को करते हुए, तत्क्षण समझना कि पाप हो रहा है। कडुवाहट सूचक है। कडुवाहट का कांटा प्रतिपल तुम्हें बता रहा है कि कहां क्या हो रहा है। जब भी जीवन में कोई मिठास आए, समझना कि कोई पुण्य हुआ। पुण्य को दोहराना, ताकि पुण्य तुम्हारी आदत हो जाए। पाप को मत दोहराना, ताकि पाप कहीं तुम्हारी आदत न हो जाए।
तो धीरे-धीरे तुम पाओगे कि तुमने अपने भीतर ही उस कल्याण-मित्र को खोज लिया, जो तुम्हें परम आनंद की तरफ ले जाएगा। अन्यथा तुम अपने ही शत्रु के हाथों में हो।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 3
चौबीसवां प्रवचन

लुत्फ-ए-मय तुझसे क्या कहूं!

पहला प्रश्नः ओशो, आप मुझे देख-देखकर शराब की बातें क्यों करते हैं? सीधे-सीधे क्यों नहीं कह देते? मैं सिद्ध हूं; आपको कुछ कहना है?

तरु ने पूछा है।
पियक्कड़ों को देखकर शराब की बात उठ आए यह स्वाभाविक है। मेरे पास तुम्हें कहने को कुछ भी नहीं है--तुम्हीं को कहता हूं। एक दर्पण हूं; उससे ज्यादा नहीं। तुम्हारी तस्वीर तुम्हीं को लौटा देता हूं।
तो प्रश्न तो मजाक में ही पूछा है तरु ने, लेकिन मजाक का भी बड़ा सत्य होता है। जरूर बात उसकी पकड़ में आई। उसको देखकर मुझे शराब की बात याद आती होगी।
लेकिन तरु ही अगर पियक्कड़ होती तो कोई अड़चन न थी; सभी पीए हुए हैं।
अलग-अलग मधुशालाएं हैं। अलग-अलग ढंग की शराब है। लेकिन सभी पीए हुए हैं। किसी ने धन की शराब पी है, किसी ने पद की शराब पी है, लेकिन सभी बेहोश हैं। संसार में होने का ढंग ही बेहोशी है। जब तक तुम परमात्मा की शराब न पी
लो, तब तक तुम संसार की शराब पीते ही रहोगे; वह परिपूरक है। और परमात्मा की शराब, बस ऐसी एक शराब है, जो होश देती है; जो बेहोशी नहीं लाती। बाकी सब शराबें बेहोशी लाती हैं, विस्मरण लाती हैं। तुम अपने को भूल जाते हो। और अपने को भूलकर कहीं कोई सत्य को पा सकेगा? अपने को मिटाना है, भुलाना नहीं। मिटाकर सत्य मिलता है। भुलाना तो धोखे की बात है। तुम तो बने ही रहते हो। बस, तुम्हें याद नहीं रह जाती कि तुम हो।
तो शराब इस संसार की चाहे मधुशालाओं में मिलने वाली शराब हो, चाहे राजधानियों में पदों की शराब हो, चाहे बाजारों में धन की शराब हो, चाहे मंदिरों में, मस्जिदों में त्यागियों की शराब हो, जिसमें भी तुम अपने को भूल जाते हो--मिटते नहीं--याद रखना, भूल जाते हो; बने तो रहते हो। नशा कितनी देर टिकेगा? थोड़ी देर बाद फिर होश उभर आएगा, फिर तुम वापस लौट आओगे। परमात्मा की भर शराब ऐसी है कि पीकर कोई फिर होश में नहीं आता। होश में नहीं आता, इसका अर्थ, बचता ही नहीं जो वापस लौट आए। बाकी शराबें क्षणभंगुर हैं। परमात्मा की शराब शाश्वत है। एस धम्मो सनंतनो।
जिसने उसे पी लिया, फिर वह बचता ही नहीं। मिट ही जाता है। जो मिटाए, ऐसी शराब खोजो। तब तुम चकित होओगे। तब तुम एक विरोधाभास के करीब आ जाओगे। वह विरोधाभास यह हैः होश मिटा सकता है; बेहोशी मिटाती नहीं, बचाती है। पीए तो सभी हैं। गलत शराब पीए हैं। ठीक शराब ढालनी है तुम्हारी प्यालियों में। गलत पी-पीकर तो तुम गलत हो गए हो। क्योंकि जो तुम पीते हो, वही हो जाते हो। वही तुम्हारी रगों में और नसों में घूमने लगता है। लेकिन अब तक धर्मों ने भी ठीक पी लेने की बात तो कम कही, गलत की निंदा बहुत की। मेरे मन में शराब की कोई निंदा नहीं है। निंदा से मेरा कोई संबंध नहीं है। शराब की निंदा क्या करनी? क्योंकि कुछ लोग फिर निंदा की ही शराब पीते हैं। फिर वह निंदा ही करने में भूले रहते हैं। फिर उनका कुल नशा इतना ही रह जाता है कि दूसरों को नर्क भेजते रहें और दूसरों को पाप के दंड देते रहें। तब उनकी दुष्टता और उनकी मूढ़ता नए रास्ते खोज लेती है।
मेरे मन में कोई निंदा नहीं है। निंदा करने वालों ने ही तो शराब में इतना रस भर दिया। इतना रस शराब में है नहीं, लेकिन निषेध से रस जन्मता है। आपकी जिद ने मुझे और पिलाई हजरत
शेखजी इतनी नसीहत भी बुरी होती है
अगर बहुत ज्यादा लोगों से कहते रहो, मत करो! मत करो! करने का आकर्षण पैदा होता है। अगर लोगों से कहो, यहां झांकना मना है। तो लोग वहीं झांकने लगते हैं।
मैं विश्वविद्यालय में था। तो विश्वविद्यालय का जो पेशाबघर था, उसके ठीक पास ही, थोड़े ही दूर चलकर हमारा विभाग था। पढ़ने के दिनों की बात है। उस

पेशाबघर में मैंने एक तीर बना दिया दीवाल पर और लिख दिया, ऊपर मत देखना। तीर और एक बना दिया, वहां लिख दिया, ऊपर देखना सख्त मना है। और एक आखिरी ऊपर छत पर, छप्पर पर, लिख दिया, महाशय! तत्काल नीचे देखिए। पर इतनी देर में लोग अपना पायजामा खराब कर लेते। अपने डिपार्टमेंट के बाहर बैठकर हम देखते रहते कि किन-किन ने पढ़ा है। करीब-करीब सभी पढ़कर लौटते।
आपकी जिद ने मुझे और पिलाई हजरत
शेखजी इतनी नसीहत भी बुरी होती है
तो मैं तुमसे कहता नहीं कि मत पीना। मैं तुमसे कहता हूं कि जब पीने ही चले तो ठीक ही शराब पीना। जब पीने की ही बात ठान ली, और जब परमात्मा ही मिलता हो पीने को तो फिर संसार क्यों पीना? फिर कूड़ा-करकट क्यों पीना? जब ऐसी बेखुदी मिलती हो, जो सदा के लिए मिल जाए, जब बोझ सदा के लिए उतर जाने की संभावना हो तो क्षणभंगुर की विस्मृति को क्यों अपने हृदय में जगह देनी? मैं तुम्हें बड़ी शराब देता हूं। छोटी शराब छीनने का मेरा आग्रह नहीं। कंकड़-पत्थरों से, उनके त्याग करवाने की मेरी कोई शिक्षा नहीं। मैं तुम्हें हीरे देता हूं। हीरे मिल जाएं, कंकड़-पत्थर अपने से छूट जाते हैं। मैं तुम्हारे मंदिर को परमात्मा की मधुशाला बनाना चाहता हूं। वहां ऐसी मस्ती हो कि मधुशालाएं झेंप जाएं। तो ही धर्म पृथ्वी पर जीतेगा।
नहीं तो धार्मिक तो लगता है रूखा-सूखा। शराबी ही ज्यादा मस्त मालूम होते हैं। धार्मिक तो लगता है कांटे जैसा। शराबी में ही कभी-कभी फूल की झलक मिल जाती है। जरूर कहीं कोई भूल हो गई है। मंदिर ने भी कोई गलत राह चुन ली--निषेध की, इंकार की, त्याग की।
मैं तुमसे कहता हूं, धर्म महाभोग है। तुम्हें अगर शराब पीने की जरूरत
पड़ रही है तो उसका केवल इतना ही अर्थ है कि तुम महाभोग से वंचित हो। विराट तुम पर उतर सकता था, लेकिन तुमने ठीक दिशा न खोजी। विराट तुम्हारा आंगन बन सकता था, लेकिन तुम अपनी अंधेरे की खोज में छिपे बैठे हो। इसलिए जरूरत पड़ती है।
शराब चोरी से परमात्मा की झलक लेने की कोशिश है--चोरी से! पीछे के दरवाजे से! चोर कभी-कभी तुम्हारे घर में घुस आता है, तो तुमने ख्याल किया? एक झलक तो उसे भी मिल ही जाती होगी तुम्हारे घर की, तुम्हारे बैठकखाने की। लेकिन चोर की झलक भी कोई झलक है? भागा-भागा है। चोर की तरह आया है। मेहमान भी घर में आता है, अतिथि भी घर में आता है; तुम द्वार पर उसका स्वागत करते हो। शराब, चोरी-छिपे परमात्मा की झलक लेने की कोशिश है। और जिस मंदिर में स्वागत हो सकता हो, जहां तुम अतिथि हो सकते हो--सम्माननीय, सम्मानित, वहां चोर होकर क्यों जाना?
तो शराबी क्षणभर को भूलता है। जिन शराबियों की मैं बात कर रहा हूं, वे सदा के लिए भूल जाते हैं। मैं तुमसे कुछ छुड़ाना नहीं चाहता। त्याग पर मेरा जोर नहीं है। मैं तुम्हें ठीक-ठीक भोग सिखाना चाहता हूं। विराट तुम में उतर आए। तुम्हारे हाथ में मैं बोतल देना चाहता हूं परमात्मा की।
"आप मुझे देख-देखकर शराब की बातें क्यों करते हैं?"
तुम्हें देख-देखकर और बात भी किस बात की करूं?
"मैं सिद्ध हूं; आपको कुछ कहना है?"
अब शराबियों से विरोध करना ठीक नहीं। मान ही लेना उचित है। कौन झंझट ले! जब तुम्हें होश आएगा तो खुद ही समझ आ जाएगी। होश लाने की कोशिश करता रहूंगा। तुम क्या कहते हो, उसकी मैं चिंता नहीं करता।
मेरे पिता के एक मित्र हैं। वे बचपन से मुझे जानते हैं। घोर शराबी हैं। कभी-कभी मुझसे मिलने आ जाते थे। तो मेरे परिवार के लोगों को शक हुआ कि बात क्या होती है? क्योंकि घंटों... । एक दिन वे आए थे, तो मेरी बुआ मकान के पीछे--जहां बैठकर हम दोनों बात कर रहे थे--छिपकर सुनती रही। वह बड़ी हैरान हुई। क्योंकि वे शराबी कह रहे थे कि उन्नीस सौ बत्तीस में वे जेल गए थे। स्वतंत्रता के आंदोलन में। तब तो मैं एक ही साल का था। वे मुझसे कह रहे थे कि हम दोनों जब जेल में तीन साल बंद रहे... याद है कुछ? मैंने कहा, सब याद है। एक-एक बात याद है। तो जेल की वे बातें करते रहे और यह मानकर कि हम दोनों

बंद रहे। मेरी बुआ तो हैरान हुई। ठीक, वह शराबी को तो माफ कर सकती थी। उसको यह समझ में न आया कि मुझे क्या हो गया है?
जाते ही शराबी को उन्होंने मुझे पकड़ा और कहा कि तुम्हें हो क्या गया है? क्या तुम भी पी लिए हो? उन्नीस सौ बत्तीस में तुम्हारी उम्र एक साल की थी। यह आदमी तो बूढ़ा हो गया। यह उन्नीस सौ बत्तीस में जेल गया था। और तुम जेलखाने की दोनों बातें कर रहे थे। अब मैंने कहा, इसका विरोध भी कौन करे? और विरोध करने से सार भी क्या है? यह कोई सुनेगा? अगर मैं इसका विरोध करूं तो मैं भी होश में नहीं।
सो तरु, तू सिद्ध है! अगर विरोध करूं तो मैं होश में नहीं।
लेकिन एक और शराब है। जिस शराब को तुमने अभी शराब समझा, वह असली नहीं है, उधार है। नगद नहीं, धोखा है। आत्मवंचना है। नगद परमात्मा की शराब पीयो।
कर्ज की पाते थे मय लेकिन समझते थे कि हां
रंग लाएगी हमारी फाकामस्ती एक दिन
कर्ज की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हां
रंग लाएगी हमारी फाकामस्ती एक दिन
जब पीना ही हो तो कर्ज की मत पीना, उधार की मत पीना। और सभी शराबें जो तुम्हारे बाहर से आती हैं, उधार हैं। एक ऐसी शराब भी है, जो तुम्हारे अंतरतम में निचुड़ती है। वही केवल नगद है और उधार नहीं। ऐसे भी अंगूर हैं, जो तुम्हारी अंतरात्मा में लगते हैं। और ऐसी भी शराब है, जो वहीं अंतरात्मा की धूप में पकती है। वहीं अंतरात्मा में ढलती है। तुम्हीं शराब हो वहां और तुम्हीं पीने वाले भी। वहां तुम्हीं मधुशाला हो, तुम्हीं मधुपात्र, तुम्हीं मदिरा। तब तो तुमने नगद पी। जिसने बाहर से पी, उसने उधार पी।
और कर्ज की पीकर यह मत सोचना कि कभी रंग आने वाला है। रंग छिन जाएगा। फीके हो जाओगे और। जीवन उदास होगा, क्षीण होगा। जीवन पर धूल जम जाएगी और। रंग न खिलेंगे, फूल न खिलेंगे, सुगंध न निकलेगी। तुम्हारी श्वास में शराब की बू आएगी।
बुद्धों की श्वास में भी खुशबू है किसी और शराब की। बुद्धों के पास ही बैठकर तुम डोलने लगोगे। बिना पीए डोलने लगोगे। बुद्धों के पास से लौटोगे तो पैर डगमगाएंगे। एक मस्ती छा जाएगी। दिनों लग जाएंगे वापस लौटने में अपने पुराने ढंग पर।
सत्संग को पीयो। सत्संग बाहर से आने वाली शराब नहीं।
बुद्ध पुरुष तुम्हें कुछ देते नहीं; जो तुम्हारे भीतर सोया है, उसे जगाते हैं। बुद्ध पुरुष तुम्हें न तो धन देते हैं, न तुम्हें पद देते हैं, न तुम्हें विस्मृति देते हैं। बुद्ध पुरुष तुम्हारे भीतर जो छिपा है, उसे जगाते हैं। वही तुम्हारा धन बन जाता है, वही तुम्हारा पद, और वही तुम्हें एक ऐसी मस्ती से भर जाता है, जो फिर कभी छिनती नहीं।
अभी तो जिसे तुमने अपना जीवन समझा है, वह जीवन की छाया भी नहीं है। वह
तो दूर की ध्वनि भी नहीं जीवन की। अभी तो तुमने जिसे जीवन समझा है, वह बड़ी रुग्ण धारणा है। इस जीवन की पीड़ा के बोझ से तुम अपने को भुलाने में लग जाते हो। कोई सिनेमा में जाकर बैठ जाता है, तो घड़ीभर को अपने को भूल जाता है। भूल जाता है तस्वीरों में।
देखो, धोखे कैसे सरल हैं! परदे पर कुछ भी नहीं है। जानते हो तुम, परदे
पर कुछ भी नहीं है। जानते हो तुम, जो दिखाई पड़ रहा है धूप-छाया का खेल है, लेकिन भूल जाते हो। भुलाने को ही आए हो, इसलिए भूल जाते हो। चाहते हो कि भूल जाओ। थोड़ी देर को भूल जाए घर, दुकान, बच्चे, पत्नी, चिंताएं, बोझ, दायित्व! थोड़ी देर को तुम निर्भार हो जाओ। थोड़ी देर को राहत मिल जाए। बोझ को उतारकर रख देने का मन है। बोझ उतरता नहीं। थोड़ी देर बाद सारा बोझ वहीं का वहीं होगा। शायद और बढ़ जाएगा। क्योंकि इस संसार में कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। बोझ भी बढ़ रहा है, जैसे वृक्ष बड़े हो रहे हैं। जैसे तुम्हारी उम्र बड़ी हो रही है, ऐसा तुम्हारा बोझ भी बड़ा हो रहा है। हर चीज बढ़ रही है। ये

जितने क्षण तुमने सिनेमा में बिताए, उतने क्षण भी बोझ चुपचाप बड़ा होता जा रहा है। लौटकर तुम अपने को और भी थका-मांदा, हारा हुआ पाओगे।
कोई संगीत में भुला रहा है। और कुछ हैं, जो भजन-कीर्तन में भी भुला रहे हैं। अब यह समझने की बात है। अगर तुम्हारा भजन-कीर्तन परमात्मा के स्मरण से आ रहा है, नाम-स्मरण से आ रहा है, तब तो ठीक। अगर तुम्हारे भजन-कीर्तन का भी उपयोग वही तुम कर रहे हो, जो सिनेमा और संगीत और वेश्या का किया है, तो तुम्हारा भजन-कीर्तन नाममात्र को भजन-कीर्तन है; असली नहीं। तुम वहां भी शराब ही खोज रहे हो। धार्मिक ढंग की खोज रहे हो।
ऐसे तुम अपने को भुलाए जाओ, अपने से दूर हुए जाओ, तुम्हारे होने और तुम्हारे असली होने में फासला बनता जाए... ।
बेखुदी कहां ले गई हमको
देर से इंतजार है अपना
ऐसी दशा है। अपनी ही प्रतीक्षा कर रहे हो। पता नहीं कहां खो गए हो! अपना ही ठीक-ठीक पता नहीं है। पैर कहां पड़ रहे हैं, पता नहीं है। जीवन कहां जा रहा है, पता नहीं है। क्यों चले जा रहे हो, कुछ पता नहीं है।
ऐसी गैर-पता अवस्था को तुम जीवन कहोगे! तो फिर मृत्यु क्या है? अगर तुम्हारा जीवन जीवन है, तो इससे बदतर कुछ भी नहीं हो सकता। यह जीवन नहीं। तुम्हें जीवन का धागा ही हाथ में नहीं पकड़ में आया।
जीवन कमाना होता है, मिलता नहीं। जीवन साधना है। जन्म के साथ जीवन नहीं मिलता। जन्म के साथ अवसर मिलता है। साधो, तो जीवन मिल जाएगा। न साधो, कभी न मिलेगा। तुमने जन्म को ही जीवन समझ लिया है। और इसीलिए तो तुम इतने परेशान हो कि भुलाने के लिए शराबों की जरूरत है।
सदियों से मंदिर और मस्जिद ने शराब का विरोध किया है। चर्च और गुरुद्वारे ने शराब का विरोध किया है। लेकिन शराब जाती नहीं। मंदिर-मस्जिद उखड़ गए हैं, मधुशाला जमी है। मंदिर-मस्जिदों में कौन जाता है अब? जो जाते हैं वे भी कहां जाते हैं? वे भी कोई औपचारिकता पूरी कर आते हैं।
जाना पड़ता है इसलिए जाते हैं। वहां बैठकर भी वहां कहां होते हैं? मन तो उनका कहीं और ही होता है।
यह जरूरत अपने को भुलाने की इसीलिए है कि तुम्हें अपना पता ही नहीं।
और जो तुमने अपने को समझा है वह कांटे जैसा चुभ रहा है।
तुम्हें मैं वही दे देना चाहता हूं, जो तुम्हारे पास है और जिससे तुम्हारे संबंध छूट गए हैं। उसको पा लेना ही सिद्ध हो जाना है। सिद्ध को भुलाने की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती।
सिद्ध का अर्थ क्या होता है? सिद्ध का अर्थ इतना ही होता है कि जो बीज
की तरह था तुम्हारे भीतर, वह वृक्ष की तरह हो गया; फूल लग गए। सिद्ध का इतना ही अर्थ है, जो तुम होने को हुए थे, हो गए। जो तुम्हारी नियति थी, परिपूर्ण हुई।
गंगा जहां सागर में गिरती है, वहां सिद्ध हो जाती है।
बीज जहां फूल बन जाता है, वहां सिद्ध हो जाता है।
सिद्ध का अर्थ है कि अब और कुछ करने को न रहा, अब कुछ पाने को न रहा, अब कहीं जाने को न रहा। अब कोई मंजिल न रही। अब तुम्हीं मंजिल हो। अब कोई मंदिर-मस्जिद न रहा, कोई तीर्थ न रहा। कोई यात्रा न रही। अब तुम्हीं मंदिर हो, तुम्हीं मस्जिद हो। प्रारंभ अंत पर आ गया। जो यात्री चला था, वह पहुंच गया।
तब भुलाने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। क्योंकि होना इतना आनंदपूर्ण है... क्या तुमने कभी ख्याल किया, तुम जब भी सुखी होते हो, तब तुम अपने को भुलाना नहीं चाहते। जब दुखी होते हो, तभी भुलाना चाहते हो। सुखी आदमी शराब न पीएगा। क्यों पीएगा? कोई सुख को भुलाना चाहता है? कोई सुख को डुबाना चाहता है? कोई सुख को गंवाना चाहता है? सुखी आदमी शराब न पीएगा। दुखी आदमी पीता है। दुख को भुलाना पड़ता है, इसलिए। दुख को भुलाना ही पड़ेगा, अन्यथा झेलना मुश्किल हो जाता है। भुला-भुलाकर झेल लेते हैं। भुला-भुलाकर चल लेते हैं, किसी तरह खींच लेते हैं बोझ को।

जब तुम्हारा आपरेशन किया जाता है, तो बेहोशी की दवा देनी पड़ती है। इतनी पीड़ा होगी कि बिना बेहोशी के तुम न उसे झेल पाओगे। लेकिन जब तुम किसी उत्सव में होते हो, आनंद में होते हो, तब तो कोई जरूरत नहीं है।
एक मित्र मेरे पास आते थे। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं आपके पास आते डरता हूं। मन तो बहुत होता है आने का। ध्यान भी करना चाहता हूं। लेकिन एक अड़चन मन में बनी रहती है। और वह यह कि आज नहीं कल आपको पता चल जाएगा कि मैं शराब पीता हूं। और तब आप जरूर कहोगे कि शराब पीना छोड़ो। यह मुझसे न हो सकेगा। यह मैं कर चुका बहुत बार। हार चुका बहुत बार। अब तो मैंने आशा ही छोड़ दी। अब तो यह जीवनभर की संगी-साथिनी है। यह मुझसे न हो सकेगा। और आज नहीं कल आपको पता चल जाएगा। और फिर आप कहोगे कि ध्यान करना है तो पहले इसे छोड़ दो।
मैंने कहा कि तब तुम मुझे समझे ही नहीं। मैं तो तुमसे इतना ही कहता हूं कि तुमने चूंकि ध्यान नहीं किया, इसीलिए पी रहे हो। ध्यान महा- शक्तिशाली है। अगर ध्यान करने के लिए शराब छोड़नी पड़े तो शराब ज्यादा शक्तिशाली है। नहीं, मैं तो तुमसे कहता हूं, तुम ध्यान करो। जिस दिन ध्यान होगा, उस दिन सोच लेंगे।
उन्होंने कहा, तो यह कोई शर्त नहीं है? यह कोई प्राथमिक जरूरत नहीं है? आप क्या कहते हैं? सभी शास्त्र यही कहते हैं, पहले आचरण ठीक हो, फिर ध्यान।
मैंने कहा, मेरा शास्त्र यही कहता है, ध्यान ठीक हो जाए तो आचरण अपने
से ठीक हो जाता है। प्रार्थना जम जाए तो प्रेम अपने से जम जाता है। थोड़ी सी सुगंध अपनी आने लगे, तो कौन उसे भुलाना चाहता है? मैंने कहा, तुम फिक्र न करो, तुम पीए जाओ। उन्होंने कहा, तो बनेगी यह दोस्ती।
पर उन्होंने बड़ी संलग्नता से, बड़ी तल्लीनता से ध्यान किया। वे आदमी साहसी थे। उन्होंने बड़ी मेहनत... अपना सारा सब कुछ लगाकर ध्यान किया। जैसे उन्होंने शराब पर सब गंवा दिया था, ऐसे ध्यान पर भी गंवा दिया।
जुआरियों से मेरी बनती है, दुकानदारों से नहीं। व्यवसायी से मेरा तालमेल नहीं बैठता। हिसाबी-किताबी से बड़ी अड़चन हो जाती है। क्योंकि ये बातें ही हिसाब-किताब की नहीं हैं। और जब मैंने उनसे कह दिया कि तुम निर्भय रहो। मैं अपने मुंह से तुमसे कभी न कहूंगा कि शराब छोड़ो। तुम पीयो। मेरा जोर ध्यान करने पर है। शराब से मुझे क्या लेना-देना?
मैंने अपना वचन निभाया तो उन्होंने भी अपना वचन निभाया। उन्होंने ध्यान बड़ी ताकत से किया। लेकिन सालभर बाद वह मुझसे आकर कहने लगे कि धोखा दिया। शराब तो गई! पीना मुश्किल होता जा रहा है। रोज-रोज मुश्किल होता जा रहा है।
मैंने कहा, मुझसे बात ही नहीं करना शराब की। वह हमने पहले ही तय कर लिया था कि हम बात न करेंगे। वह तुम जानो। अब तुम्हारी मर्जी। अगर ध्यान चुनना हो तो ध्यान चुन लो, शराब चुननी हो शराब चुन लो। चुनाव की अब सुविधा है। अब दोनों सामने खड़े हैं। अब दोनों रसों का स्वाद मिला। अब चुन लो। अब तुम जानो। अब मुझसे मत बात करो। मेरा काम ध्यान का था, वह पूरा हो गया। उन्होंने कहा, अब तो असंभव है लौटना पीछे। और अब तो सोच भी नहीं सकता कि ध्यान को छोडूंगा। अब तो अगर शराब जाएगी तो जाएगी।
और शराब गई! शराब को जाना ही पड़ेगा। जब बड़ी शराब आ गई, कौन टुच्ची बातों से उलझता है? जब विराट मिलने लगे तो कौन ठीकरे पकड़ता है?
तुम धन को पकड़ते हो, क्योंकि तुम्हें असली धन की अभी कोई खबर नहीं। मैं तुमसे धन छोड़ने को नहीं कहता, असली धन खोजने को कहता हूं। तुम पकड़े रहो धन को, इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। यह इतना बेकार है, इससे कुछ बनता नहीं, बिगड़ेगा कैसे? तुम पीते रहो शराब, इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। इससे बनता ही नहीं तो बिगड़ेगा कैसे?
इस बात को ध्यान रखना कि जिस चीज से कुछ बनता है, उससे कुछ बिगड़ता है। हां, गलत ध्यान करोगे तो बिगड़ेगा। ठीक ध्यान करोगे तो बनेगा। सपना अच्छा देखो कि बुरा, क्या फर्क पड़ता है? सपने से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। तुम सपने में साधु हो जाओ तो क्या फायदा? और तुम सपने में हत्यारे हो जाओ तो क्या

हानि? सुबह जब हाथ-मुंह धोकर फिर से सोचोगे, हंसोगे। सब बराबर! सपने का साधु और सपने का हत्यारा बराबर।
लेकिन जागने में गलत करो, तो कुछ बिगड़ता है। जागने में ठीक करो, तो कुछ बनता है। जिससे बनता है, उससे बिगड़ता भी है। जिससे लाभ होता है, उससे हानि भी होती है।
जब तक भीतर की नगद, तुम्हारी ही अंतरात्मा में ढली शराब तुम्हें उपलब्ध नहीं है, तब तक पीयो। तब तक भिखारी की तरह मधुशालाओं के द्वारों पर खड़े रहो। लेकिन ध्यान रखना, ऐसे तुम एक विराट अवसर गंवा रहे हो। किसी दिन रोओगे।
कहीं ऐसा न हो कि जब तुम्हें सुध आए, तब समय हाथ में न रह जाए। कहीं ऐसा
न हो कि जब मौत द्वार पर दस्तक दे दे तब तुम रोओ! उसके पहले ही जाग आ जाए, तो सौभाग्य! आ सकती है। नहीं तो मेरे पास ही क्यों आते? खोज चल रही है। डगमगाते हैं पैर, माना। सम्हल जाएंगे। थोड़े अभ्यास की बात है। फिर-फिर लौट जाते हो पुराने ढांचों-ढर्रों में, माना। लंबी आदत है, स्वाभाविक है। लेकिन क्षणभर को भी बाहर निकल आते हो, यह भी क्या कम है?
एक किरण भी तुम्हारे भीतर उतर आती है परलोक की, काफी है। जन्मों- जन्मों के अंधेरे को मिटा लेंगे। अंधेरे की मैं बात नहीं करता। बस, एक किरण काफी है। सूरज तक पहुंच जाएंगे। एक किरण के धागे को पकड़ लिया।
बहुत धागे तुम्हें दे रहा हूं। एक नहीं पकड़ते, दूसरा देता हूं। दूसरा नहीं पकड़ते, तीसरा देता हूं। कोई न कोई तो पकड़ में आ ही जाएगा। पकड़ में तुम्हारे नहीं आता, इससे मुझे कुछ परेशानी नहीं है। तुम पकड़ने की चेष्टा करते हो, यही क्या कम है? छूट जाता है, इस पर मैं ध्यान ही नहीं देता। तुमने पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया था, यही काफी है। कभी न कभी पकड़ में आ ही जाएगा। चेष्टा जारी रहे, साधना जारी रहे, सिद्धत्व भी दूर नहीं है।

दूसरा प्रश्नः कल आपने कहा कि कवि और शायर भी कभी-कभी ज्ञान की बातें करते हैं। लेकिन यदि वे शराब न पीते, बेहोशी में न प.ड़े होते तो सिद्ध हो जाते। तो क्या शराब पीते हुए भी व्यक्ति सिद्ध नहीं हो सकता?

शराब पीते ही सभी व्यक्ति सिद्ध होते हैं। ऐसे ही सिद्ध होते हैं। सिद्ध होकर शराब छूट जाती है।
तुम जिसको शराब कहते हो, उसको ही शराब नहीं कह रहा हूं; मैं तो पूरे संसार को शराब कह रहा हूं। वह सब नशा है। जरा धन की दौड़ में पड़े आदमी को देखो, उसकी आंखों में तुम एक मस्ती पाओगे। रुपए की खनकार सुनकर उसे ऐसा नशा छा जाता है, जो कि बोतलें भी पी जाओ, खाली कर जाओ तो नहीं छाता। धन की दौड़ में पड़े आदमी को जरा गौर से देखो, कैसा मोहाविष्ट! कैसा मस्त! जैसे मंजिल बस आने के करीब है। परमात्मा से मिलन होने जा रहा है।
पदाकांक्षी को देखो, पदलोलुप को देखो, राजनेता को देखो, कैसा मस्त! जमीन पर पैर नहीं पड़ते। शराबी भी थोड़ा सम्हलकर चलते हैं। अहंकार की शराब जो पी रहे हैं, उनके पैर तो आसमान पर पड़ते हैं। सारा संसार, वासना मात्र बेहोशी है।
तो अगर कोई कहता हो, यह सारी वासना छोड़ोगे तब तुम सिद्ध बनोगे, तब तुम छोड़ोगे कैसे? यह तो बात ऐसे हुई कि तुम चिकित्सक के पास गए, और उसने कहा, सारी बीमारियां छोड़ोगे तभी मेरी औषधि मैं तुम्हें दूंगा। पर तब औषधि की जरूरत क्या रह जाएगी?
नहीं, तुम बीमार हो यह माना, इससे कोई कठिनाई नहीं। तुम स्वस्थ होना चाहते हो, बस इतनी शर्त पूरी हो जाए। तुम स्वस्थ होना चाहते हो। तुम्हारे भीतर कोई बीमारी के पार उठने की चेष्टा में संलग्न हो गया है। तुम्हारे भीतर कोई सीढ़ियां चढ़ने की तैयारी कर रहा है--पार जाना चाहता है इस अस्वास्थ्य से, इस वासना से, तृष्णा से, इस बेहोशी से। माना कि तुम गिर-गिर जाते हो, कीचड़ में फिर-फिर पड़ जाते हो, सब ठीक! इसमें कोई हर्जा नहीं है। लेकिन फिर तुम उठने की कोशिश करते हो।

कभी छोटे बच्चे को चलने की कला सीखते देखा? कितनी बार गिरता है? कितनी बार घुटने टूट जाते हैं, लहूलुहान हो जाता है। चमड़ी छिल जाती है। फिर-फिर उठकर खड़ा हो जाता है। एक दिन खड़ा हो जाता है। एक दिन चलना सीख जाता है। अगर हम यह शर्त रखें कि जब तुम सब गिरना छोड़ दोगे, डांवाडोल होना छोड़ दोगे, तभी कुछ हो पाएगा, तब तो हम बच्चे की सारी आशा छीन लें। नहीं, गिरने में भी चलने का ही उपक्रम है। गिर-गिरकर उठने में भी चेष्टा चल रही है, साधना चल रही है। हम बच्चे को कहेंगे, बेफिक्र रहो। गिरने पर ज्यादा ध्यान मत दो। वह भी चलने के मार्ग पर एक पड़ाव है।
भटकने पर बहुत ज्यादा परेशान मत हो जाओ। भटकना भी पहुंचने का हिस्सा है। संसार भी परमात्मा के मार्ग पर पड़ता है। गिरो! पड़े ही मत रहो, उठने की चेष्टा जारी रहे। तो एक दिन उठना हो जाएगा। जिसके भीतर उठने की चेष्टा शुरू हो गई, पहला कदम उठ गया। और एक छोटे से कदम से हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है।
लाओत्सू ने कहा है, एक कदम तुम उठाओ। दो कदम एक साथ कोई उठाता भी तो नहीं। एक-एक कदम उठा-उठाकर हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है।
तुम बेहोश हो माना, लेकिन इतने बेहोश भी नहीं कि तुम्हें पता न हो कि तुम बेहोश हो। बस, वहीं सारी संभावना है। वहीं असली सूत्र छिपा है। फिर से मुझे दोहराने दो। तुम बेहोश हो माना, लेकिन इतने बेहोश भी नहीं कि तुम्हें पता न हो कि तुम बेहोश हो। बस, उसी पता में, उसी छोटे से बीज में सब छिपा है। ठीक भूमि मिलेगी, बीज अंकुरित हो जाएगा।
परेशानी तो उनके लिए है, जिन्हें यह भी पता नहीं। उन्हीं को बुद्ध ने मूढ़ कहा है। मूढ़ मूर्ख का नाम नहीं है। मूढ़ और मूर्खता में फर्क है। मूर्ख तो वह है, जिसे पता नहीं है। यह कोई बड़ी बीमारी नहीं है। मूढ़ वह है, जिसे पता भी नहीं और जो मानता है कि उसे पता है। मूढ़ वह है, जो कीचड़ में पड़ा है; और सोचता है, स्वर्ग में है। मूर्ख वह है, जो कीचड़ में पड़ा है, जानता है कि कीचड़ में पड़ा हूं।
इन दोनों के बीच में विज्ञ है, समझदार है, जो कीचड़ में पड़ा है, जानता है
कि कीचड़ में पड़ा है; और चेष्टा कर रहा है उठने की, कि उठ जाए। गिर-गिर पड़ता है। स्वाभाविक है। सीखना पड़ेगा। लेकिन चेष्टा जारी रहती है। फिर-फिर लौट आता है। भटक-भटक जाता है, फिर मंदिर को तलाश लेता है। लौट-लौटकर उस सूत्र को पकड़ने की कोशिश करता है।
वह सूत्र है, बोध का। ध्यान कहो, प्रार्थना कहो, मगर सार बोध है। इसलिए
तो हमने जब सिद्धार्थ गौतम ज्ञान को उपलब्ध हुए तो उन्हें बुद्ध कहा--बोध के सूत्र को उपलब्ध हो गए। जाग गए।
बेहोश भी पहुंच जाएंगे। अगर बेहोश न पहुंचते होते तो फिर तो कोई भी न पहुंचता। क्योंकि बुद्ध भी एक दिन बेहोश थे। उसी बेहोशी से बुद्धत्व उठा। इसलिए बेहोशी को तुम बुद्धत्व की दुश्मनी मत समझ लेना। बेहोशी बुद्धत्व का अवसर है। जैसे कीचड़ से कमल उगता है, ऐसे बेहोशी से बुद्धत्व उगता है। यद्यपि कमल दूर चला जाता है कीचड़ से, लेकिन आता कीचड़ से है। रस कीचड़ से पाता है। रस को रूपांतरित कर लेता है।
तुम भोजन करते हो, भोजन करके तुम्हारे भीतर कामवासना बनती है। इसलिए
तो साधु-संन्यासी उपवास करने लगते हैं। घबड़ा जाते हैं भोजन से। क्योंकि जितना भोजन लेते हैं, उतनी वासना उभार लेती है।
बुद्ध पुरुष भी भोजन लेते हैं, लेकिन उसी भोजन से अब वासना नहीं बनती; करुणा बनती है। अब कीचड़ कमल बनने लगी।
तुम रात सोते हो, साधु-संन्यासी डरते हैं रात सोने से। क्योंकि दिनभर
तो किसी तरह सम्हाला, नींद में कैसे सम्हालेंगे? कामवासना नींद में घेर लगी। तो नींद से डरने लगते हैं। बुद्ध पुरुष के लिए दिन हो कि रात, सब बराबर है। जिसने जागना सीख लिया, वह रात भी जागा रहता है। नींद रहती है शरीर में, स्वयं में नहीं। शरीर कीचड़ है, स्वयं कमल। शरीर से बहुत पार उठ जाता है, लेकिन कीचड़ से रसधार जुड़ी रहती है। कीचड़ से रस लेता है, लेकिन रस को रूपांतरित करता है।

सभी कुछ बोध बनने लगता है बुद्ध पुरुष में। तुममें सभी कुछ बेहोशी बन जाता है। धन मिले तो तुम बेहोश हो जाते हो, पद मिले तो बेहोश हो जाते हो। तुम्हें जो कुछ भी मिलता है, वह बेहोशी में रूपांतरित होता है। तुम्हारे भीतर की पूरी की पूरी व्यवस्था, तुम्हारा यंत्र, हर चीज से बेहोशी निकालता है। तुम अगर भागकर त्यागी भी हो जाओ तो तुम्हारे त्याग में भी बेहोशी होगी।
मैं एक जैन मुनि से मिलने गया। बहुत वर्ष हुए। जब मैं गया तो वे एक छोटी सी कहानी अपने शिष्यों को कह रहे थे। कहानी सुनकर वाह-वाह हो गई। उन्होंने मेरी तरफ भी देखा, कहा, आपको कैसी लगी? मैंने कहा कि मैं कुछ न कहूं तो अच्छा है।
पहले मैं तुम्हें कहानी सुना दूं। कहानी ऐसी है कि तुम्हारे मन में
भी वाह-वाह उठ आएगी। कहानी थी, एक बूढ़ी महिला ने जो एक बहुत बड़े धनपति की मां थी, अपने बेटे से कहा कि तुम सदा लाखों की बात करते हो, लेकिन मैंने कभी लाख रुपए का ढेर लगा नहीं देखा। बूढ़ी हो गई हूं, यह बात कई दफा ख्याल में आती है कि लाख का चबूतरा बनाएं, लाख रुपयों का ढेर लगाकर, तो कितना बड़ा होगा!
बेटे ने कहा, क्या फिक्र की बात है? कभी भी कहा होता। उसने लाकर लाख रुपए, सिक्के सामने रखकर एक चबूतरा बनवा दिया। उसकी मां ने कहा कि तुम हैरान मत होना, मेरे मन में सदा इच्छा रही है कि इस पर बैठूं! तो वह उस पर बैठ गई। अब जब मां बैठ गई लाख रुपयों पर, तो उनको वापस क्या तिजोड़ी में ले जाना, ऐसा सोचकर बेटे ने उनको दान करना चाहा। मां के चरण पड़ गए, उसकी इच्छा थी, उनको दान कर दें। तो एक ब्राह्मण को बुलाया। जब दान करने लगा तो थोड़ा सा अहंभाव आया, और उसने कहा कि दातार तो तुमने बहुत देखे होंगे, लेकिन मुझ सा दाता देखा? लाख रुपए का ढेर लगाकर दे रहा हूं।
उन जैन मुनि ने कहा कि वह ब्राह्मण बड़ी त्यागी वृत्ति का, बड़ा विनम्र व्यक्ति था। उसका स्वाभिमान जागा। उसने अपनी जेब से एक रुपया निकालकर उस लाख रुपए के ढेर पर फेंक दिया और कहा कि तुमने भी बहुत से ब्राह्मण देखे होंगे, मुझ सा ब्राह्मण देखा कि लाख तो छोड़ता ही हूं, एक रुपया और डाल देता हूं, सम्हालो अपने रुपए।
जैन मुनि ने पूछा, आप क्या कहते हैं?
मैंने कहा, दोनों एक ही तरह के लोग थे, कुछ फर्क नहीं। दोनों अहंकारी थे। आप दूसरे की प्रशंसा कर रहे हैं। आपके मन में बड़ा अहोभाव मालूम पड़ता है कि दूसरे ने गजब कर दिया। पहले को अभिमान जगा तो उसको आप अहंकार कहते हैं। दूसरे को भी अभिमान जगा, उसको आप स्वाभिमान कहते हैं। दोनों अभिमान हैं। अगर पहला गलत था, दूसरा भी सही नहीं है। पहला अहंकार भोगी का होगा, दूसरा अहंकार त्यागी का है। पहला अहंकार धनी का होगा, दूसरा अहंकार दरिद्र का है। लेकिन दोनों अहंकार हैं। चूंकि आपने भी अपने को त्यागी मान रखा है, दूसरे के अहंकार से आपको भी रस मिल रहा है। और यहां जो आपके पास लोग बैठे हुए हैं, इनकी भी त्याग की यही धारणा है।
तुम अगर त्याग भी करोगे तो उससे भी अहंकार ही बनेगा। भोग की तो छोड़ो बात, त्याग भी करते हो तो उसका भी जो रस मिलता है, उससे भी अहंकार बनता है। असली सवाल त्याग और भोग नहीं, असली सवाल तुम्हारे भीतर की कीमिया, अल्केमी बदलने का है। तुम्हारे भीतर जो यंत्र बैठा हुआ है, जो हर चीज को अहंकार में बदल देता है, वासना में बदल देता है, बेहोशी में बदल देता है, उसको तोड़ना है।
ध्यान उसका ही प्रयोग है। वह तुम्हारे भीतर के पूरे यंत्र को बदल देता है। कल भी तुम उसी मिट्टी में रहोगे, जिसमें पहले थे। लेकिन अब उसी मिट्टी से कमल निकलेगा। तुम उसी संसार में खड़े रहोगे जहां कल खड़े थे। लेकिन अब तुम संसार में होते हुए भी संसार में न रहोगे। संसार में तुम रहोगे, संसार तुममें न होगा। बीच में खड़े भी तुम पार होओगे। अतिक्रमण हो जाएगा। बोध का यही अर्थ है।
तो मैंने निश्चित कल कहा कि कवि और शायर कभी-कभी बड़ी ज्ञान की बातें करते हैं। निश्चित ही। बड़ी ऊंचाइयां छू लेते हैं। लेकिन वे ऊंचाइयां ऐसे

ही हैं, जैसे किसी ने स्वप्न देखा--हिमालय का। उज्ज्वल सूर्य की किरणों से स्वर्णमंडित शिखर देखे, लेकिन स्वप्न में देखे। यह एक बात है। और किसी ने साक्षात किया उन शिखरों का--स्वप्न में नहीं, जागते हुए। यह बिल्कुल दूसरी बात है।
कवि तुम्हारे जैसा ही आदमी है। तुममें और उसमें थोड़ा सा फर्क है। वह इतना ही फर्क है कि वह स्वप्न-द्रष्टा है। वह दूर के सपने देखना जानता है। वह सपने देखने में तुमसे ज्यादा कुशल है। तुम सपने भी देखते हो तो भी दूर के नहीं देखते।
मैंने सुना है कि एक शिष्य ने अपने गुरु को आकर कहा, कि बड़ा रस आया। समाधि लग गई। ध्यान कर रहा था बैठा गुरु के सामने। गुरु ने कहा, कैसी समाधि! क्योंकि अचानक तूने सिसकारा लिया और आंख खोल दी। उसने कहा कि अब मैं आपको पूरी बात कह दूं। आज ध्यान दाल-बाटी बनाने पर लगाया। खूब लगा! बिल्कुल लीन हो गए। ऐसा कभी न लगा था। मगर जरा दाल में मिर्च ज्यादा पड़ गए। तो सिसकारा निकल गया। फिर लगाऊंगा। जरा चूक हो गई।
गुरु ने कहा, ध्यान ही करना था, सपना ही देखना था, तो मोक्ष का देखता, परमात्मा का देखता। नासमझ! दाल-बाटी बनाई? दाल-बाटी ही बनानी थी तो कम से कम खीर, हलवा, कुछ ढंग की चीजें बनाता। उसमें भी ज्यादा मिर्चें डाल लीं! सपना देखना भी तुझे नहीं आता, ध्यान करना तो कैसे आएगा? सपने में भी वही भूल कर ली जो जिंदगी में कर ली, मिर्चें ज्यादा डाल लीं।
अपने ही डाले मिर्चों से जले जाते हो, अपने ही डाले मिर्चों से नर्क पाते हो, मगर डाले चले जाते हो।
कवि ऐसा व्यक्ति है, तुम मिर्चें डाल रहे हो अपने सपनों में, वह थोड़े खीर, हलवा--उस तरह के सपने देख रहा है। तुमसे बेहतर हैं उसके सपने। वह तुमसे ज्यादा तरल है और दूर की कौड़ी लाने में कुशल है। कभी-कभी उसके सपनों में बड़ी दूर के प्रतिबिंब बन जाते हैं। जैसे चांद उगा हो आकाश में और झील में उसका प्रतिबिंब बनता है। वह प्रतिबिंब असली नहीं है। एक कंकड़ फेंक दो झील में, प्रतिबिंब खंड-खंड हो जाएगा। एक छोटा सा कंकड़ तोड़ देगा उस चांद को।
फिर किसी ने चांद देखा--ऋषि और कवि का यही फर्क है। ऋषि चांद देखता है, कवि चांद का प्रतिबिंब देखता है। ऋषि जब गाता है तो वह चांद की प्रशंसा में गाता है। कवि जब गाता है तो वह चांद के प्रतिबिंब की प्रशंसा में गाता है।
लेकिन यह हो सकता है कि ऋषि की बात तुम्हें बेबूझ हो जाए। क्योंकि तुमने सत्य कभी देखा नहीं। लेकिन कवि की बात तुम्हें थोड़ी-थोड़ी समझ में आती है, क्योंकि सपने तुमने भी देखे हैं। उतने अच्छे न देखे होंगे। तुम उतने कुशल नहीं हो। तुम्हारे सपने साधारण हैं। तुम्हारे सपनों में सिसकारा निकल जाता है। लेकिन फिर भी सपने तुमने देखे हैं। सपनों की भाषा तुम जानते हो। इसलिए कवि की बात तुम्हें जल्दी समझ में आ जाती है, ऋषि की बात जरा मुश्किल है।
कवि तुम्हारे और ऋषि के बीच में खड़ा है। तुम जैसा है, लेकिन बिल्कुल तुम जैसा नहीं, तुमसे ज्यादा सृजनात्मक है। तुमसे ज्यादा कल्पना का धनी है। उसकी कल्पना ज्यादा प्रखर है। तुम भी एक डबरे हो पानी के, वह भी पानी का डबरा है। तुम पानी के ऐसे डबरे हो, इतनी मिट्टी घुली है कि प्रतिबिंब भी नहीं बनता। उसके पानी के डबरे की मिट्टी नीचे बैठ गई है। प्रतिबिंब बनता है, साफ-सुथरा बनता है। इतना ही नहीं, वह प्रतिबिंब को पकड़ लेता है चित्रों में, कविताओं में, मूर्तियों में, ढाल देता है बाहर।
इसलिए तो इतना प्रभाव है काव्य का, चित्रों का, मूर्तियों का। जो तुमसे नहीं हो पाता, वह तुम्हारे लिए कर देता है। जो तुम नहीं गा पाते, वह गा देता है। तुम गाना चाहते थे, लेकिन तुम उतने अच्छे शब्द न खोज पाए। जब तुम किसी कवि को सुनते हो, तुम्हें ऐसा लगता है कि ठीक यही मैं कहना चाहता था। मैं न कह पाया, इसने कह दिया। तुमसे जो वाह-वाह निकल जाती है, तुम जो तालियां पीट देते हो, वह इसीलिए कि जहां तुम हार गए थे, वहां यह आदमी जीत गया। इसने बात जमा दी। ठीक वैसी ही कह दी, जैसी तुम चाहते थे कि कहो।

ऋषि की बात दूर पड़ जाती है; बहुत दूर पड़ जाती है। तुम सुन भी लेते हो तो
भी सुन नहीं पाते। समझते से भी लगते हो और समझ में आती सी भी नहीं लगती।
ऐसा लगता है कुछ समझे भी, कुछ नहीं भी समझे। कुछ धुंधला-धुंधला रह जाता है।
अब यह बड़े मजे की बात है। कवि की बात धुंधली है, वह तुम्हें साफ समझ में आ जाती है। ऋषि की बात बिल्कुल साफ है, वह तुम्हें धुंधली मालूम पड़ती है। क्योंकि भाषा का भेद है। ऋषि किसी और ही लोक की बात कर रहा है।
लाओ उसे भी रख दें उठाकर शबे-विसाल
हायल जो एक खलीफ सा पर्दा नजर का है
ऋषि और कवि में इतना ही फर्क है। ऋषि की अपनी कोई नजर नहीं है। उसके पास अपना कोई दृष्टिकोण नहीं है। झीना सा पर्दा भी नहीं है उसके पास अपने मत का। उसके पास अपना कोई मन नहीं है। झीना सा पर्दा भी नहीं है उसके पास मन का। उसने अपने को पोंछ दिया बिल्कुल। सत्य सत्य की तरह ही प्रगट होता है। कवि अपने मन के झीने पर्दे से सत्य को देखता है। वह झीना पर्दा उस सत्य पर हावी हो जाता है।
लाओ उसे भी रख दें उठाकर शबे-विसाल
इस मिलन की रात में, अब उसे भी उठाकर अलग रख दें।
हायल जो एक खलीफ सा पर्दा नजर का है
एक जो झीना सा पर्दा बीच में है, उसे भी हटा दें। जिस दिन कवि उसे हटा देता है, उसी दिन ऋषि हो जाता है।
सभी ऋषि कवि हैं, लेकिन सभी कवि ऋषि नहीं हैं। चाहे ऋषियों ने वक्तव्य गद्य में दिया हो, चाहे पद्य में; वे सभी कवि हैं। चाहे उन्होंने अपनी वाणी को संगीत के छंदों में बांधा हो, न बांधा हो; लेकिन जब भी कोई ऋषि बोलता है तो उसका शब्द-शब्द छंदबद्ध है। यह छंदबद्धता भाषा की नहीं है, अंतर-अनुभव की है।
जब ऋषि बोलता है तो बोलता नहीं, वह भी गाता है। चाहे तुम्हारे गाने के ढांचे में उसका गाना बैठता हो न बैठता हो, चाहे वह तुम्हारे मात्राओं और छंद के नियम मानता हो न मानता हो, तुम्हारी व्याकरण और भाषा के सूत्र उपयोग करता हो न करता हो। लेकिन जब भी कोई ऋषि बोलता है, गाता है; बोलता नहीं। जब चलता है, चलता नहीं, नाचता है। तुम्हें दिखाई पड़ता हो न पड़ता हो, क्योंकि तुम्हारी आंख पर अभी मन का पर्दा है।
कवि अगर मन को हटा दे--मन को हटाने का अर्थ है, विचार को हटा दे। विचार
को हटाने का अर्थ है, ध्यान के माध्यम से सत्य को देखे, विचार के माध्यम से नहीं। बस, ऋषि हो गया। कभी-कभी छलांग लगा लेता है, कभी-कभी एक झलक उसे मिल जाती है पार की। लेकिन बस, वह झलक है।
ऋषि वहां जीता है, जिसकी झलक कवि को मिलती है कभी-कभी। ऋषि उस मंदिर में निवास करता है, जिसके शिखर कभी-कभी कवि के स्वप्नों में झलक जाते हैं। ऋषि की वह अवस्था है। काव्य कवि के जीवन का एक छोटा सा खंड है। ऋषि के जीवन की अवस्था है कविता।
इसलिए तुम अगर किसी कवि की कविताओं को बहुत प्रेम करो तो भूलकर भी कवि
को मिलने मत जाना। नहीं तो खंडित हो जाएगा तुम्हारा प्रेम। क्योंकि कवि को तुम साधारण आदमी पाओगे। शायद साधारण से भी ज्यादा गिरा हुआ पाओ। कविता और बात है। वह तो कुछ क्षण थे अनूठे, जो उसके जीवन में उतरे। उनको गाकर वह चुक गया। वह फिर साधारण आदमी हो जाता है। कभी-कभी तुमसे भी गिरा हुआ तुम उसे पाओगे।
इसलिए अच्छा हो, कविता को जान लेना, प्रेम कर लेना, कवि को खोजने मत जाना। वह कहीं किसी पान की दुकान पर बीड़ी पीता मिल जाएगा; कि किसी भजिए की दुकान के सामने खड़ा हुआ भजिया खा रहा होगा। तुम सोच ही न पाओगे। या किसी नाली में पड़ा होगा शराब पीकर।
तुमने जो सुगंध उसके गीत में पाई थी, तुम उसमें न पाओगे। वह उसके जीवन
की गंध नहीं है। उतर आई थी, झलकी थी। ऐसा समझो कि अंधेरी रात में बिजली चमक गई और एक झलक दिख गई। यह एक बात है। और दिन की सूरज की रोशनी में चलना बिल्कुल दूसरी बात है। उसने बांध लिया उसको अपने शब्दों में। बांधने के

बाद वह भी वहीं खड़ा हो जाता है, जहां तुम खड़े हो। बांधने के बाद वह भी साधारण हो जाता है। एक स्पर्श हुआ था।
इसलिए तो कवि कहते हैं कि जो हमने लिखा, जो हमने गाया, वह हमने गाया यह पक्का नहीं है। जैसे कोई और हममें गा गया। वह बात इतनी फासले की है कि उनको खुद ही लगती है कि कोई और हममें गा गया। जैसे कोई और हममें उतर आया, अवतरित हुआ।
कोई नहीं उतर आया, उन्होंने ही एक छलांग ली थी; लेकिन छलांग थी। जैसे जमीन पर तुम खड़े हो और छलांग ले लो, तो एक क्षण को तुम जमीन से उठ जाते हो, फिर वापस जमीन पर आ आते हो। यह एक बात है। और तुम्हें पंख लग जाएं, तब बात और है। ऋषि उड़ता है आकाश में, कवि छलांग लेते हैं। फिर-फिर लौट आते हैं। फिर उसी भूमि पर खड़े हो जाते हैं।
अक्सर तो यह होता है कि छलांग लेने वाला खड़ा भी नहीं हो पाता; बैठ जाता है। थकाती है छलांग। इसलिए अक्सर कवि तुमसे भी नीचा हो जाता है लौटकर। तुमसे ऊंचा हो लेता है छलांग में, तुमसे नीचा हो जाता है लौटकर। शिखर छू लेता है छलांग में, गिर जाता है खाई में लौटकर। कवि को चुकाना पड़ता है खाई में गिरकर वह मूल्य, जो उसने छलांग लेकर शिखर छूने में पाया। हर चीज की कीमत चुकानी पड़ती है।
ऋषि शिखर पर रहता है। ऐसा कहना भी ठीक नहीं, ऋषि शिखर हो जाता है। रहने में भी थोड़ी दूरी है। रहने में भी डर है, कभी गिर जाए। रहने में भी डर है, कभी लौट आए। रहने में भी डर है, कभी संसार फिर बुला ले। नहीं, शिखर हो जाता है। कवियों को परमात्मा कभी-कभी, स्वप्न में संदेश देता है। ऋषि परमात्मा हो जाते हैंः अहं ब्रह्मास्मि! अनलहक! वे उस सत्य के साथ एक हो जाते हैं।

तीसरा प्रश्नः सामान्य जीवन का विकास द्वंद्वात्मक, डायेलेक्टिकल है। क्या आत्मिक जागरण भी द्वंद्वात्मक है?

नहीं--जहां तक द्वंद्व है, वहां तक आत्मा नहीं। जहां तक द्वंद्व है, जहां तक दो हैं, वहां तक तुम नहीं। जहां तक संघर्ष है, वहां तक संसार है। आध्यात्मिक जागरण है साक्षीभाव।
संसार का विकास द्वंद्वात्मक है। यहां हर चीज विपरीत से जुड़ी है। दिन
है तो रात है। सुबह हुई तो सांझ होगी। चाहे तुम कितना ही भुलाओ, समझाओ अपने को, कि अब कभी सांझ न होगी। इस पागलपन में मत पड़ना। सुबह हुई तो सांझ हो गई। सुबह सांझ को ले आई। तुम्हें देखने में बारह घंटे की देर लगेगी। वह देखने की देरी है। जन्म हुआ तो मौत हो गई। सत्तर साल लगेंगे तुम्हें पहचानने को। वह पहचानने की देरी है। सुबह में सांझ आ गई। विपरीत आ गया। प्रकाश में अंधेरा आ गया। खुशी में दुख आ गया। इधर नाचे नहीं कि वहां चिंता तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। इधर तुम मुस्कुराए नहीं कि वहां आंसू तैयार होने लगे। तुम्हारी मुस्कुराहट आंसू ले ही आई।
जिस दिन तुम इन दोनों के साक्षी हो जाओगे, कि तुम देखोगे, यह रही मुस्कुराहट, ये रहे आंसू, न अपने को मुस्कुराहट से जोड़ोगे, न आंसुओं से; तीसरे हो जाओगे, दूर खड़े होकर देखने लगोगे; उस दिन आत्मिक जागरण हुआ। तब दो दो नहीं रह जाते। आंसुओं में मुस्कुराहट दिखाई पड़ जाती है, मुस्कुराहट में आंसू दिखाई पड़ जाते हैं। द्वंद्व गया। तुमने निर्द्वंद्व को पा लिया। नई सुबह पर नजर है मगर आह यह भी डर है
यह सहर भी रफ्ता-रफ्ता कहीं शाम तक न पहुंचे
नई सुबह पर नजर है मगर आह यह भी डर है
यह सहर भी रफ्ता-रफ्ता कहीं शाम तक न पहुंचे
पहुंचेगी ही। यह सुबह भी सांझ होगी। सभी सुबह सांझ होगी। धन में निर्धनता छिपी आ गई। इसलिए तो धनी को तुम इतना डरा हुआ पाते हो। निर्धनता का भय धन के साथ ही आ जाता है। प्रेम में घृणा का बीजारोपण हो जाता है। इसलिए तो तुम प्रेमियों को सदा संदिग्ध पाते हो कि प्रेम है भी? इसलिए तो तुम प्रेमियों को सदा लड़ते पाते हो, क्योंकि घृणा लड़ाती है।

शत्रु किसी को बनाना हो तो पहले मित्र बनाना जरूरी है। क्योंकि मित्रता के बिना शत्रुता कैसे होगी? मित्रता में पहला कदम शत्रुता का उठ जाता है। अगर चलते ही रहे ठीक-ठीक, तो शत्रुता आ ही जाएगी।
चारा नहीं कोई जलते रहने के सिवा
सांचे में फना के ढलते रहने के सिवा
ऐ शमा तेरी हयाते-फानी क्या है
झोंका खाने संभलते रहने के सिवा
जिसको तुम जिंदगी कहते हो, बस जैसे दीए की ज्योति झोंका खाती रहे--इस तरफ से उस तरफ, उस तरफ से इस तरफ।
झोंका खाने संभलते रहने के सिवा
ऐ शमा तेरी हयाते-फानी क्या है
होना और न होना, इन दोनों के बीच जीवन डांवाडोल रहता है। जिसे तुमने जीवन कहा है, वह एक कंपन है होने और न होने के बीच। लेकिन तुम्हारे भीतर जागने की क्षमता है, और तुम होने न होने दोनों के साक्षी हो सकते हो। वही साक्षीभाव आध्यात्मिक सूत्र है। वहीं से द्वार खुलता है आत्मा का। इसलिए जब दुख आए तो घबड़ाना मत। यह मत समझ लेना कि यह सुबह आई तो अब सांझ न होगी; या सांझ आई तो सुबह न होगी। जब दुख आए तो जानना की सुख आ रहा है और तुम निश्चिंत बने रहना। तुम्हें चिंता न पकड़े। यही साधना है। दुख आए तो तुम जानना कि सुख आता ही होगा, कहीं पीछे छिपा होगा। क्यू में खड़ा होगा। जब सुख आए तो जानना कि कहीं दुख पीछे खड़ा होगा, आता ही होगा।
तो जब सुख आए तो बहुत उमंग से मत भर जाना। जब सुख आए तो इठला मत जाना।
जब सुख आए तो अकड़कर मत चलने लगना। और जब दुख आए तो व्यथित मत होना। चिंतित मत होना। दोनों को साथ-साथ देख लेना। जिसे यह कला आ गई उसे सब आ गया।
क्योंकि इन दोनों को साथ-साथ देखकर तुम पाओगे कि न तो कुछ चिंता योग्य है, और न कुछ सौभाग्य, न कुछ दुर्भाग्य। न कुछ वरदान है, न कुछ अभिशाप।
तुम दोनों से पार होने लगोगे। तुम दोनों में शांत होने लगोगे। तुम दोनों में सम्हले रहने लगोगे। तुम दोनों के बीच संतुलन को कायम कर लोगे।
तुम दोनों के साक्षी हो जाओगे।
साक्षीभाव अध्यात्म है।

चौथा प्रश्नः आप तो कहते हैं कि बुद्ध पुरुष के संसर्ग से पशु, पक्षी
और पेड़-पौधे भी वही नहीं रह जाते जो वे थे। फिर मूढ़ मनुष्य क्या पेड़-पौधों से भी गया बीता है?

निश्चित ही। कोई प.ेड-पौधा मूढ़ नहीं है। पेड़-पौधे की वह क्षमता नहीं। मूढ़ होने के लिए मनुष्य होना जरूरी है। कोई पेड़-पौधा बुद्ध भी नहीं है। वह भी उसकी क्षमता नहीं है। तुम किसी पेड़ को पापी नहीं कह सकते, पुण्यात्मा नहीं कह सकते। न कोई पेड़ पुण्यात्मा है, न पापी है। उसके लिए मनुष्य होना जरूरी है।
मनुष्य उठे तो परमात्मा हो सकता है, गिरे तो शैतान हो सकता है। न तो पेड़-पौधे उठकर परमात्मा हो सकते हैं, और न गिरकर शैतान हो सकते हैं। पेड़-पौधे थिर हैं। यही तो उनकी जड़ता है, स्वतंत्रता नहीं है। इस किनारे से उस किनारे जाने की, उस किनारे से इस किनारे आने की स्वतंत्रता नहीं है, बंधे हैं।
गौर से देखो, चट्टान पड़ी है। पेड़-पौधे से भी ज्यादा परतंत्र है। एक फूल भी तो नहीं खिला सकती। एक पत्ता भी तो नहीं निकलता। जैसी है बस, पड़ी है।
फिर वृक्ष हैं--थोड़ी स्वतंत्रता आई। फूल खिलते हैं, फल लगते हैं, जीवन
की कुछ धार है। आकाश की तरफ उठने की अभिलाषा है। सूरज की खोज शुरू हो गई।
वही सूरज की खोज तो तुम में आकर परमात्मा की खोज बन जाएगी--रोशनी की खोज।
इसलिए अफ्रीका के जंगलों में वृक्ष सैकड़ों फीट ऊपर उठ जाते हैं।
क्योंकि घने जंगल हैं। सूरज को अगर पाना है तो बहुत लंबा उठना पड़ेगा।
जितना घना जंगल होगा, वृक्ष उतने लंबे जाएंगे। उन्हीं वृक्षों को तुम

खुले मैदान में लगा दो, उतने लंबे न जाएंगे, ठिगने रह जाएंगे। जरूरत ही न रही, प्रतिस्पर्धा न रही, संघर्ष न रहा। सूरज ऐसे ही सस्ते मिल गया। दाम न चुकाने पड़े। कौन जाए फिर इतना ऊंचा?
तो पेड़-पौधे के पास एक स्वतंत्रता है। घने जंगल में हो तो ऊंचा जाता है। घने जंगल में न हो तो ठिगना रह जाता है। खोज करता है, लेकिन जड़ जमीन से बंधी है। हट नहीं पाती। एक जगह गड़ा हुआ है। मजबूर है।
फिर पशु-पक्षी हैं, पेड़-पौधे से ज्यादा स्वतंत्र हैं। जड़ नहीं हैं, कहीं बंधे हुए नहीं हैं, मुक्त हैं। चल-फिर सकते हैं। कम से कम पृथ्वी पर कहीं भी यात्रा कर सकते हैं। सर्दी आ जाए तो धूप में बैठ सकते हैं। धूप बढ़ जाए तो छाया खोज सकते हैं। वृक्ष खड़ा है, हट नहीं सकता। धूप आए, सर्दी आए, सहना पड़ेगा। स्वतंत्रता ज्यादा नहीं है।
फिर आदमी है; उसकी स्वतंत्रता और भी बड़ी है। उससे बड़ी कोई स्वतंत्रता नहीं है। वही उसकी गरिमा है, वही उसका दुर्भाग्य भी। क्योंकि जब उठने की क्षमता आती है तो गिरने की क्षमता साथ ही आ जाती है--उसी अनुपात में। बुद्ध हो सकते हो, चंगेजखान भी हो सकते हो। दोनों संभावनाएं एक साथ खुल जाती हैं। स्वाभाविक है। जो चढ़ेगा वही गिर सकता है। जो चढ़ नहीं सकता, वह गिर भी नहीं सकता। इसलिए मूढ़ तो सिर्फ आदमी हो सकते हैं।
मूढ़ होने का क्या अर्थ है? मूढ़ होने का अर्थ है, कि तुमने जिद कर ली कि
हम गिरने के लिए ही अपनी स्वतंत्रता का उपयोग करेंगे, चढ़ने के लिए नहीं। मूढ़ होने का इतना ही अर्थ है कि हमारी जिद है कि हम गिरने में ही अपनी स्वतंत्रता का उपयोग करेंगे। ख्याल करो, कुछ लोग हैं, जो अपनी क्षमता का उपयोग कुछ बनाने के लिए करते हैं। कुछ लोग हैं, जो अपनी क्षमता का उपयोग कुछ तोड़ने के लिए करते हैं। कोई है जो मूर्ति बनाता है, और कोई है जो जाकर मूर्ति तोड़ आता है।
जीसस की एक बहुत अदभुत मूर्ति दो वर्ष पहले रोम में तोड़ी गई। माइकल एंजलो की मूर्ति थी बनाई हुई। जीसस सूली से उतारे गए हैं और मरियम की गोद में उनका सिर है, मां की गोद में सिर है। कहते हैं, इससे ज्यादा सुंदर मूर्ति पृथ्वी पर दूसरी नहीं थी। वर्षों अथक श्रम करके माइकल एंजलो ने बनाई थी। इसका मूल्य, इसकी कीमत कूती नहीं जा सकती। इतनी जीवंत कोई मूर्ति न थी। संगमरमर पर इससे ज्यादा गहरा कभी कोई प्रयोग न हुआ था। और एक आदमी ने जाकर उसको हथा.ैडे से तोड़ दी। पकड़ा गया, पूछा गया, तो उसने कहा कि यह मुझे सदा से खलती थी। मैं भी चाहता हूं कि मेरा नाम भी इतिहास में अमर हो जाए। माइकल एंजलो ने बनाई, मैंने तोड़ी।
हिटलर ने इतने लोग मारे। यह तोड़ने में रस है, बनाने में नहीं। मूढ़ता
का अर्थ है, हमने जिद्द कर ली कि हम नीचे जाने में ही स्वतंत्रता का उपयोग करेंगे। तब तुम्हें कोई ऊपर नहीं उठा सकता। अगर तुमने ही तय कर लिया कि हम नीचे जाने में ही अपनी स्वतंत्रता का उपयोग करेंगे, तो तुम नर्क तक उतर सकते हो।
आदमी एक सीढ़ी है। उसका एक पहला पायदान नर्क में टिका है। उसका आखिरी पायदान स्वर्ग में टिका है। यह तुम पर निर्भर है।
मैंने एक बड़ी प्राचीन कहानी सुनी है। एक मनोवैज्ञानिक और चित्रकार अपने जीवन के अंतिम दिनों में एक चित्र बनाना चाहता था, जिसमें सबसे ज्यादा निम्न आदमी की तस्वीर हो। उसने बनाया। एक कारागृह में एक आदमी ने सात हत्याएं की थीं, उसका जाकर उसने चित्र बनाया। जब वह चित्र बना रहा था, तब वह कुछ-कुछ हैरान हुआ। यह चेहरा कुछ पहचाना लगता था। जब वह चित्र बनाता रहा, बनाता रहा, तो यह उसको और भी ज्यादा साफ होने लगा। जैसे-जैसे नक्श उसने उभारे, वैसे-वैसे उसे यह चेहरा परिचित लगने लगा।
अंततः एक दिन उससे न रहा गया। उसने पूछा कि क्या मैंने तुम्हें कभी देखा है? वह आदमी एकदम रोने लगा। उसकी आंख से आंसू झर-झर गिरने लगे। उसने कहा, तुम रोते क्यों हो? मैंने तुम्हारा कोई घाव छू दिया? उस आदमी ने कहा कि मैं डर रहा था कि आज नहीं कल शायद तुम पूछोगे। बीस वर्ष पहले तुम ने मेरा चित्र बनाया था। तब उस चित्रकार को याद आई कि बीस वर्ष पहले उसने एक चित्र बनाया था। तब इस तलाश में था वह कि दुनिया में जो श्रेष्ठतम और

सरलतम और भोले से भोला, भोला-भाला चेहरा हो, उसका चित्र बनाना है। और इसी आदमी का चित्र बीस साल पहले बनाया था। और बीस साल बाद वह दुनिया के सब से बुरे आदमी का चित्र बनाने निकला। संयोग की बात, वही आदमी! वह आदमी रोए न तो क्या करे?
दोनों चित्र सब के भीतर हैं। तुम्हारे भीतर भी दोनों चित्र हैं। तुम
पर निर्भर है, क्या तुम उभारोगे। अगर विकृत को, विध्वंस को उभारने की चेष्टा रही तो मूढ़ता है। अगर तुमने अपने भीतर श्रेष्ठ को, सत्य को, सुंदर को उभारना चाहा तो तुम विज्ञ हो। दोनों तुम कर सकते हो। दोनों रास्ते खुले हैं। किसी ने कहीं कोई तुम्हें अवरोध नहीं दिया है। तुम्हारी स्वतंत्रता परम है।
ध्यान रखना, अगर विध्वंस को चुना, मूढ़ता को चुना तो पछताते हुए मरोगे। सारा जीवन जब व्यर्थ जाता है तो पछतावा स्वाभाविक है। अधिक लोग मरते समय मौत के कारण नहीं रोते। मेरा तो जानना यही है कि मौत के कारण कोई भी नहीं रोता। रोते हैं इसलिए कि जीवन व्यर्थ गया और मौत आ गई। जिनके जीवन में सार्थकता आई, वे हंसते हुए विदा होते हैं। उनके लिए मौत एक पूर्णाहुति है। उनके लिए मौत जीवन का चरम शिखर है। वह जीवन के छंद की आखिरी ऊंचाई है। वह जीवन के गीत की आखिरी कड़ी है।
मेरी तखईल का शीराजा-ए-बरहम है वही
मेरे बुझते हुए एहसास का आलम है वही
वही बेजान इरादे वही बेरंग सवाल
वही बेरूह कशमकश वही बेचैन ख्याल
कहीं ऐसा न हो कि मरते वक्त वही बेजान इरादे, वही बेरंग सवाल तुम्हें घेरे रहें। कहीं ऐसा न हो, वही बेरूह कशमकश, वही बेचैन ख्याल तुम्हारी अंतरात्मा को घेरे रहें। कहीं ऐसा न हो--
मेरी तखईल का शीराजा-ए-बरहम है वही
कहीं तुम ऐसा न पाओ कि तुम वही के वही हो। जैसे आए थे, वैसे ही जा रहे हो। कुछ कमाया नहीं, कुछ निखरा नहीं। कुछ हो न सके।
मेरे बुझते हुए एहसास का आलम है वही
कहीं बुझते क्षणों में जब दीए की आखिरी लौ बुझने लगे तो ऐसा न लगे कि मैं वही का वही रह गया। जीवन में कोई गति न हुई, कोई विकास न हुआ। जीवन उठा नहीं, पंख न लगे।
अगर मूढ़ हो तो यही तुम्हारे प्राणों की दशा होगी। अगर था.ेडा सा जीवन में समझ का उपयोग किया तो तुम मृत्यु को भी महोत्सव की तरह पाओगे। तुम्हारे ओंठों पर एक छंद होगा तृप्ति का, तुम्हारे प्राणों में एक सुगंध होगी पहुंच जाने की। तुम्हारे चारों तरफ एक हवा होगी, एक आभा-मंडल होगा कि तुम स्वीकृत हो गए। अस्तित्व ने तुम्हें मान्यता दे दी। यही सिद्ध होने का अर्थ है।

आखिरी सवालः आप कहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति अनूठा और अद्वितीय है; और
यह भी कहते हैं कि व्यक्ति समष्टि से अविच्छिन्न है, दर असल व्यष्टि ही है। क्या इस वक्तव्य पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करेंगे।

दो शब्द ठीक से समझ लोः समाज और समष्टि।
समाज का अर्थ है, आदमियों ने अपनी मूढ़ता, अपने अज्ञान, अपने अहंकार में जो ताना-बाना बुना है। आदमियों की जो भीड़ है, भीड़ का जो मन है, सभी आदमियों के अज्ञान का जो जोड़ है, अहंकार का जो जोड़ है, वह समाज है।
समष्टि से अर्थ है, परमात्मा, अस्तित्व। उसमें आदमी का ही सवाल नहीं है, वृक्ष भी सम्मिलित हैं, चट्टानें भी, चांद-तारे भी! सब कुछ सम्मिलित है। समष्टि का अर्थ है, जो है--सारा का सारा। अगर तुम जो है, उसके साथ एक हो जाओ, तो उसी को बुद्ध धर्म कहते हैं, धम्म कहते हैं। अगर जो है, यह जो सारा अस्तित्व है, इसके साथ तुम्हारा संघर्ष छूट जाए, तुम इसके साथ एक हो जाओ और तल्लीन, डूबे हुए, इसकी मस्ती में मस्त, इसको तुम पी लो, तो तुम परम शांति को, परम आनंद को उपलब्ध हो जाओगे।

दूसरी एक भीड़ आदमियों की है। वह एक दूसरा गिरोह है, जिसने सारे अस्तित्व की फिक्र छोड़ दी है और अपने ही नियम बना लिए हैं। आदमियों की भीड़ ने अपना ही शास्त्र बना लिया है। अपनी ही रीति-रिवाज, परंपरा बना ली है। वह अज्ञानियों का अस्तित्व के ऊपर जबर्दस्ती आरोपण है।
तो जब मैं कहता हूं, व्यक्ति अनूठा है, तो मैं यह कह रहा हूं कि एक व्यक्ति जैसा दूसरा व्यक्ति नहीं है समाज में। प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है। और प्रत्येक व्यक्ति को अनूठे होने की हिम्मत रखनी चाहिए। इतना साहस रखना चाहिए कि भीड़ तुम्हें डुबा न दे। नहीं तो तुम अपनी आत्मा को कभी खोज ही न पाओगे। समाज से मुक्त होने की हिम्मत चाहिए। क्योंकि समाज निम्नतम तल पर जीता है, क्योंकि वह सब का जोड़ है। मूढ़ों की बड़ी संख्या है। वे भी उसमें जुड़े हैं। उनकी ही भीड़ है। उनका ही बहुमत है। वे भी उसमें जुड़े हैं। इसलिए अगर तुम भीड़ के साथ खड़े हो तो तुम्हें निम्नतम के साथ खड़ा रहना पड़ेगा। अगर तुम भीड़ की मानकर चलते हो तो तुम पाओगे कि तुम अपने श्रेष्ठतम की पुकार को नहीं सुन सकते फिर। तुम्हें निकृष्ट की पुकार ही सुननी पड़ेगी।
अद्वितीय होने का अर्थ इतना ही है कि तुम यह जानना कि तुम भीड़ के एक अंग नहीं हो। भीड़ में जीना भला, लेकिन भीड़ से अपनी दूरी भी बनाए रखना, फासला भी बनाए रखना। भीड़ तुम्हें डुबा न ले। तुम अपने अनूठेपन को कायम रखना।
लेकिन अगर इतनी ही बात होती तो यह अनूठापन अहंकार बन जाता। भीड़ से तो अलग करना और समष्टि में डुबाना। समाज से तो मुक्त होना और समष्टि में डूबना।
वो अपने हर कदम पर है कामयाबे-मंजिल
आजाद हो चुका जो तकलीदे-कारवां से
यह जो यात्री-दल है, इसके साथ चलने से जो मुक्त हो चुका, उसकी मंजिल उसके हर कदम पर उसके साथ है। इसके साथ ही अगर तुम्हें चलने की जिद है तो तुम कहीं न पहुंच पाओगे। यह भीड़ कहीं पहुंचती नहीं मालूम होती। यह चलती ही रहती है। लोग बदलते जाते हैं, भीड़ चलती रहती है। तुम नहीं थे, कोई और चल रहा था। एक हटता है, दस आ जाते हैं। भीड़ चलती जाती है।
यह भीड़ कभी नहीं पहुंचती। व्यक्ति पहुंचे हैं, भीड़ कभी नहीं पहुंची। तुमने कभी सुना, कोई भीड़ बुद्धत्व को उपलब्ध हो गई है? कोई भीड़ बुद्ध बन गई हो, मोहम्मद बन गई हो, कबीर, नानक बन गई हो?
जब कोई बनता है, तो व्यक्ति। यह भीड़ तो कभी नहीं कुछ बनती। यह कभी नहीं कहीं पहुंचती। इसकी मंजिल आती ही नहीं। यह यात्री-दल, यात्री-दल ही है। बस, यह यात्रा ही करता है।
इससे थोड़ा मुक्त होना जरूरी है। इसकी चाल में चाल लगाए रखना ठीक नहीं। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम इससे व्यर्थ, नाहक उलझने लगो, लड़ने- झगड़ने लगो। क्योंकि अगर लड़ना-झगड़ना शुरू किया तो भी तुम भीड़ में ही उलझे रहोगे। इसलिए मैं तुम्हें कोई झंझट लेने के लिए नहीं कह रहा हूं कि भीड़ पूरब जाती हो तो तुम पश्चिम जाओ; कि भीड़ पैर के बल चलती हो तो तुम शीर्षासन लगाओ; कि भीड़ जो करती हो, उससे तुम उलटा करो। क्योंकि उलटा करने में भी तुम भीड़ से ही बंधे रहोगे।
तुम भीड़ की फिक्र ही छोड़ दो। तुम भीड़ के प्रति धीरे-धीरे तटस्थ, उदास
हो जाओ, उदासीन हो जाओ। भीड़ ठीक है। उसे जो करना हो, करने दो। उनकी मौज! अगर उन्होंने यही तय किया है तो वे यही करें। तुम भीड़ से अकारण संघर्ष में भी मत पड़ो। अन्यथा वह भी तुम्हें अटकाएगा। क्योंकि जिनसे लड़ना हो उनके पास रहना पड़ता है। दोस्ती करो तो फंसे, दुश्मनी करो तो फंसे।
न दोस्ती करना, न दुश्मनी। किसी को पता ही न चले। तो तुम भीड़ में खड़े- खड़े भीड़ के बाहर हो जाते हो। चुपचाप भीड़ से अपने को अलग कर लेना। तुम समष्टि के साथ अपना संबंध जोड़ो। तुम समग्र के साथ अपना संबंध जोड़ो। विराट के साथ! उसके नियम का पालन करो।
तब तुम हैरान होओगे, कि भीड़ गलत ही सिखाती है, गलत ही करवाती है। भीड़
के सभी सूत्र अहंकार के हैं। भीड़ अगर तुम से कहती है कि विनम्र भी बनो, तो

इसीलिए कहती है ताकि तुम्हारी इज्जत हो। तुमसे कहती है विनम्र बनो, ताकि लोग तुम्हारा आदर करें। यह बड़े मजे की बात है। विनम्रता भी सिखाती है तो आदर पाने के लिए। वह तो अहंकार की तलाश है। अगर तुमसे कहती है कि धन का त्याग करो, तो भी इसीलिए कि त्याग का बड़ा सम्मान है। त्याग की बड़ी संपदा है।
अगर भीड़ तुम्हें कुछ भी सिखाती है तो गलत कारणों के लिए सिखाती है। अगर ठीक भी सिखाती है तो भी गलत कारणों के लिए सिखाती है। इसलिए भीड़ से धीरे-धीरे हटो। विनम्रता सीखो जरूर, लेकिन समाज के जूठे कुएं से मत पीना वह पानी। वहां जहर घोला हुआ है। समष्टि का शुद्ध जल उपलब्ध है, वहां से पीना। वहां सीखना विनम्रता; तब उसमें जहर न होगा। वहां सीखना त्याग; तब उसमें जहर न होगा।
और तब तुम बड़े हैरान होओगे। चीजें बड़ी सरल हैं। उन्हें नाहक कठिन बना दिया है। क्योंकि भीड़ कठिनाई में रस लेती है। जब तक कोई चीज कठिन न हो, भीड़ को रस ही नहीं आता। क्योंकि कठिन हो तभी अहंकार को चुनौती मिलती है। जीवन सरल है। जीवन बिल्कुल सादा है। जीवन में जरा भी उलझाव नहीं है। एकदम सहज है, सरल है, सुगम है।
मगर तुम समष्टि की तरफ ध्यान दो। चांद-तारों पर नजर रखो। आदमी की तरफ थोड़ी पीठ करो। झरनों और सागरों की आवाज सुनो। आदमी की तरफ कान जरा बहरे करो। आदमी के रचे शास्त्रों में बहुत मत उलझो। जब परमात्मा का शास्त्र ही चारों तरफ मौजूद है, उसे ही पढ़ो। जल्दी ही तुम पाओगे कि तुम उस सूत्र को पकड़ने लगे, जिसको बुद्ध सनातन धर्म कहते हैं, एस धम्मो सनंतनो।
प्रकृति के साथ सत्संग करो। झरनों के पास बैठो। फूलों से था.ेडी दोस्ती करो। आकाश में थोड़ा झांको। तो आकाश तुममें भी झांकेगा। फूलों से जरा निकटता बढ़ाओ। तुम्हारे भीतर के फूल भी खिलने लगेंगे। जितने तुम स्वभाव को और समष्टि को खोजने लगोगे, उतना स्वभाव और समष्टि तुम्हें खोजने लगेगी।
यह सारी सृष्टि परमात्मा का मंदिर है। आदमी के बनाए मंदिरों में बहुत पूजा कर चुके। उन्होंने सिर्फ तुम्हें लड़ाया, झगड़ाया, बांटा, काटा। मंदिर मस्जिद से लड़ता रहा, मस्जिद मंदिर से लड़ती रही। बहुत हुआ, अब तुम ऐसे मंदिर को खोजो, जिसका किसी और मंदिर से कोई झगड़ा न हो। यह विराट उसका ही मंदिर है। यह आकाश उस मंदिर का चंदोवा है। और परमात्मा सब जगह प्रतिष्ठित है।
कोई अलग से मूर्ति बनाने की जरूरत नहीं है।
ये सभी मूर्तियां उसी अमूर्त की हैं।
और ये सभी रूप उसी अरूप के हैं।
और ये सभी नाम उसी अनाम के हैं।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 3
पच्चीसवां प्रवचन

पुण्यातीत ले जाए, वही साधु-कर्म

न तं कम्मं कतं साधु यं कत्वा अनुतप्पति।
यस्स अस्सुमुखो रोदं विपाकं परिसेवति।। 61।।

तं च कम्मं कतं साधु यं कत्वा नानुतप्पति।
यस्स पतीतो सुमनो विपाकं परिसेवति।। 62।।

मधुवा मांंति बालो याव पापं न पच्चति।
यदा न पच्चति पापं अथ बालो दुक्खं निगच्छति।। 63।।

मासे मासे कुसग्गेन बालो भुंंथ भोजनं।
न सो संखतधम्मानं कलं अग्घति सोलसिं।। 64।।

सूत्र के पूर्व एक बहुत बुनियादी बात समझ लेनी जरूरी है।
मनुष्य के जीवन को हम दो खंडों में बांट सकते हैंः एक तो मनुष्य का होना, बीइंग, और एक मनुष्य का कर्म, उसका कृत्य, डूइंग।
कृत्य तो ऊपर-ऊपर है, परिधि पर है। जो हम करते हैं, वह हमारा सर्वस्व नहीं है, वह हमारा पूरा होना नहीं है। कृत्य तो ऐसे है, जैसे सागर की सतह पर लहरें। लहरें सागर की हैं माना, लेकिन सागर सिर्फ लहर ही नहीं है। लहरें सागर की हैं, यह भी पूरी बात नहीं--लहरें सागर और हवाओं के बीच के संघर्ष से पैदा होती हैं; हवा की भी हैं उतनी ही जितनी सागर की हैं।
मनुष्य का कर्म दूसरे मनुष्यों के साथ पैदा होता है--हवाओं और सागर के घर्षण से। लेकिन मनुष्य का होना वहां समाप्त नहीं होता; वहां तो शुरू भी नहीं होता, बस परिधि है। तुम्हारे घर के चारों तरफ तुमने जो सीमा पर दीवाल खड़ी कर रखी है, वही कर्म है। तुम्हारा अंतर्गृह, तुम्हारी अंतरात्मा, वहां तो कर्म की कोई भी पहुंच नहीं है। वहां तो कोई तभी पहुंचता है, जब अकर्म को उपलब्ध हो जाए। वहां तो कोई तभी पहुंचता है, जब यह जान ले कि मैं कर्ता नहीं, द्रष्टा हूं।
लेकिन वहां तक पहुंचने के लिए कर्म के जगत से तुम्हें यात्रा करनी होगी। खड़े तो तुम परिधि पर हो; तुम्हें अपने अंतःपुर का तो कोई पता नहीं है। खड़े तो तुम द्वार पर हो, सीमा पर हो; तुम्हें मंदिर के अंतर्गृह का कोई पता नहीं। चलना तो वहां से होगा। इसलिए कर्म के जगत में भी था.ेडा सा कुछ करना जरूरी है। वही पाप और पुण्य का विचार है।
ऐसा कर्म पुण्य है जो तुम्हें कर्म के पार ले जाए।
समझने की कोशिश करना।
ऐसा कर्म पुण्य है जो तुम्हें बांधे न, जो परिधि पर अटकाए न, जो तुम्हें भीतर जाने की सुविधा दे, सीढ़ी बने। और ऐसा कर्म पाप है जो तुम्हें भीतर न जाने दे, द्वार पर अटका ले, सीमा पर उलझा ले।
ऐसा कर्म पुण्य है, जिसके द्वारा तुम्हारी आंख भीतर की तरफ मुड़ जाए,
और ऐसा कर्म पाप है जिससे तुम बाहर की ओर अंधी यात्रा पर निकल जाओ। जो तुम्हें अपने से दूर ले जाए, वही पाप। जो तुम्हें अपने पास ले आए, वही पुण्य।
शास्त्रों ने क्या कहा, इसकी बहुत चिंता मत करना। शास्त्रों से जो पाप और पुण्य का विचार करता है, वह बहुत दूर नहीं जाता। क्योंकि समय बदलता है, परिस्थिति बदलती है। कल के पुण्य आज के पाप हो जाते हैं, और आज के पाप कल के पुण्य हो जाते हैं। अगर तुम्हारे पास कसौटी है तो तुम्हें कभी अड़चन न आएगी। बदलती हुई परिस्थितियों में भी तुम एक कसौटी पर सदा कसते रहनाः जो तुम्हें भीतर ले जाए वह पुण्य है, जो तुम्हें बाहर ले जाए वह पाप है। जो तुम्हें भटकाए, जो तुम्हें अपने से दूर ले जाए, जिसके कारण तुम्हारा तुमसे ही फासला बढ़ता जाए, जिसके कारण ऐसी घड़ी आ जाए कि तुम्हें यह पता ही न रहे कि

तुम कौन हो, तुम कहां से हो, तुम क्यों हो, कहां जाते हो, कुछ भी पता न रहे, तुम्हारी अवस्था पूरी तरह बेहोश हो जाए। जो मूर्च्छा लाए, वह पाप। जो जागृति को सम्हलने में सहायता दे, वह पुण्य।
इसलिए बंधी लकीरों पर मत सोचना, क्योंकि बंधी लकीरों से हल नहीं होगा। तुम पुण्य भी कर सकते हो शास्त्रानुसार, लेकिन अगर वह तुम्हें भीतर नहीं ले जा रहा है तो पाप हो गया।
समझो। तुम दान दे सकते हो। ऐसा कोई शास्त्र पृथ्वी पर नहीं है जो कहता हो, दान देना पुण्य नहीं। दान देना पुण्य है, यह सोचकर तुम दान दे सकते हो। और दान देकर तुम्हारा अहंकार मजबूत कर सकते हो कि मैं दानी हूं, कि मुझ जैसा दानी कोई भी नहीं है। तुम चूक गए। तुमने शास्त्र की बात तो पूरी कर दी, लेकिन तुम जीवन के शास्त्र को न समझ पाए। यह पुण्य भी तुम्हें अपने से दूर ले गया। तुम और अहंकारी बने। तुम और अकड़कर चलने लगे। विनम्रता न आई। निर्दोष भाव न आया। तुम और भी चालाक हो गए। तुमने न केवल इस दुनिया का हिसाब सम्हाल लिया, परलोक का हिसाब भी सम्हाल लिया। तुमने न केवल यहां मकान बना लिए, तुमने परलोक में भी मकान बना लिए। तुमने संसार को ही नहीं सम्हाल लिया, तुमने परमात्मा को भी सम्हाल लिया। तुम अपने से और भी दूर चले गए।
यह दान पुण्य न हुआ, क्योंकि यह दान समझ पर आधारित न था। भय पर आधारित भला हो, लोभ पर आधारित भला हो, कि दान करने से परमात्मा प्रसन्न होगा, कि दान करने से पुण्य होगा, कि पुण्यकर्ता को आनंद के द्वार खुलते हैं, कि पुण्यकर्ता को नरक की पीड़ा नहीं झेलनी पड़ती, कि पुण्यकर्ता दुख से बच जाता है। यह पुण्य लोभ और भय पर खड़ा है।
मैंने सुना है, एक मुसलमान टेलर था, दर्जी था। वह बीमार पड़ा। करीब-करीब मरने के करीब पहुंच गया था। आखिरी जैसे घड़ियां गिनता था, कि रात उसने एक सपना देखा कि वह मर गया और कब्र में दफनाया जा रहा है। बड़ा हैरान हुआ, कब्र में रंग-बिरंगी बहुत सी झंडियां लगी हैं। उसने पास खड़े एक फरिश्ते से पूछा कि ये झंडियां यहां क्यों लगी हैं? दर्जी था, कपड़े में उत्सुकता भी स्वाभाविक थी। उस फरिश्ते ने कहा, जिन-जिन के तुमने कपड़े चुराए हैं, जितने- जितने कपड़े चुराए हैं, उनके प्रतीक के रूप में ये झंडियां लगी हैं। परमात्मा इनसे हिसाब करेगा।
वह घबड़ा गया। उसने कहा, हे अल्लाह! रहम कर! झंडियों का कोई अंत ही न था। घबड़ाहट में अल्लाह की आवाज की, उसमें नींद खुल गई। ठीक हो गया फिर। जब दुकान पर वापस आया तो उसके दो शागिर्द थे जो उसके साथ कपड़ा सीने का काम सीखते थे। उसने कहा कि सुनो, अब एक बात का ध्यान रखना। मुझे अपने पर भरोसा नहीं है। कपड़ा कीमती आ जाएगा तो मैं चुराऊंगा ही। पुरानी आदत समझो। और अब इस बुढ़ापे में बदलना बड़ा कठिन है। तुम एक काम करना, जब भी तुम देखो कि मैं कोई कपड़ा चुरा रहा हूं, तुम इतना कह देना, उस्ताद जी! झंडी! जोर से कह देना, उस्ताद जी! झंडी!
शिष्यों ने बहुत पूछा कि इसका मतलब क्या है? उसने कहा, वह तुम मत उलझो। मेरे लिए काम हो जाएगा।
ऐसे तीन दिन बीते। दिन में कई बार शिष्यों को चिल्लाना पड़ता, उस्ताद जी! झंडी! वह रुक जाता। चौथे दिन लेकिन मुश्किल हो गई। एक जज महोदय की अचकन बनने आई। बड़ा कीमती कपड़ा था, विलायती था। उस्ताद घबड़ाया कि अब ये चिल्लाते ही हैं, झंडी! तो उसने जरा पीठ कर ली शिष्यों की तरफ और कपड़ा मारने ही जा रहा था कि शिष्य चिल्लाए, उस्ताद जी, झंडी! उसने कहा, बंद करो नालायको! इस रंग का कपड़ा वहां था ही नहीं। क्या झंडी-झंडी लगा रखी है? और फिर हो भी तो जहां इतनी झंडियां लगी हैं, एक और लग जाएगी।
ऊपर-ऊपर के नियम बहुत गहरे नहीं जाते। सपनों में सीखी बातें जीवन का सत्य नहीं बन सकतीं। भय के कारण कितनी देर सम्हलकर चलोगे? और लोभ कैसे पुण्य बन सकता है?
तो दान अगर लोभ से दिया, पाप हो गया; क्योंकि लोभ बाहर ले जाता है। दान अगर भय से दिया, पाप हो गया; क्योंकि भय बाहर ले जाता है। अभय लाता है भीतर, अलोभ लाता है भीतर।

इसलिए बंधी लकीरों का सवाल नहीं है। लकीरों पर तो बहुत लोग चलते हैं, पहुंच नहीं पाते। जिंदगी कोई रेलगाड़ी नहीं है कि पटरियों पर दौड़ जाए। बंधी पटरियों पर कोई कभी परमात्मा तक नहीं पहुंचा है। काश, इतना आसान होता!
इसलिए तो तुम्हें इतने लोग दुनिया में दिखाई पड़ते हैं, उनमें से बहुत
से लोग सोच-समझकर पुण्य करते रहते हैं, फिर भी पुण्य होता नहीं।
असली सवाल कृत्य का नहीं है। असली सवाल तो कृत्य तुम्हें पास लाता है
या नहीं! अगर यह कसौटी तुम्हारे भीतर बनी रहे कि जो तुम्हें होने के करीब ले आए वही पुण्य है, तो तुम धीरे-धीरे पाओगे, प्रत्येक कृत्य से ध्यान की किरण निकलने लगी। और तुम्हारे पास एक कसौटी है जिससे तुम तौल लोगे--क्या करना है और क्या नहीं करना है। कृत्य का इतना ही मूल्य है।
कृत्य का अर्थ है, तुम कुछ करोगे। करने में साक्षी-भाव न खो जाए। अगर साक्षी-भाव खो गया तो कर्म बंधन बन जाता है। अगर साक्षी-भाव बना रहा तो कर्म तुम्हें बांधता नहीं, साधारण सा कृत्य रह जाता है। उसका कोई बल नहीं रह जाता। क्योंकि कृत्य को बल तो तुम देते हो, अपने तादात्म्य से। जब तुम किसी कृत्य से जुड़ कर कर्ता हो जाते हो, तभी बल मिलता है कृत्य को। उसी बल से तुम बांधे जाते हो।
पाप की एक दूसरी परीक्षा भी स्मरण रख लो, फिर हम सूत्र में प्रवेश करें।
साधारणतः लोग सोचते हैं, दूसरे को कष्ट देना पाप है। यह नजर भी दूसरे
पर हो गई। यह नजर भी धर्म की न रही। धर्म का कोई प्रयोजन दूसरे से नहीं।
धर्म का संबंध स्वयं से है। स्वयं को दुख देना पाप है।
हां, जो स्वयं को दुख देता है, उससे बहुतों को दुख मिलता है--यह बात और।
जो स्वयं को ही दुख देता है, वह किसको दुख न देगा? जो स्वयं दुर्गंध से भरा है, उसके पास जो भी आएंगे, उनको दुर्गंध झेलनी पड़ेगी। लेकिन वह बात गौण है। तुम दूसरों की फिक्र मत करना। क्योंकि दूसरों की फिक्र से एक बहुत उपद्रव पैदा होता है, वह यह कि तुम भीतर की दुर्गंध तो नहीं मिटाते, बाहर से इत्र-फुलेल छिड़क लेते हो। तो दूसरे को दुर्गंध नहीं मिलती, लेकिन तुम तो दुर्गंध में ही जीयोगे। अंतरात्मा तक इत्र को ले जाने की कोई सुविधा नहीं है। वहां तो जब भीतर की सुवास पैदा होगी, तभी सुवास होगी। वहां धोखा नहीं चलेगा। वहां बाजार से खरीदी गई सुगंधियां काम न आएंगी।
इसलिए दूसरी बात ख्याल रख लो कि पाप का कोई सीधा संबंध दूसरे से नहीं
है, न पुण्य का कोई सीधा संबंध दूसरे से है।
पुण्य का अर्थ हैः तुम्हारे आनंद की, अहोभाव की दशा।
पुण्य का अर्थ हैः तुम्हारा नाचता हुआ, आनंदमग्न चैतन्य।
पुण्य का अर्थ हैः तुम्हारे भीतर की बांसुरी बजती हुई।
तो स्वभावतः दूसरे पर भी वर्षा होगी तुम्हारे संगीत की। यह सहज ही हो जाएगी। इसका हिसाब ही क्या रखना! तुम्हारे भीतर की बांसुरी बजती होगी तो दूसरों पर वर्षा सहज ही हो जाएगी। इसका हिसाब ही नहीं रखना। इसकी बात भूल भी जाओ तो भी चलेगा। पुण्य तुमसे होते रहेंगे।
असली पुण्य अगर हो गया अपने पास आने का, तो शेष सब पुण्य छाया की तरह चले आते हैं। और असली पाप अगर हो गया अपने से दूर जाने का, तो शेष सब पाप छाया की तरह चले आते हैं।
साधारणतः धर्मगुरु तुम्हें समझाते हैं, दूसरे की सेवा करो--पुण्य; दूसरे को दुख दो--पाप। मैं तुमसे यह नहीं कहता। बुद्धों ने तुमसे यह कभी नहीं कहा है। उन्होंने कहा है, ऐसा कृत्य पाप है, जो तुम्हें दुख से भर जाए, जो तुम्हें पछतावे से भर जाए, जिसे करके तुम जार-जार रोओ, जिसे करके तुम चाहो कि अनकिया हो जाए, जिसे करके तुम पछताओ, जिसे करके फिर तुम कभी चैन न पा सको, जिसका कांटा गड़ता ही रहे, गड़ता ही रहे। भला करते वक्त पता न चले-- क्योंकि हम करने की धुन में होते हैं--बाद में पता चले। हो सकता है, करते वक्त पता न चले, क्योंकि कृत्य तब बीज की तरह होता है। थोड़ा समय लगता है, तब फसल पकती है, तब तुम्हें कांटे चुभते हैं। देर-अबेर पता चले, लेकिन एक बात पता चलेगी कि पछताओगे, कि छिपाओगे, कि चाहोगे हजार-हजार मन से कि न किया

होता; कि चाहोगे कि किसी तरह लौट जाएं और अनकिया कर दें। मगर समय में लौटने का कोई उपाय नहीं। जो हो चुका हो चुका; उसे मिटाने का, पोंछने का ऐसा कोई सीधा उपाय नहीं। पछतावा ही रह जाएगा। पाप का स्वाद पश्चात्ताप है; मुंह कडुवाहट से भर जाता है।
तो तुम अपने पर ध्यान रखना। यह तो हो सकता है कि तुम्हारे पाप से दूसरे को दुख न मिले; क्योंकि दूसरा दुख ले या न ले, यह उसकी स्वतंत्रता है। दूसरा राजी हो न राजी हो, यह उसकी मौज है। कोई किसी को दुख जबर्दस्ती नहीं दे सकता। न कोई किसी को सुख जबर्दस्ती दे सकता है। जबर्दस्ती यहां चलती ही नहीं। प्रत्येक के भीतर परम स्वातंष्य है।
तुम अगर किसी बुद्ध पुरुष को गालियां भी दे दोगे तो बुद्ध को तुम दुख
न दे पाओगे। तुमने तो दिया था, बुद्ध तक न पहुंचा। तुमने तो दिया था, उन्होंने न लिया। तो तुम करोगे क्या? तुमने तो लाख कोशिश की थी। तुमने तो बहुत उपाय किए थे। लेकिन सब असफल हो जाता है। बुद्ध पुरुष हंसते ही खड़े रहते हैं।
तो जरूरी नहीं है कि तुम्हारा पाप दूसरे को दुख दे ही। साधारणतः देता है, क्योंकि दूसरे दुख पाने को तैयार हैं। इसे ठीक से समझ लेना। साधारणतः देता ही है। लेकिन देने के कारण तुम नहीं हो, दूसरे लेने को तैयार हैं। तुम न देते तो वे किसी और से ले लेते। हजार दुकानें हैं, तुम्हारी ही दुकान नहीं। कहीं और से खरीद लेते। तुम्हारी गाली न मिली होती तो किसी और से गाली ले लेते। अगर कोई देने वाला न होता तो खुद को दे लेते। मगर दुख तो वे पाते। दुख पाने की उनकी तैयारी थी। दुख पाने की उनकी आकांक्षा थी। तुमने तो सिर्फ सहारा दिया। तुम तो सिर्फ बहाने बने। तुम तो सिर्फ खूंटी बने, कोट तो उन्हें टांगना ही था; कहीं भी टांग लेते, खूंटी न मिलती, द्वार-दरवाजे पर टांग लेते। वे टांगकर रहते।
दूसरे को दुख देना असली बात नहीं है। दूसरे को दुख मिलता है, यह सच है।
वह उसको अपने कारण मिलता है। इसलिए पाप का कोई सीधा संबंध दूसरे से नहीं है। वहां भूल हो गई है। वहां तुम्हारे धर्मगुरु तुम्हें समझाए चले जाते हैं, दूसरे को दुख मत दो। वहां भी नजर दूसरे पर है। संसार की भी नजर दूसरे पर और धर्म की भी नजर दूसरे पर, तो दूसरे से छुटकारा है या नहीं?
नहीं, धर्म का कुछ लेना-देना नहीं दूसरे से। धर्म की नजर अपने पर है। अपने को दुख मत देना, मैं तुमसे कहता हूं, और तुम पुण्यात्मा हो। अपने को दुख मत देना। इस भांति जीना कि अतीत के पछतावे का कारण न रह जाए, लौटकर देखने की जरूरत भी न हो। इस भांति जीना कि कभी मन में ऐसा ख्याल भी न उठे कि कुछ अनकिया करना है, तो तुम्हारा जीवन पुण्य का जीवन है।
अगर तुम्हें लौट-लौटकर पछतावा हो, अगर पीछे लौटकर देखने में डर लगने लगे, अपने ही अतीत से पीड़ा और परेशानी होने लगे, अपने ही अतीत से घबड़ाहट होने लगे, अपना ही अतीत बोझ हो जाए, छाती पर पत्थर की तरह बैठ जाए, अपना ही अतीत गले में फांसी की तरह लग जाए--तो समझना कि पाप किया।
अतीत के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता। करने की कोई जरूरत नहीं है; जागकर वर्तमान को बदल लेना। जो हो गया हो गया, उससे घबड़ाना भी मत; उसको मिटाने की चेष्टा में भी मत लगना, क्योंकि वह व्यर्थ चेष्टा है। तुम तो वर्तमान में जाग जाना और वर्तमान में ऐसे जीने लगना कि तुम्हारा जीवन सुख से भर जाए।
पुण्य सुख की कुंजी है, पाप दुख की। स्वभावतः जब तुम सुखी होते हो, तुमसे दूसरों को सुख मिलता है। क्योंकि दूसरों को तुम वही दे सकते हो जो तुम्हारे पास है। तुम वही बांट सकते हो जो तुम्हारे पास है। हम अपने को ही बांटते चलते हैं। और उपाय भी नहीं है कोई। अगर तुम्हारे भीतर गीत है तो तुम गुनगुनाओगे, किसी के कान पर गीत की कड़ी पड़ेगी। और तुम्हारे भीतर गाली है, तो भी--तो भी बाहर आ जाएगी, किसी के कान पर पड़ेगी। असली सवाल भीतर का है। अपने माजी के तसव्वुर से हिरासां हूं मैं
अपने गुजरे हुए ऐयाम से नफरत है मुझे
अपनी बेकार तमन्नाओं पे शरमिंदा हूं
अपनी बेसूद उम्मीदों पे नदामत है मुझे

मेरे माजी को अंधेरे में दबा रहने दो,
मेरा माजी मेरी जिल्लत के सिवा कुछ भी नहीं
मेरी उम्मीदों का हासिल मेरी काविश का सिला
एक बेनाम अजीयत के सिवा कुछ भी नहीं
तुम भी सोचोगे अतीत के संबंध में, तो ऐसा ही पाओगेः एक बोझ! एक व्यर्थ
का बोझ! टूटी हुई आशाएं! खंडित वासनाएं! व्यर्थ के पाप--न किए होते तो चल जाता। व्यर्थ के झूठ--न बोले होते तो चल जाता। दो दिन की जिंदगी चल ही जाती है। व्यर्थ दिए हुए कष्ट, व्यर्थ चारों तरफ बोए हुए कांटे, अपनी ही राह पर लौट-लौटकर आ जाते हैं। फूल भी बो सकते थे। उतना ही समय लगता है। सच तो यह है, जैसा मैंने जाना, थोड़ा कम समय लगता है फूल बोने में।
फूल बड़ी नाजुक चीज है, जल्दी निकल आती है। कांटा बड़ा कठोर है, बड़ी देर लगती है। कांटों को सम्हालने में आदमी अपना सब गंवा देता है। फूल सरलता से निकल आते हैं। आसान था कि तुमने फूल बो लिए होते। कठिन था कांटों को बनाना। कठिन था कांटों को अपने भीतर ढालना, क्योंकि तुम्हें चुभेंगे भी। कांटों को जो ढालेगा, लहूलुहान होगा। मगर कठिन तुम कर गुजरे। पीछे लौटकर अधिकांश लोगों को बस ऐसा ही प्रतीत होता है--
अपने माजी के तसव्वुर से हिरासां हूं मैं
अपने गुजरे हुए ऐयाम से नफरत है मुझे
और ध्यान रखना, जब तुम्हें अपने अतीत से नफरत हो, तो तुम्हें अपने से नफरत हो जाएगी। तुम्हारा अतीत तुम हो। और ध्यान रखना--
अपनी बेकार तमन्नाओं पे शरमिंदा हूं
और अगर तुम्हारी जिंदगी में पश्चात्ताप है, घाव की तरह शर्म है। जो किया, जो करना चाहा, जो करना चाहते थे न कर पाए, जो हुआ--अगर उस सब के प्रति शर्मिंदगी है, तो तुम आज खिल न सकोगे। इतना बोझ लिए कौन फूल कब खिल पाता है?
अपनी बेसूद उम्मीदों पे नदामत है मुझे
मेरे माजी को अंधेरे में दबा रहने दो
यही हम सब करते हैं, अतीत को अंधेरे में सरकाए जाते हैं, जैसे था ही नहीं। इतना आसान नहीं छुटकारा। क्योंकि तुम अतीत के ही फैले हुए हाथ हो। अंधेरे में किसको हटाते हो? अपने को ही हटाते हो। हटाकर भी हटाया नहीं जा सकता। छिपा सकते हो ज्यादा से ज्यादा।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी ने इसी हटाने और छिपाने की कोशिश में अपने मन के दो खंड कर लिए हैंः एक चेतन और एक अचेतन। अचेतन यानी अंधेरे में हटाया हुआ।
हम सरकाए चले जाते हैं। जैसे घर में इंतजाम कर लेते हैं लोग, कूड़ा- करकट इकट्ठा करने की एक जगह बना लेते हैं, व्यर्थ की चीजों को एक कमरे में फेंकते चले जाते हैं। उस कमरे में जीते नहीं। ऐसा ही मन में भी हमने किया है। जो-जो व्यर्थ है, उसे फेंकते चले जाते हैं। और करीब-करीब व्यर्थ ही व्यर्थ है। ढेर बढ़ता चला जाता है। अपने ही घर में रहने की जगह नहीं रह जाती। अपने ही घर में तुम्हें घर के बाहर रहना पड़ता है। घर तो भरा है कूड़ा- करकट से।
मेरे माजी को अंधेरे में दबा रहने दो
मेरा माजी मेरी जिल्लत के सिवा कुछ भी नहीं
तुमने कभी गौर किया? अतीत को अगर तुम खोलकर रखो किताब की तरह तो हजार-हजार आंसू रोओगे। कहीं भी सकून न मिलेगा। कहीं भी तुम छाया न पाओगे, जहां दो क्षण को विश्राम कर लो। जलते हुए मरुस्थल पाओगे।
मेरी उम्मीदों का हासिल मेरी काविश का सिला
एक बेनाम अजीयत के सिवा कुछ भी नहीं
एक व्यर्थ की दौड़-धूप थी, एक आपाधापी थी। जिसमें किया बहुत, पाया कुछ
भी नहीं। अब करना क्या है? क्या किया जा सकता है?
इसे छिपाओ मत अपने से। इससे भयभीत भी मत होओ। वस्तुतः इसे गौर से देखो। इसका ठीक से विश्लेषण करो। इसके साक्षी बनो। क्योंकि इसको तुम ठीक से देखोगे तो तुम्हारा वर्तमान बदलेगा।

भूलें दोहरती हैं, क्योंकि तुम उन्हें गौर से नहीं देखते। भूलें बार-बार दोहरती चली जाती हैं। तुम वही-वही फिर-फिर करते हो, क्योंकि तुम पाठ नहीं लेते।
अतीत पाठशाला है। उससे अगर एक समझ तुम्हारे जीवन में आ जाए तो सब आ गया, तो जीवन का अर्थ पूरा हुआ। वह समझ यह है कि अपने को दुख देना ही संभव है, दूसरे को दुख देना संभव नहीं है। और जब भी तुमने सोचा, दूसरे को दुख दे रहे हैं, तब तुमने अपने ही दुख के बीज बोए। दूसरे के साथ कुछ भी करना संभव नहीं है। इसलिए जब तुमने यह व्यर्थ की आशा बांधी कि दूसरे के साथ तुम कुछ कर रहे हो, दूसरे को सता रहे हो, दूसरे को मिटा रहे हो, तब तुमने अनजाने अपने को ही मिटाया। तुम्हारे क्रोध में तुम्हीं जले। तुम्हारी घृणा में तुमने अपने भीतर ही घाव बनाए। तुम्हारी ईर्ष्या में तुमने अपनी ही चिता की लकड़ियां सजायीं। लेकिन आदमी ऐसा है!
मैंने सुना है, एक भक्त बहुत दिनों तक भगवान की प्रार्थना करता रहा। कहते हैं भगवान प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे वरदान दिया कि तू जो भी मांगेगा, जब भी मांगेगा, तत्क्षण पूरा हो जाएगा। लेकिन जितना तुझे मिलेगा उससे दुगुना तेरे पड़ोसियों को मिल जाएगा।
सब बात ही खराब कर दी। दिल बैठ गया भक्त का! क्योंकि आदमी बड़ा मकान चाहता है, सिर्फ इसीलिए कि पड़ोसियों के मकान छोटे कर दे। मांगा, लेकिन अब कोई रस न रहा। कहा, सात मंजिल का मकान हो जाए, हो गया। लेकिन बाहर निकलने की हिम्मत न पड़े भक्त की, क्योंकि बगल के मकान चौदह मंजिल के हो गए। सारा गांव चौदह मंजिल का हो गया। यह कोई वरदान हुआ? --भक्त सोचने लगा--यह तो अभिशाप हो गया है। इससे तो हम अपनी तरह से ही कर लेते, वही ठीक था। यह व्यर्थ गई प्रार्थना।
इसे समझना। आदमी और भगवान के नियमों में बड़ा फर्क है। तुम जो मांगते हो, मिल जाएगा। लेकिन भगवान एक शर्त उसमें लगा देगा, और वही शर्त तुम्हारी मांगों को व्यर्थ कर जाएगी। क्योंकि तुमने मांगे ही गलत कारणों से थे। लाखों रुपए मांगे, मिल गए; हीरे-जवाहरात मांगे, मिल गए; लेकिन पड़ोस में दोहरी वर्षा हो गई हीरे-जवाहरातों की।
तुम सोचो उस भक्त की मुश्किल। उसकी जगह अपने को रखकर देखो। आखिर उससे
न रहा गया। उसने कहा, मेरे मकान के सामने चार कुएं बना दे। उसके मकान के सामने चार कुएं बन गए, पड़ोसियों के मकान के सामने आठ-आठ कुएं बन गए। निकलने की जगह ही न रही। उसने कहा, हे भगवान! अब मेरी एक आंख फोड़ दे। उसकी एक आंख फूट गई, पड़ोसियों की दोनों आंखें फूट गयीं। आठ-आठ कुएं! अंधा पूरा गांव। वह राजा हो गया। लोग गिरने लगे कुओं में, मरने लगे। उसकी खुशी वापस लौट आई। लेकिन ध्यान रखना, जब दूसरे की दो आंखें फोड़नी हों तो पहले अपनी एक तो
कम से कम फोड़ ही लेनी पड़ती है। और इस कहानी में कहीं भूल हो गई है, क्योंकि मेरे जाने मामला ठीक उलटा हैः पड़ोसी की एक फोड़नी हो तो अपनी दो फूट जाती हैं।
दूसरे को दुख देने की अकांक्षा में ही तुमने पाप किया है। दूसरे को दुख देकर सुख पाने की आकांक्षा में ही तुमने पाप के बीज बोए हैं। अब उन्हें छिपाओ मत। अब उन्हें उघाड़ो। अब उन्हें खुली आंख के सामने रखो। उनके साक्षी बनो।
अपनी पूरी जिंदगी को शास्त्र समझो; उसमें ही सारा सार छिपा है। और अगर तुमने अपनी भूलें ठीक से देख लीं, तो तुम्हें कहीं और सीखने जाना न पड़ेगा। तुम्हारा गुरु तुम्हारे जीवन में छिपा है; वहीं से तुम्हें बोध की किरण मिलेगी; वहीं से तुम्हारे जीवन में क्रांति शुरू हो जाएगी।
अब ध्यान रखना कि भूल दूसरी मत कर लेना। अब तक दूसरों को दुख देने की भूल की थी; अब कहीं यह मत कर लेना दूसरी भूल कि अब तक दूसरों को दुख दिया, अब दूसरों को सुख दूंगा। यही भूल धार्मिक लोग कर रहे हैं।
मेरी शिक्षा बिल्कुल भिन्न है। मैं कहता हूं, तुमने पहले भी भूल की थी दूसरों को दुख देने की, वह दुख देने की भूल न थी--दूसरों को देने की थी। अब भी तुम वही भूल दोहरा रहे हो--अब तुम दूसरों को सुख देना चाहते हो।

बहुत से लोग दूसरों को सुख देने में ही जीवन गंवा देते हैं। कौन किसको सुख दे पाया? कौन कैसे किसी को सुख दे सकता है? सुख तो साक्षी-भाव से आता है। तुम दूसरे को कैसे साक्षी बना सकते हो? तुम साक्षी बन सकते हो, दूसरा भी बन सकता है। लेकिन कोई किसी को साक्षी कैसे बना सकता है?
तो दूसरे से छुटकारा पुण्य है।
अब हम बुद्ध के सूत्र को समझें।
"वह काम शुभ नहीं, जिसे करके पीछे मनुष्य को पछताना पड़े और जिसके फल को आंसू बहाते और विलाप करते हुए भोगना पड़े।"
वह काम शुभ नहीं! कसौटी? --जिसको करके पीछे पछताना पड़े।
तो जिन-जिन कर्मों को करके तुम पीछे पछताए हो, कृपा करो, आगे अब उन्हें
मत करो। यद्यपि तकलीफ यही है कि पाप का पता पीछे से चलता है; जब हो जाता है तब पता चलता है; पहले से पता नहीं चलता। पहले से पता चलने का कोई कारण भी नहीं है। कांटा जब चुभेगा तभी तो पीड़ा होगी। जब तक चुभे न, पीड़ा कैसे होगी? हाथ जब आग में डालोगे तभी तो जलेगा; हाथ डालोगे ही नहीं तो जलेगा कैसे? माना, इसलिए थोड़े-बहुत पाप करने की संभावना सभी के लिए है। लेकिन उसी आग में बार-बार हाथ डालने का कोई कारण समझ में नहीं आता। एक बार समझ में आता है, दो बार समझ में आता है, तीन बार समझ में आता है। एक बार कांटा चुभ जाता है; परिचय न था, पहचान न थी; दूसरी बार चुभ जाता है, क्योंकि कांटे का रंग-ढंग अलग था; तीसरी बार चुभ जाता है... । लेकिन कितनी बार? रंग-ढंग अलग हो, कांटा तो कांटा है।
लेकिन हम जीवन से सीखते ही नहीं। जीवन में सबसे बड़ा जो चमत्कार दिखाई पड़ता है, वह यही है कि कोई जीवन से सीखता मालूम नहीं होता। इसीलिए तो हमें इतने-इतने सीखने के लिए प्रयास करने पड़ते हैं। और जब तुम जीवन से ही नहीं सीख पाते तो और कहां सीख पाओगे? जीवन से बड़ा गुरु कहां पाओगे? जीवन से बड़ा विद्यापीठ कहां मिलेगा? अगर वहां चूक जाते हो तो तुम कहीं और अब जाओ, चूकते ही रहोगे। जीवन तुम्हें न सिखा पाया तो और तुम्हें कौन सिखा पाएगा? तुम और किसी की तलाश कर रहे हो, जब कि गुरु तुम्हारे प्रत्येक क्षण में और प्रत्येक पल में मौजूद है! अपने कृत्यों की जरा जांच करते रहो।
बुद्ध कहते हैं, "वह काम शुभ नहीं, जिसे करके पीछे मनुष्य को पछताना पड़े और जिसके फल को आंसू बहाते और विलाप करते हुए भोगना पड़े।"
खुद अपने ही हाथों से ऐ हमनफस
चमन का चमन खारो-खस बन गया
अपने ही हाथों से जहां फूल ही फूल हो सकते थे, जहां फुलवारी हो सकती थी, वहां सिर्फ घास-पात और कांटे ही कांटे उगते मालूम पड़ते हैं।
खुद अपने ही हाथों से ऐ हमनफस
चमन का चमन खारो-खस बन गया
पर कुछ बिगड़ नहीं गया है। जब जागे तभी सबेरा। पर जागरण का अर्थ होता हैः जो अब तक किया है, उससे कुछ सीख लो।
बुद्ध का जो मूल सूत्र है, उसमें एक और खूबी है, जो अनुवाद में नहीं है। अनुवादों में बहुत बार बहुत कुछ खो जाता है। अनुवादकों को पता भी नहीं होता, क्योंकि अनुवाद शब्दशः किए जाते हैं। लेकिन बुद्ध जैसे व्यक्ति जब कुछ बोलते हैं तो उनके एक-एक शब्द का कुछ मूल्य होता है। और जब अनुवादक अनुवाद करते हैं तो भाषाकोश से ज्यादा उनकी पहुंच नहीं होती, जीवन के कोश तक उनकी पहुंच नहीं होती।
बुद्ध का वचन है "साधु"--शुभ नहीं।

न तं कम्मं कतं साधु... ।

वह काम "साधु" नहीं। वह जरा उलटा लगता है हिंदी में, इसलिए शुभ अनुवाद करने वालों ने किया है।
"वह काम साधु नहीं, जिसे करके पीछे मनुष्य को पछताना पड़े।"
अब थोड़ा समझने की कोशिश करना। जब हम कहते हैं शुभ तो जोर कर्म पर हो जाता है, और जब हम कहते हैं साधु तो जोर होने पर हो जाता है। तुम असाधु रहकर

भी एक कर्म शुभ कर सकते हो। चोर भी दान दे सकता है, चोर ही देते हैं।
क्योंकि दान देने के लिए लाओगे कहां से? असाधु भी शुभ कृत्य कर सकता है, इसमें कोई अड़चन नहीं। हत्यारा भी मंदिर बना सकता है। कृत्य तो तुम्हारे होने के विपरीत भी हो सकता है।
इसलिए बुद्ध का शब्द बड़ा बहुमूल्य है। वे कहते हैं, साधु; शुभ नहीं।
वे कहते हैं, एक कृत्य कर लिया अच्छा, इससे क्या होगा? अच्छा होना चाहिए तुम्हें भीतर। कृत्यों का हिसाब मत रखो, होने का हिसाब रखो। तुम्हारा होने का ढंग पुण्य रूप हो। तुम्हारे कर्मों की चिंता नहीं है कि तुम अच्छे कर्म करो--तुम अच्छे हो जाओ। जब तक तुम शुभ कर्म करते हो, तब तक जरूरी नहीं है कि तुम शुभ हो गए हो।
अक्सर तो ऐसा होता है कि आदमी भीतर अशुभ होता है, ढांकने के लिए शुभ कर्म करता है। पापी तीर्थयात्रा को जाते हैं। और कोई जाएगा भी क्यों? धोखेबाज, बेईमान मंदिरों-मस्जिदों में प्रार्थना करते हैं। और कोई करेगा भी क्यों?
हम जो भीतर हैं, उससे हम डरते हैं, तो उससे विपरीत का आवरण ओढ़ते हैं। भीतर जितनी कालिख होती है, उतने हम शुभ्र वस्त्रों में उसे ढांकते हैं। भीतर जितनी दीनता होती है, उतने कीमती वस्त्रों में हम उसे ढांकते हैं। किसी को पता न चल जाए भीतर की दरिद्रता। भीतर पतझर हो, तो हम बाहर उधार वसंत की अफवाह फैला देते हैं।
तुम लोगों को गौर से देखना। अक्सर तुम पाओगेः वे जो करते हैं, उससे ठीक उलटे हैं। करना उनकी होशियारी का हिस्सा है। राम-राम जपते हैं, क्योंकि काम उन्हें ऐसे करने हैं कि जब तक वे राम-राम न जपें तब तक पर्दा न पड़ेगा। पर्दा डालते हैं। पर्दे के पीछे सारा खेल चलता है।
बुद्ध का शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। वे यह नहीं कहते कि तुम शुभ कर्म करो, वे कहते हैं, तुम साधु हो जाओ। कर्म तो अपने से सुधर जाएंगे, तुम साधु हो जाओ। तुम्हारा होना शुभ हो, फिर तुम चिंता मत करो।
और यह समझने की बात है कि अगर असाधु शुभ कर्म भी करे तो भी परिणाम अशुभ
ही होगा। साधु अशुभ कर्म कर ही नहीं सकता, लेकिन ऐसा हो सकता है कि तुम्हें अशुभ लगे, लेकिन अशुभ हो नहीं सकता।
साधु का अर्थ ही यह है कि उसके कृत्य छिपाने के लिए नहीं, उसके कृत्य ढांकने के लिए नहीं, उसके कृत्य पाखंड नहीं हैं--उसके कृत्य उसकी भीतर की समस्वरता से पैदा होते हैं। अगर वह मंदिर बनाता है तो गांव में अफवाह फैला देने के लिए नहीं कि मैं धार्मिक हूं। वह मंदिर बनाता है, क्योंकि मंदिर बनाने में उसे आनंद आता है। इससे किसी और का लेना-देना नहीं। मंदिर बनाता है, क्योंकि मंदिर बनाने में ही उसके भीतर एक तृप्ति, एक चैन, एक आनंद का महोत्सव होता है।
आज की सुबह मेरे कैफ का अंदाज न कर
दिले-वीरां में अजब अंजुमन आराई है
ये जमीं खित्त-ए-फिरदौस को शर्माने लगी
गुले-अफसुर्दा से नौखेज महक आने लगी
आज की सुबह शबहाए-तमन्ना की सहर
आज की सुबह मेरे कैफ का अंदाज न कर
जब किसी के जीवन में आनंद उतरता है--कृत्य की तरह नहीं, अस्तित्व की तरह... ।
आज की सुबह मेरे कैफ का अंदाज न कर
फिर तुम अनुमान न कर सकोगे उसकी सुबह का! फिर उसके भीतर जो सूरज उगा है, तुम उसकी कल्पना भी न कर सकोगे।
आज की सुबह मेरे कैफ का अंदाज न कर
फिर उसकी मस्ती का तुम हिसाब न लगा सकोगे। उसके भीतर एक सागर लहराता है, और तुम्हें बूंदों का भी पता नहीं। कैसे तुम अंदाज करोगे? कैसे तुम अनुमान लगाओगे?
आज की सुबह मेरे कैफ का अंदाज न कर
दिले-वीरां में अजब अंजुमन आराई है

कल तक जो उजाड़ रेगिस्तान था हृदय का, वहां एक महोत्सव उतर आया है। दिले-वीरां में अजब अंजुमन आराई है
जिसको उतरता है, वह भी चकित रह जाता है। वह भी भरोसा नहीं कर पाता कि
यह क्या हो रहा है!
दिले-वीरां में अजब अंजुमन आराई है
कोई महोत्सव उतर आया! जहां कभी कोई आवाज न उठी थी, वहां कोई गीत गूंजने लगा। जहां दूर-दूर तक सूखे रेगिस्तान थे, वहां हरियाली उमग आई।
आज की सुबह मेरे कैफ का अंदाज न कर
दिले-वीरां में अजब अंजुमन आराई है
ये जमीं खित्त-ए-फिरदौस को शर्माने लगी
यह जमीन स्वर्ग को शर्माने लगी। स्वर्ग झेंपा-झेंपा है! स्वर्ग ईर्ष्या से भर गया है! जिसके भीतर साधुता आई उसके लिए जमीन स्वर्ग हो गई, उसके लिए यही क्षण परम क्षण हो गया।
ये जमीं खित्त-ए-फिरदौस को शर्माने लगी
गुले-अफसुर्दा से नौखेज महक आने लगी
और जिसे सोचा था कि कुम्हला गया, सूख गया फूल है, उससे नई महक आने लगी! नव-जन्म हुआ! पुनर्जन्म हुआ!
आज की सुबह शबहाए-तमन्ना की सहर
और जिसकी अब तक प्रतीक्षा की थी--प्रतीक्षा ही प्रतीक्षा की थी--वह सुबह आ गई। रात गई, सुबह हुई!
आज की सुबह मेरे कैफ का अंदाज न कर
ऐसे अपूर्व महोत्सव से कोई मंदिर बनाता है। ऐसे अपूर्व महोत्सव से कोई पूजा करता है। ऐसे अपूर्व महोत्सव से कोई किसी की सेवा करता है। ऐसे अपूर्व महोत्सव से भीतर जो सुगंध आई, कोई बांटने निकल पड़ता है।
लेकिन ध्यान रखना, दूसरे पर नजर नहीं है। अब भीतर किरण फूटी है, करोगे
भी क्या? बांटोगे न तो करोगे क्या? भीतर गंध भर गई है, बिखेरोगे न तो करोगे क्या? भीतर मेघ भर गया है, बरसोगे न तो करोगे क्या?
आज की सुबह मेरे कैफ का अंदाज न कर
दिले-वीरां में अजब अंजुमन आराई है
इस महोत्सव को, इस पुण्य की घड़ी को बुद्ध ने "साधु" कहा है। अनुवाद चूक जाता है बात को। अनुवाद तो ठीक हैः वह काम शुभ नहीं।
काम का सवाल ही नहीं है, तुम्हारा सवाल है। यह काम की चिंता के कारण ही
तो सब उपद्रव हुआ है। तो लोग सोचते हैं, अच्छा काम करेंगे तो अच्छे हो जाएंगे। गलत! बात उलटी हैः अच्छे हो जाओगे तो अच्छे काम होंगे। काम भीतर से आते हैं।
इस ख्याल ने कितनों को भरमाया है, कितनों को भटकाया है, कितना भटकाया है, कि अच्छे काम कर लेंगे तो अच्छे हो जाएंगे। तो फिर हम ऊपर से अपने को सुधारते चले जाते हैं। झूठ नहीं बोलते, इसकी कसम ले लेते हैं। झूठ भीतर रह जाता है, हम ऊपर सच बोलने लगते हैं। झूठ भीतर रह जाता है। अहिंसा का व्रत ले लेते हैं, हिंसा भीतर भरी रह जाती है।
एक जैन मुनि हुए। बड़े प्रसिद्ध मुनि थे। नाम था शीतल प्रसाद। आगरा उनका आगमन हुआ। आगरा में एक कवि रहते थे, बनारसी दास। वे उनके दर्शन को गए। कवि थे, मस्त आदमी थे! पूछा कि महाराज, आपका नाम जान सकता हूं? उन्होंने कहा, मेरा नाम शीतल प्रसाद है।
फिर कुछ बात चलने लगी। कवि जरा भुलक्कड़ स्वभाव के थे। थोड़ी देर बाद भूल गए। उन्होंने कहा, महाराज! आपका नाम जान सकता हूं?
मुनि थोड़े नाराज हुए। कहा, कह दियाः शीतल प्रसाद! फिर थोड़ी बात चली। कवि फिर भूल गए। वे जरा भुलक्कड़ थे। उन्होंने पूछा, महाराज! आपका नाम जान सकता हूं? तो शीतल प्रसाद ने डंडा उठा लिया और कहा कि मूरख! कितनी बार बताया कि शीतल प्रसाद! कवि ने कहा, महाराज! ज्वाला प्रसाद होता तो ठीक था।
शीतल प्रसाद जमता नहीं।
ऊपर से ढांक लोगे, भीतर न हो जाएगा। भीतर ज्वाला ही रहेगी, ऊपर से तुम कितने ही शीतल प्रसाद हो जाओ।

नहीं, अहिंसा को ऊपर से मत थोपना, न सत्य को ऊपर से ओढ़ना। यह कोई राम-नाम की चदरिया नहीं है कि ओढ़ ली और भक्त हो गए। तुम वही करते रहोगे। जो तुम कल हिंसा के नाम से करते थे, वही तुम अहिंसा के नाम से करते रहोगे। तुम्हें कुछ और आता ही नहीं। तो तुम्हारी अहिंसा भी हिंसा का माध्यम बन जाएगी। तुम जरा देखो, घर में एकाध आदमी धार्मिक हो जाए दुर्भाग्य से तो सारे
घर को सिर पर उठा लेता है।
एक महिला मेरे पास आती थी, उसने कहा कि मेरे पति को किसी तरह समझाइये,
वे धार्मिक हो गए हैं। मैंने कहा, इसमें क्या अड़चन है? कहा, वे दो बजे रात उठकर जपुजी का जोर-जोर से पाठ करते हैं। सरदार हैं। दो बजे रात! और सरदार! और जपुजी का पाठ! मैंने कहा, बात तो अड़चन की हो गई। तुम उनको लेकर आना। मैंने उनसे पूछा--वे बड़े प्रसन्न थे--उन्होंने कहा, भोर सुबह पाठ करता हूं जपुजी का, इसमें क्या खराबी है? मैंने कहा, दो बजे रात को तुम सुबह कहते हो? अंग्रेजी हिसाब से ठीक ही कहते हैं; बारह बजे के बाद सुबह शुरू हो जाती है।
मैंने कहा, अगर धीरे-धीरे पढ़ो तो कुछ हर्जा है? उन्होंने कहा, मजा ही नहीं आता। पर मैंने कहा, ये बच्चे और पत्नी और पड़ोसी, इनका भी कुछ ख्याल करो! वे बोले, इनको क्या हानि है? ये भी उठ जाएं। और इनको सोए-सोए भी अगर जपुजी का अमृत-वचन इनके कान में पड़ जाता है, तो लाभ ही है।
अब यह हिंसा है। यह जपुजी का पाठ नहीं। इससे तो यह सुबह उठकर फिल्मी गाना गुनगुनाता तो भी अहिंसा होती। अब जपुजी का यह पाठ न हुआ। यह तो कोई भीतरी पागलपन है। और रस यह यही ले रहा है और इसने ढंग ऐसा चुना है धार्मिक, कि कोई एतराज भी नहीं कर सकता।
उसकी पत्नी कहने लगी, हम जिनसे कहते हैं, वे यही कहते हैं कि भई, यह तो धार्मिक बात है, अब इसमें क्या करें? साधु-संतों के पास ले जाते हैं, वे कहते हैं, यह तो ठीक ही कर रहे हैं।
बामुश्किल उनको मैं राजी कर पायाः चार बजे, कम से कम तुम दो से चार पर
तो उतरो। वे बड़े दुख से राजी हुए, जैसे कि स्वर्ग खोया जा रहा है। बामुश्किल उनको राजी कर पाया कि थोड़ा धीरे, इतने जोर से मत चिल्लाओ। क्योंकि परमात्मा बहरा नहीं है, धीरे-धीरे भी सुन लेगा। इनको क्यों कष्ट दे रहे हो--बच्चों को, पत्नी को? मगर उनको लगता ही नहीं कि वे कष्ट दे रहे हैं।
तुम गौर से देखना, जिनको तुम धार्मिक कहते हो, वे ज्यादा क्रोधी हो जाते हैं, ज्यादा अहंकारी हो जाते हैं। छोटा-मोटा शुभ कृत्य कर लेते हैं तो उनकी अकड़ की कोई सीमा नहीं।
एक बात ख्याल रहे, कि तुम न बदलोगे तो कुछ फर्क न होगा। तुम जो जानते हो, तुम जो करते रहे हो, उसे दबाने से कुछ फर्क न पड़ेगा, वह अपने विपरीत नाम के नीचे भी चलता रहेगा।
मेरे गांव में एक मुसलमान रंगरेज था, शायद अब भी है। कोई पांच साल पहले जब मैं गया, तब भी वह जिंदा था। बहुत बूढ़ा आदमी है, सौ के पार उसकी उम्र हो गई है। जब मैं छोटा था तब भी वह कोई सत्तर साल का था। सामने ही उसकी दुकान थी। खुदाबख्श उसका नाम है। बड़ा प्यारा आदमी है! आंखें कमजोर हैं। तो मैं उसके सामने अक्सर उसकी दुकान पर बैठा रहता था। कपड़े उसके रंगाना, उसका रंगने का काम देखना--मुझे रस था। एक बात से मैं बड़ा हैरान होता कि जब भी कोई स्त्रियां आतीं, स्त्रियों का ही आना-जाना था, ओढ़नी, कपड़े, साड़ियां रंगवाने, तो कोई कहती कि इंद्रधनुषी रंग में रंग दो, कोई कहती प्याजी, कोई कहती कि मोरपंखी! मगर वह बूढ़ा कहता कि मेरी बहू-बेटी को तो लाल, हरा, पीला, काला यही रंग सोहेगा, वैसे तुम जो कहो वह रंग रंग दें।
यह मैंने बहुत बार सुना। मैंने उससे पूछा कि बाबा, अब ये लोग कहते हैं
तो तुम इसी रंग में रंग क्यों नहीं देते? उसने कहा, अब तुमसे क्या कहें? मुझे दिखाई पड़ता नहीं। और चार रंग ही मुझे रंगने आते हैं। बहू-बेटियों से इसका कोई लेना-देना नहीं है।
तो जो भी आये, वह कहता कि जंचेगा तो हरा, मेरी बहू-बेटी को। वैसे तुम जो कहो वह रंग दें। कभी-कभी मैंने यह भी देखा कि वह बहू-बेटी जिद्द करती, न

सुनती बूढ़े की; वह कहती कि नहीं, तुम तो प्याजी रंग दो। तो वह कहता, ठीक है।
लेकिन जब रंग के आती ओढ़नी, तो हरी, लाल, पीली... । वह उतने ही रंग जानता था।
तुम अगर हिंसा का रंग ही जानते हो, तुम अहिंसा को भी उसी में रंग लोगे।
तुम अगर क्रोध का ही रंग जानते हो, तुम्हारी करुणा में भी क्रोध ही आ जाएगा।
इस धोखे से बचना। यह पाखंड बड़े से बड़ा खतरा है धार्मिक यात्रा में।
भीतर से बदलो तो बाहर रंग बदल जाते हैं। बाहर से रंग मत बदलना, भीतर कुछ भी नहीं बदलता। क्योंकि भीतर बलशाली हो तुम। बाहर तो परिधि है, कुछ भी नहीं है।
अंतरात्मा से आचरण बदले, तो शुभ, तो साधु। आचरण से अंतरात्मा बदलने की चेष्टा करो, तो साधु नहीं, शुभ भी नहीं; साधु और शुभ होना तो दूर, तुम बुद्धिमान भी नहीं।
"वह काम साधु है जिसे करके पीछे पछताना न पड़े।"
वही काम शुभ है, जिसे करके पीछे मनुष्य को पछताना न पड़े, जिसके फल को प्रसन्न मन से भोगा जा सके। पुण्य आनंद का द्वार है।
जिंदगी में पहचानते रहो, कहां-कहां से आनंद की झलक आती है। उस सभी के जोड़ से तुम जीवन के ताले को खोल पाओगे। जहां से आनंद की झलक मिले, समझना कि वहीं से परमात्मा ने झांका। अगर तुम अपने सारे आनंद का निचोड़ कर लो, तो तुम्हारे हाथ कुंजी आ जाएगी। वेद खोजने से न मिलेगी, उपनिषद तलाशने से न मिलेगी--जीवन को पहचानने से, खुली आंख रखने से!
और ऊपर देखकर धोखे में मत पड़ जाना। लोगों की मुस्कुराहटें देखकर मत सोच लेना कि वे प्रसन्न हैं। अक्सर तो लोग आंसुओं को छिपाने के लिए मुस्कुराए चले जाते हैं। डर लगता है कि अगर न हंसे तो कहीं आंसू न आ जाएं। तुमने देखा, तुम भी जब घर के बाहर जाते हो, कैसे सज-धजकर, टीम-टाम करके!
घर बैठे रो रहे थे, उदास थे, बाहर ऐसे निकलते हो जैसे बहार आ गई! पति-पत्नी लड़ रहे हों, कोई तीसरा घर में आ जाए, एकदम रामराज्य स्थापित हो जाता है। सब झगड़ा बंद, मुस्कुराने लगते हैं।
हम दूसरों को धोखा दे रहे हैं।
हर खिजां के गुबार में हमने कारवाने-बहार देखा है
कितने पश्मीना पोश जिस्मों में रूह को तार-तार देखा है
पश्मीना पोश जिस्मों में रूह को तार-तार देखा है! तुम्हारे वस्त्रों
से कुछ न होगा। तुम कितने ही कीमती वस्त्र ओढ़ लो, तुम्हारी आत्मा अगर तार-तार है, खंड-खंड है, खंडहर है, तो इन कीमती वस्त्रों से तुम चाहे संसार को धोखा दे लो, अपने को न दे पाओगे। और परमात्मा को तो कैसे दे पाओगे, क्योंकि वह तो तुम्हारा होना ही है। तुम्हारे गहरे से गहरे होने का नाम परमात्मा है।
तो इसे जरा जीवन में खोजते रहो।
बुद्ध ने जीवन का विज्ञान दिया है। ये कोई मुर्दा सिद्धांत नहीं हैं
कि तुम्हें दे दिए और तुमने मान लिए और पूरे हो गए। ये कोई मुर्दा पाठ नहीं हैं कि तुमने कंठस्थ कर लिए और तुम तोतों की तरह दोहराने लगे और जिंदगी बदल गई। ये तो जीवंत बातें हैं। बुद्ध जो कह रहे हैं, इसलिए तुम मत मान लेना। मैं कहता हूं, इसलिए मत मान लेना। तुम्हारी जिंदगी जब कहे हां, तभी मानना। और इतना पक्का है कि अगर तुम जिंदगी खोजोगे तो कहेगी, हां। क्योंकि जब बुद्धों ने खोजी, यही पाया।
जिंदगी अलग-अलग नहीं है। जिंदगी का सार एक। जिंदगी का नियम एक। एस धम्मो सनंतनो!
तुम सभी को एक ही जिंदगी सम्हाले हुए है। जिन्होंने खोजा, उन्होंने यही पाया। तुम भी खोजोगे तो यही पाओगे।
और जिस व्यक्ति को एक बार पुण्य की खबर मिल जाए, जिसको एक बार यह समझ में आ जाए कि मेरे ही हाथ में है कि मेरी जिंदगी चमन हो कि खारो-खस हो जाए, फिर--फिर उसके जीवन में कभी खिजां नहीं आती, फिर कभी पतझड़ नहीं आता। फिर उसकी जिंदगी सदा ही वसंत है।
रिंद हूं कब दूसरे का आसरा रखता हूं मैं

आंख में सागर नजर में मैकदा रखता हूं मैं
और फिर तो उसकी आंख में सागर है, नजर में मधुशाला है। फिर तो उसका जीवन
ही मधु से ओतप्रोत है! फिर उसे कहीं और कुछ खोजने की जरूरत नहीं, उसके पास ही सब कुछ है।
रिंद हूं कब दूसरे का आसरा रखता हूं मैं
फिर वह किसी के आसरे की बात नहीं रखता। फिर उसकी जिंदगी किसी पर निर्भर नहीं। न उसका सुख किसी पर निर्भर है, न उसकी शांति किसी पर निर्भर है। वह पहली दफा अपने पैरों पर खड़ा होता है, जिसे आनंद की कुंजी का ख्याल आ जाता है। और कुंजी तुम्हारे चारों तरफ मौजूद है; जरा बटोरना है, टुकड़ों- टुकड़ों में पड़ी है। जरा जमाना है। बहुत कठिन नहीं है। कठिन है ही नहीं। तुम चाहो तो आज जम जाए।
तुमने ही अगर दुख में कुछ अपने को भुलाने की तरकीब बना रखी हो, तुमने अगर तय ही कर रखा हो दुख में रहने का, तब बात अलग। आनंद की घड़ी में तुमने-- अगर कभी भी, क्षणभर को भी ऐसी घड़ी आई हो, क्षणभर को भी ऐसी रोशनी चमकी हो--तो तुमने एक बात पाई होगी कि आनंद की घड़ी में तुम नहीं होते, आनंद होता है। दुख की घड़ी में तुम होते हो, और दुख होता है।
दुख द्वंद्व है। आनंद निर्द्वंद्व है।
फिर से मुझे कहने दो, दुख की घड़ी में तुम होते हो और दुख होता है--दो होते हैं। इसीलिए तो आदमी दुख से हटना चाहता है, मुक्त होना चाहता है। दुख घेरता है दीवाल की तरह, कारागृह बनता है। आनंद की घड़ी में तुम नहीं होते।
ऐसा नहीं होता कि तुम होते हो और आनंद होता है। तुम होते ही नहीं, बस आनंद होता है। जहां तुम नहीं हो वहीं आनंद है। जहां तुम हो वहीं दुख है।
तो सारे पापों का जोड़ अहंकार है और सारे पुण्यों का जोड़ निरहंकार है। कैफे-खुदी ने मौज को किश्ती बना दिया
फिक्रे-खुदा है अब न गमे-नाखुदा मुझे
और जब एक दफा तुम्हें आनंद की झलक मिल गई, और साथ में झलक मिल गई अपने न होने की--जो साथ ही साथ घटती हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं; इधर आनंद, उधर तुम नहीं--जिसको आनंद में झलक मिल गई अपने न होने की... ।
कैफे-खुदी ने मौज को किश्ती बना दिया
फिर अलग से किश्तियों की जरूरत नहीं होती, लहरें ही नावें बन जाती हैं।
फिक्रे-खुदा है अब
और न तब फिर ईश्वर की कोई चिंता रह जाती है।
न गमे-नाखुदा मुझे
न इस बात का कोई दुख होता है कि मांझी साथ नहीं। लहर ही जब नाव बन गई, लहर ही जब ले जाने लगी उस पार, जब डूबने को कोई बचा ही नहीं, तुम मिट ही गए तो डूबने का डर क्या! मांझी की जरूरत क्या!
तुम परमात्मा के द्वार पर बार-बार रोए हो जाकर--दुखों के कारण। परमात्मा की तुम्हें जरूरत पड़ती है--दुखों के कारण। अब यह बड़े मजे की बात है। दुख के कारण तुम हो--अहंकार; और दुख के कारण ही तुम्हारा परमात्मा है। इधर दुख गया, तुम भी गए, परमात्मा भी गया।
इसलिए तो बुद्ध ने परमात्मा की कोई बात नहीं की, चर्चा ही न उठाई।
कैफे-खुदी ने मौज को किश्ती बना दिया
फिक्रे-खुदा है अब न गमे-नाखुदा मुझे
"जब तक पाप पक नहीं जाता, तब तक मूढ़ उसे मधु के समान मीठा समझता है। लेकिन जब पाप पक जाता है, तब मूढ़ दुख को प्राप्त होता है।"
स्वभावतः, जब तुम बीज बोते हो, तब फलों का स्वाद कैसे आए? बीज में तो स्वाद नहीं। बीज में तो फलों की कोई गंध भी नहीं। नीम के बीज बोते हो, निमोली बोते हो, फिर वृक्ष खड़ा होता है, समय लगता है, फिर कडुवे फल आते हैं। जहर लेकर आती है नीम, पत्ती-पत्ती में जहर लेकर आती है। तब तुम घबड़ाते हो। तब तुम चिल्लाते हो, रोते हो। तब तुम यह भूल ही गए होते हो कि यह बीज तुमने ही बोया था। तब कभी तुम कहते हो, यह भाग्य ने क्या दिखाया! कभी तुम कहते हो, परमात्मा! तू क्यों मुझ पर नाखुश है? कभी तुम कहते हो, यह समाज, यह दुनिया,

दुख दे रही है। तुम हजार तरकीबें करते हो किसी और पर दायित्व फेंक देने की। और एक सीधी सी बात नहीं देखते कि तुमने बीज बोया था।
और मैं तुमसे कहता हूं, कि तुम्हें जब भी दुख हो, तो तुम खोज करना कि तुमने इसका बीज कब बोया था। एक बात तो पक्की है कि तुमने बोया था। इसमें कोई शक-शुबहा नहीं। यह तो सुनिश्चित है कि तुम्हारा बोया ही तुम काटते हो, जैसा बोते हो वैसा ही काटते हो।
लेकिन तुम बड़े होशियार हो! बोते तुम हो और जब काटने का वक्त आता है, तब तुम दूसरों को जिम्मेवार ठहराते हो। जिम्मेवारियों के नाम बदलते जाते हैं।
अतीत में, हजारों साल पहले आदमी कहता था, विधि का विधान। अब वह बात पुरानी लगती है, पिटी-पिटाई लगती है, अब कोई इसमें भरोसा नहीं करता। नई रोशनी के लोग कहेंगे, क्या व्यर्थ की बात उठाई? विधि का विधान! कोई विधि का विधान नहीं। लेकिन उनसे पूछो, क्या है? तो मार्क्स के मानने वाले कहते कि समाज, अर्थव्यवस्था! फ्रायड को मानने वाले कहते, समाज, शिक्षा की व्यवस्था, संस्कार! ये तो नाम ही बदले। पुराना नाम भी कुछ बुरा न था। काम तो वही हो रहा है, हम जिम्मेवार नहीं। पहले विधि-विधान, परमात्मा, भाग्य, किस्मत; अब इतिहास, समाज, अर्थशास्त्र, राजनीति! ये सिर्फ नाम बदले हैं, बात तो वही रही कि मैं जिम्मेवार नहीं। एक बात सुनिश्चित रही इन सब में कि मैं जिम्मेवार नहीं।
और धार्मिक व्यक्ति का जन्म तभी होता है, जब तुम स्वीकार करते हो कि मैं जिम्मेवार हूं। जिस दिन तुमने स्वीकार किया कि मैं जिम्मेवार हूं, तुम्हारी जिंदगी में क्रांति आई, इंकलाब आया, अब कोई रोक न सकेगा। क्योंकि अब तुम खुद मालिक हुए। तुमने स्वीकार कर लिया, मैं जिम्मेवार हूं, तो इसका अर्थ हुआ कि अब तुम चाहो तो बदल दो। अतीत को तो बदलने का सवाल नहीं, भविष्य बदला जा सकता है। और भविष्य बदल गया तो अतीत भी बदल जाएगा; क्योंकि जो अभी भविष्य है, कल अतीत हो जाएगा। वर्तमान बदला जा सकता है। कम से कम अब तो बीज न बोओ जहर के।
"जब तक पाप पक नहीं जाता, तब तक मूढ़ उसे मधु के समान मीठा समझता है... ।" समझता है बस। मान्यता है उसकी। और कितनी बार आदमी दोहराता है! चकित होना पड़ता है! जब तुम भी कभी जागोगे तो हैरान होओगे, तुमने उन्हीं-उन्हीं भूलों को कितना दोहराया! तुम कोई ग्रामोफोन के टूटे रिकार्ड हो कि सुई फंस गई और दोहराए चली जा रही है एक ही लकीर।
"यदि मूढ़ महीने-महीने कुश की नोक से भोजन करे तो भी वह धर्मज्ञों के सोलहवें भाग के बराबर नहीं हो सकता।"
अब बुद्ध कहते हैं कि यह भी तुम्हें समझ में आ जाए कि मैं ही जिम्मेवार हूं, मैंने ही पाप के बीज बोए, और मैंने ही पाप के फल काटे और दुख काटा, और दुख भोगा--तो एक खतरा है, वह खतरा यह है कि कहीं तुम दूसरी अति पर न चले जाना। अभी तक भोगी थे, पाप के बीज बोते थे; अब कहीं त्यागी मत हो जाना। अति पर न चले जाना।
बुद्ध का मार्ग मज्झिम निकाय है। बुद्ध ने कहा है, मेरा मार्ग बीच का है, अतियों से बचाने वाला है।
भोगी एक अति पर है, त्यागी दूसरी अति पर है। बुद्ध उसे ही धर्मज्ञ कहते हैं, जो मध्य में खड़ा हुआ, जिसने अतियां त्याग दीं।
"यदि मूढ़ महीने-महीने कुश की नोक से भोजन करे... ।"
जैसा कि मूढ़ कर रहे हैं। कोई उपवास कर रहा है, उपवास के हिसाब रख रहे हैं। पहले भोजन में अति की थी, उसका दुख पाया था, अब उपवास करके दुख पा रहे हैं। कुछ ऐसा लगता है कि दुख पाने की तुमने जिद्द ही कर रखी है। या तो ज्यादा खाकर लोग दुख पाते हैं, तो शरीर बेडौल होता चला जाता है, बोझ बढ़ता चला जाता है, जीवन-ऊर्जा मंद होती चली जाती है, व्यर्थ का बोझ ढोते हैं। तुम गरीब आदमी को बोझ ढोते देखते हो, तुम्हें दया आती है। तुमने अमीर आदमी को बोझ ढोते नहीं देखा, क्योंकि उसके सिर पर बोझ नहीं है, उसके शरीर में है। यह ज्यादा खतरनाक बोझ है। गरीब तो जाकर थोड़ी दूर इसको गिरा देगा,

यह अमीर इसको कहीं न गिरा पाएगा, यह इसको ढोता ही रहेगा। यह वजन इसके भीतर चला गया है।
तो एक दफा लोग ज्यादा खाकर दुख पाते हैं; फिर कभी उन्हें थोड़ा होश आता
है तो दूसरी अति पर चले जाते हैं।
इसलिए एक बड़े मजे की बात है। तुम इससे परीक्षा कर सकते हो। जिस धर्म
और जिस समाज में ज्यादा भोजन की सुविधा होगी, उसमें उपवास का महत्व होगा। क्योंकि एक अति लोग करेंगे तो दूसरी अति की जरूरत पड़ेगी।
अब जैन हैं, इस देश में संपन्न से संपन्न समाज है उनका; उपवास की महत्ता है। गरीब आदमी का जब धर्म-दिन आता है तो उस दिन वह मिष्ठान बनवाता है। अमीर आदमी का जब धर्म-दिन आता है तो वह उपवास करता है। गरीब आदमी का जब धर्म-दिन आता है तो नए कपड़े खरीद लेता है!
मुसलमान को देखा ईद में, नए कपड़े पहनकर और--सालभर न बदले हों कपड़े, पर
ईद के दिन--खुशी का दिन है। जैनियों को देखा, उनके जब पर्युषण आते हैं तो कपड़े-लत्ते उतारकर साधु-संन्यासी जैसी चदरिया ओढ़कर चले मंदिर की तरफ-- उपवास करना है!
आदमी अतियों में डोलता है। भोग की एक अति है, त्याग की एक अति है।
लेकिन तुम्हारी मूढ़ता अगर त्याग से ही मिटती होती तब तो बड़ा आसान मामला था--उपवास कर लेते और ज्ञानी हो जाते। मूढ़ता का क्या संबंध है उपवास से? मूढ़ता ऐसे नहीं टूटती। तुम अगर मूढ़ हो और त्यागी हो गए तो मूढ़ त्यागी रहोगे, बस इतना ही फर्क पड़ेगा। पहले मूढ़ भोगी थे, अब मूढ़ त्यागी हो जाओगे। मूढ़ता छोड़ो! त्याग और भोग का सवाल नहीं है। भोगी हो, मूढ़ हो, तो दो उपाय हैंः या तो भोग को बदलकर त्याग कर दो, मूढ़ तुम भीतर रहोगे।
मैंने बहुत त्यागी देखे, लेकिन बुद्धिमान मुझे नहीं कोई दिखाई पड़ा। ठीक वैसे ही मूढ़ मिले। जैसे मूढ़ बाजार में बैठे हैं वैसे ही मूढ़ मंदिर में बैठे हैं। वही के वही हैं, कुछ फर्क नहीं हुआ है। एक अति से दूसरी अति पर चले गए हैं।
असली क्रांति भोग को त्याग में बदलने में नहीं है, मूढ़ता को बोध में बदलने में है। इसे मैं फिर से तुमसे कह दूं। अगर तुम भोग में खड़े हो तो दो स्थितियां हैं--तुम मूढ़ हो और भोग में खड़े हो; मूढ़ न होते तो भोग में खड़े ही क्यों होते--अब तुम्हारे लिए दो उपाय हैं। एक बिल्कुल सुगम है कि भोग को छोड़ दो, त्यागी हो जाओ। अब तक स्त्रियों के पीछे भागे थे, अब स्त्रियों से भागने लगो--मगर भागो! इधर नहीं तो उधर, लेकिन भाग-दा.ैड जारी रखो। अभी तक धन के लिए दीवाने थे, धन इकट्ठा करते, हिसाब लगाते-लगाते जिंदगी गई--अब त्याग का हिसाब रखो कि कितने लाख त्याग दिए। भागो, छोड़ो। अभी पकड़ते थे, अब छोड़ो! लेकिन दोनों हालतों में तुम्हारी मूढ़ता वहीं की वहीं है।
मूढ़ता छोड़ने-पकड़ने से नहीं जाती, मूढ़ता जागने से जाती है। मूढ़ता भागने से नहीं जाती, जागने से जाती है। भागो नहीं, जागो! उस जागने को ध्यान कहते हैं। उस जागने को होश कहते हैं, अमूर्च्छा कहते हैं, अप्रमाद कहते हैं।
"यदि मूढ़ महीने-महीने कुश की नोक से भोजन करे तो भी वह धर्मज्ञों के सोलहवें भाग के बराबर नहीं हो सकता।"
बुद्ध तो यह कह रहे हैं कि उसका कुछ फायदा नहीं, कुछ पा नहीं पाता वह। धर्मज्ञ कौन है? जिसने भीतर की ज्योति को जगा लिया; जिसने जीवन के नियम को पहचान लिया; जिसने जागने में थोड़ी सी स्थिति सम्हाल ली; जिसकी लौ अकंप जलने लगी, अब हिलती नहीं, डुलती नहीं, डांवाडोल नहीं होती।
यूं समझ में अजमते-पीरे-मुगां क्या आएगी
पहले जाहिद रूशनासे-शीशा-ओ-सागर बने
फोड़ लेना सर का समझा जाएगा जोफे-जुनूं
बात तो जब है कि हर दीवारे-जिंदां दर बने
तुम जेलखाने में बंद हो, अब यह कोई तरकीब न हुई कि तुम अपने सिर को दीवार से टकराकर फोड़ लो। यह कोई जेल से बाहर निकलने का रास्ता न हुआ।
फोड़ लेना सर का समझा जाएगा जोफे-जुनूं
यह तो पागलपन की कमजोरी समझी जाएगी।

बात तो जब है कि हर दीवारे-जिंदां दर बने
बात तो तब है जब दीवाल को दरवाजा बनाना तुम सीख जाओ। सिर फोड़ लेने से क्या होगा?
पहले भोगी की तरह पड़े रहे, अब त्यागी की तरह सिर फा.ेड रहे हो। सिर फोड़ने से कहीं दीवालें टूटी हैं? सिर ही फूट जाएगा। दरवाजा खोलना है--बोध चाहिए, समझ चाहिए, होश चाहिए। दीवाल को दरवाजा बनाना है।
और ध्यान रखना, जहां दीवाल है वहीं दरवाजा है। जहां-जहां तुमने दुख पाया है, वहीं-वहीं सुख पाया जा सकता था। जहां-जहां तुमने दुख के बीज बोए, वहीं-वहीं फूलों के बीज, सुख के बीज भी बोए जा सकते थे। अभी भी कुछ बिगड़ नहीं गया है, लेकिन होश चाहिए। बुद्ध का सारा जोर होश पर है।
गरूरे-खुल्द जाहिद तर्के-दुनिया के भरोसे पर
संभल ऐ बेखबर क्यों खानुमा बर्बाद होता है
दुनिया छोड़ने के आधार पर अगर तुमने सोचा हो कि तुम परमात्मा को जान लोगे, तो असंभव। हां, तुम्हारा अहंकार शायद और मजबूत हो जाए। गरूरे-खुल्द जाहिद--तुम्हारे वैराग्य से चाहे तुम्हारा गरूर और बढ़ जाए। तर्के-दुनिया के भरोसे पर--दुनिया छोड़ने के भरोसे पर, तुम यह मत सोचना कि तुम परमात्मा को पा लोगे।
परमात्मा यहीं छिपा है। उसे खोजना है। मजा तो तब है, जब दीवार दर बने। जहां-जहां छिपा है, वहीं-वहीं पर्दा उठाना है। तुममें भी छिपा है। अगर तुम आंख बंद करो और विचारों का पर्दा उठा लो तो वहीं जाहिर हो जाए।
संभल ऐ बेखबर क्यों खानुमा बर्बाद होता है
त्यागी सिर्फ बर्बाद हो रहा है। भोगी भी बर्बाद हो रहा है। भोगी के और ढंग हैं बर्बाद होने के, त्यागी के और ढंग हैं, लेकिन दोनों बर्बाद होते हैं। क्योंकि दोनों मूढ़ता पर ही खड़े हैं।
मेरे पास ऐसे संन्यासी आ जाते हैं कभी, जो कि चालीस साल से त्यागी हैं, घर-द्वार छोड़ दिया। उन्हें देखकर दया भी आती है, हंसी भी आती है। चालीस साल से दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं, दीवालों से सिर टकरा रहे हैं, अब मरने के करीब आ गए हैं। वे मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि ध्यान कैसे करें! चालीस साल तुम क्या कर रहे थे? वे कहते हैं, त्याग किया।
और ध्यान चालीस साल के त्याग करने से भी उपलब्ध न हुआ? चालीस जन्मों में भी उपलब्ध न होगा। और ध्यान उपलब्ध हो जाए तो त्याग ऐसे ही उपलब्ध हो जाता है, जैसे आदमी के पीछे उसकी छाया चली आती है। और तब त्याग में एक संयम होता है, अति नहीं होती; तब त्याग में एक सौंदर्य होता है; तब त्याग में एक प्रफुल्लता होती है; तब त्याग तुम्हें कुम्हलाता नहीं, खिलाता है।
आज की सुबह मेरे कैफ का अंदाज न कर
दिले-वीरां में अजब अंजुमन आराई है
ये जमीं खित्त-ए-फिरदौस को शर्माने लगी
गुले-अफसुर्दा से नौखेज महक आने लगी
आज की सुबह है शबहाए-तमन्ना की सहर
आज की सुबह मेरे कैफ का अंदाज न कर
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 3
छब्बीसवां प्रवचन

मौन में खिले मुखरता

पहला प्रश्नः हर बार बोलने के बाद ऐसा अनुभव होता है कि मैंने बेईमानी की; चुप रहने पर ही अपने साथ ईमानदारी, पूरी ईमानदारी करती मालूम होती हूं। ऐसा क्यों है?

शुभ लक्षण है, चिंता की कोई बात नहीं है।
बोलते ही दूसरा महत्वपूर्ण हो जाता है। बोलते ही मन वही बोलने लगता
है जो दूसरे को प्रीतिकर हो। बोलते ही मन शिष्टाचार, सभ्यता की सीमा में आ जाता है। बोलते ही हम स्वयं नहीं रह जाते, दूसरे पर दृष्टि अटक जाती है। इसलिए बोलना और ईमानदार रहना बड़ा कठिन है। बोलना और प्रामाणिक रहना बड़ा कठिन है।
अच्छा है, इतनी समझ आनी शुरू हुई। शुभ लक्षण है। ज्यादा से ज्यादा चुप रहना उचित है। पहली कला चुप होने की सीखनी पड़ेगी। उतना ही बोलो जितना अत्यंत अनिवार्य हो। जिसके बिना चल जाता हो उसे छोड़ दो, उसे मत बोलो। और तुम अचानक पाओगे कि नब्बे प्रतिशत से ज्यादा तो व्यर्थ का है, न बोलते तो कुछ हर्ज न था, बोल के ही हर्ज हुआ।
बड़े विचारक पैस्कल ने कहा है कि दुनिया की नब्बे प्रतिशत मुसीबतें कम
हो जाएं, अगर लोग थोड़े चुप रहें। झगड़े-फसाद कम हो जाएं, उपद्रव कम हो जाएं, अदालतें कम हो जाएं, अगर लोग थोड़े चुप रहें।
जमीन का बहुत सा उपद्रव बोलने के कारण है; बोले कि फंसे। बोलने से एक सिलसिला शुरू होता है।
सारी बात मौन सीखने की है। मौन प्रामाणिक होगा। क्योंकि मौन में दूसरे की मौजूदगी नहीं है; झूठे होने की कोई जरूरत नहीं है। बोलने में झूठ बोला जाता है। मौन में झूठ का क्या सवाल है? मौन तो सच होगा ही। जब चुप हो, तो दूसरे से मुक्त हो; जब बोलते हो, दूसरे की परिधि में आ गए। जैसे ही बोले कि समाज शुरू हुआ। अकेले हो, चुप हो, तो बस आत्मा है।
पशु हैं, पक्षी हैं, पौधे हैं--उनका कोई समाज नहीं। मनुष्य का समाज है, क्योंकि मनुष्य बोलता है। भाषा से समाज का जन्म हुआ। गूंगों का क्या समाज होगा? और अगर होगा तो वह भी किसी ढंग के बोलने पर निर्भर होगा, इशारों पर निर्भर होगा।
जब तुम नहीं बोलते, तब तुम एकांत में अकेले हो गए। भरे बाजार में, भीड़ में खड़े हो, नहीं बोलते--हिमालय के शिखर पर पहुंच गए। जिसने मौन की कला जान ली वह भीड़ में ही अकेले होने की कला जान लेता है। वह अपने में डुबकी लगाने लगता है। वहां प्रामाणिकता का राज्य है। वहां सत्य का सौंदर्य है। झूठ होने का कोई कारण नहीं है। वहां बस तुम हो।
जैसे तुम अपने स्नानगृह में प्रामाणिक हो जाते हो, वस्त्र अलग कर देते हो--वहां तुम हो। लेकिन अगर तुम्हें पता चल जाए कि कोई चाबी के छेद से झांक रहा है, तत्क्षण तुम झूठ हो जाते हो; तत्क्षण तौलिया लपेट लेते हो; तत्क्षण विचारने लगते होः कौन है? किसी ने देखा? क्षणभर पहले गुनगुनाते थे गीत, कोई फिक्र न थी, क्योंकि कोई सुनने वाला न था।
स्नानगृह में सभी गायक हो जाते हैं। ऐसे दूसरों के सामने कहो, गाओ, तो झिझकते हैं, शरमाते हैं। दूसरे की मौजूदगी शर्म पैदा करती है, झिझक पैदा करती है। क्योंकि दूसरा क्या सोचेगा, यह चिंता पैदा होती है। कहीं मैं दूसरे को राजी न कर पाया, गाया और कहीं दूसरे ने हंसा, मखौल हुई, मजाक हुआ... !
तुमने ख्याल किया, स्नानगृह में दर्पण के सामने तुम फिर से छोटे बच्चे हो जाते हो, मुंह बिचकाते हो, अपने पर ही हंसते भी हो। खो गए बीच के दिन, फिर तुम छोटे बच्चे हो गए, लौट आई एक प्रामाणिकता, एक सच्चाई। बाहर निकलते ही तुम दूसरे आदमी हो जाते हो। घर में तुम एक होते हो, बाजार में तुम और भी दूसरे हो जाते हो।

जितनी दूसरों की और परायों की मौजूदगी बढ़ती चली जाती है, उतना ही जाल बड़ा होता जाता है, उतनी ही उलझन होती जाती हैः हजारों आंखों को राजी करना है; हजारों लोगों को प्रसन्न करना है। इसलिए तो इतना पाखंड है।
वही व्यक्ति सच्चा हो सकता है, जिसने इसकी चिंता छोड़ दी कि दूसरे क्या सोचते हैं। मगर उस आदमी को हम पागल कहते हैं, जो इसकी चिंता छो.ड़ देता है कि दूसरे क्या कहते हैं। इसलिए सत्य के खोजी के जीवन में ऐसा पड़ाव आता है जब उसे करीब-करीब पागल हो जाना पड़ता है; फिक्र छोड़ देता है कि दूसरे क्या कहते हैं, हंसते हैं, मजाक करते हैं। ऐसे जीने लगता है जैसे दूसरे हैं ही नहीं। ज्यां पाल सार्त्र का बड़ा प्रसिद्ध वचन हैः दूसरा नरक है, दि अदर इज हेल। अकेले में तो आदमी स्वर्ग में हो जाता है। दूसरे की मौजूदगी तत्क्षण उपद्रव शुरू कर देती है। दूसरे की मौजूदगी तनाव पैदा करती है। तुम बेचैन हो जाते हो; तुम केंद्र से डिग जाते हो; भीतर सब हलन-चलन शुरू हो जाता है। स्वाभाविक है कि बोलते ही लगे कि बेईमानी हो गई।
तो पहले तो मौन को साधो। पहले तो अपनी ऊर्जा को मौन में उतरने दो, गहराने दो मौन को। कभी ऐसी घड़ी भी आएगी--जरूर आती है; न आए तो कुछ हर्ज नहीं है, पर आती है।
महावीर बारह वर्ष मौन रहे, फिर लौट आए बस्ती में जंगलों से वापस, फिर बोलने लगे। बुद्ध छह वर्ष तक एकांत में रहे, फिर लौट आए। जब भी जीसस को ऐसा लगता कि लोगों के संग-साथ ने धूल जमा दी, तो अपने दर्पण को झाड़ने वे एकांत में पहाड़ पर चले जाते। जब देखते कि दर्पण फिर शुद्ध हो गया, फिर निर्मल धारा बहने लगी चैतन्य की, धूल-धवांस न रही, फिर निर्दोष हो गए, फिर बालपन पा लिया, फिर लौट गए मूलस्रोत की तरफ, तब लौट आते। शिष्यों ने पूछा भी है उनसे कि आप क्यों मौन में चले जाते हैं?
जब वाणी थका दे, जब बोलना ज्यादा बोझ बन जाए, तो मौन में उतर जाना ऐसे
ही है, जैसे दिनभर का थका हुआ आदमी रात सो जाता है।
जब दूसरों की मौजूदगी से तुम ऊब जाओ, परेशान हो जाओ, तो उचित है कि आंख बंद कर लो और अपने में खो जाओ। वहां से पाओगे ताजगी, क्योंकि तुम्हारे जीवन का स्रोत वहीं छिपा है; वह दूसरे में नहीं है, वह तुम्हारे भीतर है। तुम्हारी जड़ें तुम्हारे भीतर हैं।
इसलिए तुम अक्सर पाओगे कि जो लोग जिंदगीभर दूसरों के, दूसरों के साथ
ही गुजारते हैं, वे आदमी बिल्कुल उथले और ओछे हो जाते हैं। राजनेता की वही तकलीफ है। वह ओछा हो जाता है, छिछला हो जाता है। उसकी कोई गहराई नहीं रह जाती। क्योंकि जिंदगीभर भीड़। और भीड़ भी ऐसी ही नहीं; ऐसी भीड़ जिसको राजी करना है; ऐसी भीड़ जिसके सामने भिक्षा का पात्र फैलाना हैः मत के लिए, वोट के लिए; ऐसी भीड़ जिसकी तरफ हर वक्त नजर रखनी है।
कहते हैं कि राजनेता अपने अनुयायियों का भी अनुयायी होता है। क्योंकि
वह देखता रहता है कि लोग कहां जाना चाहते हैं, पीछे लौट-लौटकर देखता रहता है कि लोग कहां जाना चाहते हैं; जहां लोग जाना चाहते हैं उसी तरफ वह चल पड़ता है। लगता ऐसा है कि वह लोगों के आगे चल रहा है, लोगों का नेता है। असलियत बिल्कुल और है। असली नेता वही है जो ठीक से पहचान लेता है, समय के पहले, कि लोग किस तरफ जाएंगे। वही नेता पराजित हो जाता है, जो लोगों को नहीं पहचान पाता कि वे कहां जाना चाहते हैं, और अपनी धांकता है; जल्दी ही पाता है, अकेला रह गया।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन गधे पर बैठकर जा रहा था, गांव के बाजार से गुजर रहा था। किसी ने पूछा, कहां जा रहे हो? उसने कहा, यह मत पूछो! मेरे गधे से पूछो। क्योंकि पहले तो मैंने इसे बहुत चलाने की कोशिश की, उसमें भद्द होती थी। कहीं रास्ते में अड़ जाए, भीड़-भड़क्का इकट्ठा हो जाए, लोग हंसने लगें, ठिठक जाए, अटक जाए। आखिर मैंने तरकीब सीख ली। मैंने राजनीति सीख ली। अब यह जहां जाता है हम इस पर बैठे रहते हैं। अगर यह ठिठकता है तो हम ऐसा बहाना करते हैं कि हम ही रोके हुए हैं; चल पड़ता है--हमने चलाया। अब हम इस पर ध्यान रखते हैं। तब से कोई फजीहत नहीं होती, कहीं कोई झंझट नहीं आती।
जो लोग राजनीति में रहेंगे, धीरे-धीरे पाएंगे, उनका जीवन बिल्कुल ही दूसरों के हाथों में पड़ गया। उनका अपना कोई जीवन ही न रहा। कह सकें कुछ

अपनी आत्मा, ऐसी कोई चीज उनके पास बचती नहीं। यद्यपि राजनेता कहते हैं, अंतर्वाणी, आत्मा की आवाज! आत्मा ही नहीं है, आत्मा की आवाज कहां से होगी! वह आत्मा की आवाज भी भीड़ की आवाज है। भीड़ से पहले पहचान लेते हैं कि भीड़ कहां जाती है, यह उनकी कुशलता है। भीड़ को भी पता नहीं चलता कि कहां जाना चाहती है; उसके पहले जो पहचान ले, वही नेता है। तब ढोंग बना रहता है।
जो व्यक्ति सारी जिंदगी भीड़ में गुजारेगा, दूसरे पर नजर अटकाकर गुजारेगा, वह पाएगा कि धीरे-धीरे भीतर जाने के द्वार अवरुद्ध हो गए। क्योंकि जिन रास्तों का हम उपयोग नहीं करते, वे टूट जाते हैं, बिखर जाते हैं। जिन रास्तों का हम उपयोग नहीं करते, वे रास्ते हमें भूल ही जाते हैं, उनके नक्शे हमें याद नहीं रह जाते।
और जिसने दूसरे को ही राजी करने में सारी जिंदगी का रस जाना, वह परिधि
पर जीता है। जैसे तुम पड़ोसी को राजी करने के लिए हमेशा अपने मकान की चारदीवारी के पास खड़े होकर उससे बातें करते रहो, ठीक ऐसा ही जब तुम दूसरे को राजी करने में लगे हो, तब अपने से बाहर रहना पड़ता है।
मौन तुम्हें अपने भीतर लाएगा। अपने भीतर आओ। वहीं परम राज्य है जीवन का। वहीं स्रोत हैं अनंत। वहीं से जन्म हुआ है, वहीं मौत में डूब जाओगे। वहीं से सूर्य उगा है, वहीं अस्त होगा। उसमें बार-बार डुबकी लो। जब भी तुम डुबकी लगाकर लौटोगे वहां से, तुम पाओगे, फिर ताजे हुए! फिर जीवन की नई संपदा मिली! फिर नई शक्ति का आविर्भाव हुआ! थकान गई, उदासी गई, चिंता गई! जैसे कोई स्नान करके लौटता है तो शरीर शीतल हो जाता है, शांत हो जाता है, ऐसे ही जब कोई भीतर से होकर वापस आता है, मौन में स्नान करके लौटता है, तो समस्त अस्तित्व, समस्त व्यक्तित्व शांत और मौन हो जाता है, आनंदित हो जाता है। तुमने फिर से रस पा लिया! वृक्ष को फिर पानी मिल गया! जड़ों को फिर भूमि मिल गई! सब फिर हरा हो गया! फिर से आ गया वसंत!
गहरी नींद से यही तो लाभ होता है। दुनिया के सभी चिकित्सा-शास्त्र कहते हैं कि अगर कोई बीमार हो तो इलाज के पहले, किसी भी इलाज के पहले, बड़े से बड़ा इलाज है कि उसे नींद आ जाए। बीमार अगर सो न सके तो फिर कोई औषधि काम नहीं करती। औषधि तो ऊपरी सहारे हैं, असली औषधि तो भीतर है। अपने में डुबकी लग जाए, अपने जीवन-स्रोत से फिर संबंध जुड़ जाए।
गहरी नींद में वही घटता है। गहरी नींद का अर्थ है जहां स्वप्न भी न हो, क्योंकि स्वप्न में भी दूसरों की छाया मौजूद रहती है। तुम स्वप्न में भी स्वयं नहीं हो पाते; वहां भी झूठ हो जाता है।
फ्रायड ने कहा है कि आदमी स्वप्न में भी झूठ बोलता है। हमारा झूठ इतना गहरा हो गया है कि स्वप्न में जहां कोई भी नहीं है, वहां भी हम झूठ बोलते हैं।
फ्रायड ने कहा है, अगर किसी व्यक्ति के मन में अपने पिता को मार डालने
की आकांक्षा हो--जरूरी नहीं कि वह मार ही डालना चाहता हो, लेकिन क्रोध में ऐसी आकांक्षा हो--तो वह सपना देखेगा कि उसने अपने काका को मार डाला। पिता को न मारेगा सपने में, सपने में भी! काका मिलते-जुलते हैं पिता से थोड़े, उन्हें मार डालेगा। उतना झूठ वहां भी बोल गया।
तुम अपने स्वप्न में भी सच नहीं हो; क्योंकि दूसरा तो मौजूद नहीं है, लेकिन दूसरे की छाया मौजूद है। दूसरे की छाया भी तो दूसरे की छाया है।
तो जब स्वप्न भी नहीं होते तब सुषुप्ति। और सुषुप्ति बड़ी प्राणदायी है। सुषुप्ति संजीवनी है। जब कोई इतना गहरे में अपने गिर जाता है कि वहां स्वप्न भी नहीं पहुंच पाते, दूसरे तो दूर, उनकी छाया भी नहीं आती; जब तुम इतने अपने में होते हो, तब तुम सुबह पाते हो, रात बड़ी आनंद से बीती। सुबह तुम एक ताजगी पाते हो, ओज पाते हो, बल पाते हो। जिस दिन तुम रात गहरे नहीं सो पाते, उस दिन तुम सुबह थके-थके उठते हो। चाहे तुम आठ-दस घंटे बिस्तर पर पड़े रहे, चाहे तुमने करवटें बहुत बदलीं, लेकिन स्वप्न तुम्हें घेरे रहे, तुम उथले-उथले रहे, भीड़ तुम्हें पकड़े ही रही, तुम अकेले न हो पाए। नींद में भी तुम मौन न हो पाए!

नींद में मौन हो जाने का अर्थ सुषुप्ति है। जैसे गहरी नींद तुम्हें ताजा कर जाती है, उससे भी ताजा तुम्हें मौन करेगा। क्योंकि गहरी नींद में तुम बेहोश होते हो, मौन में तुम गहरी नींद में होओगे और होश में होओगे। पतंजलि ने समाधि की यही परिभाषा की है। समाधि का अर्थ हैः सुषुप्ति
धन होश। होश भी हो और सुषुप्ति जैसी प्रगाढ़ शांत दशा हो, जहां तरंग भी नहीं उठती!
डूबो मौन में। तुम अनिर्वचनीय रस वहां से पाओगे। यद्यपि जैसे-जैसे तुम मौन में ठहरने लगोगे, वैसे-वैसे तुम यह भी पाओगे, अब तुम जो थोड़ा-बहुत बोलते हो उसमें सत्य आने लगा। क्योंकि जिसने अपना रस जाना, वह दूसरे के मंतव्यों की चिंता छोड़ने लगता है। अब असली बात अपने रस की रह जाती है, अब दूसरे से क्या प्रयोजन?
जिसको अपने सौंदर्य का भरोसा आ गया, अब वह इसकी फिक्र नहीं करता कि लोग उसे सुंदर कहते हैं या नहीं कहते हैं। सारी दुनिया उसे असुंदर कहे, भेद नहीं पड़ेगा; उसे अपने सौंदर्य की मस्ती आ गई। जिसे अपने भीतर का सत्य पता चलने लगा, अब वह इसकी चिंता नहीं करता कि लोग उसे सच्चा मानते हैं या नहीं मानते; अब लोगों की बात का कोई मूल्य नहीं है।
तुम लोगों की बात का इतना विचार करते हो, क्योंकि तुम्हें अपने पर कोई भरोसा नहीं। तुम्हारा सब भरोसा उधार है। पहले तुम लोगों की आंखों में देखते होः कोई सुंदर कह रहा है? कोई साधु मान रहा है? तो तुम्हें भी भरोसा आता है। आश्चर्य! तुम्हें अपनी साधुता का खुद पता नहीं चलता; इसे भी तुम दूसरे से पूछने जाते हो! तो जैसे-जैसे भीड़ बड़ी होने लगती है तुम्हें साधु मानने की, उतना ही तुम आत्मविश्वास से भरने लगते हो कि निश्चित ही मैं साधु हूं।
यह भी बड़ा मजा हुआ, मजाक हुआ, अपना पता तुम्हें नहीं, उसको भी तुम उधार पता लगाते हो! तुम्हें अपने भीतर के आनंद का कोई बोध नहीं; लोग अगर तुमसे कहें कि बड़े आनंदित हैं आप, बड़े प्रसन्नचित्त हैं, जब दिखाई पड़ते हैं तभी जैसे बहार आई हो, जब देखते हैं तभी जैसे आंखों में फूल खिले हों, आप बड़े खुशदिल हैं--तुम मुस्कुराने लगते हो। लोग तुम्हें भरोसा दिला देते हैं। और धीरे-धीरे तुम मान लेते हो कि तुम खुशदिल हो, बड़े प्रसन्नचित्त हो। जरा गौर से तुम अपनी मान्यता को फिर से उलट-पुलटकर देखना--जो तुमने अपने संबंध में बना रखी है--दूसरों ने बना दी।
हार्वर्ड विश्वविद्यालय में मनोवैज्ञानिक एक प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने एक कक्षा के विद्यार्थियों को दो हिस्सों में बांट दिया। आधे विद्यार्थियों को कहा अलग कमरे में, यह सवाल जो तख्ते पर लिखा जा रहा है, बहुत कठिन है; यह इतना कठिन है कि कोई आशा नहीं कि तुम में से कोई भी इसे हल कर पाएगा। तुमसे ऊपर की कक्षाओं के विद्यार्थी भी इसे हल करने में कठिनाई पाते हैं। यह तो बड़े गणितज्ञ ही इसे हल कर सकते हैं। लेकिन सिर्फ जानने के लिए दिया जा रहा है, हो सकता है संयोग से, शायद--इसका कोई जरा भी आश्वासन नहीं है--शायद तुम में से कोई थोड़ा-बहुत इसको हल करने की दिशा में ठीक चल पाए। पूरा हल कर पाए, यह तो हो नहीं सकता, फिर भी कोशिश करो।
उन्होंने कोशिश की। पंद्रह विद्यार्थियों में केवल तीन विद्यार्थी उसे हल कर पाए।
उसी क्लास के दूसरे पंद्रह विद्यार्थियों को दूसरे कमरे में कहा गया--वही सवाल--एकदम सरल है। इतना सरल है कि तुम में से अगर कोई इसे हल न कर पाए तो बड़े आश्चर्य की बात होगी। तुमसे नीची कक्षाओं के विद्यार्थियों ने भी इसे हल कर लिया है।
और आश्चर्य की बात, बारह हल कर पाए, तीन भर चूक गए! क्या हुआ?
तुम्हारा भरोसा उधार है, दूसरे तुम्हें देते हैं। कोई तुमसे कह देता
है बुद्धिमान, तो तुम बुद्धिमान हो जाते हो; कोई तुमसे कह देता है बुद्धू, तुम बुद्धू हो जाते हो। और लोग अगर दोहराए चले जाएं तो तुम मानने लगते हो उनकी बात। लोगों की बातों में सम्मोहन है। और जिसे आत्मज्ञान की तरफ कदम रखना है, उसे यह सम्मोहन तोड़ देना होगा। उसे अपने पर भरोसा करना पड़ेगा सीधा-सीधा।

दूसरे का माध्यम हटाओ बीच से। दूसरे को अपना पता नहीं है, तुम्हारा पता क्या होगा? वह खुद तुम पर निर्भर है कि तुम उसको कहो कि आप बड़े बुद्धिमान, कि आप बड़े सुंदर, कि आप जैसा सीधा-साधा और सरल मनुष्य नहीं देखा। वह तुम्हारे पास भिक्षा मांगने आया था। और इस तरह पारस्परिक भिक्षा का लेन-देन चलता है।
मैंने सुना है, एक मोहल्ले में दो ज्योतिषी रहते थे। जब वे सुबह निकलते थे, मिल जाते तो एक-दूसरे को हाथ दिखा देते कि आज दिन कैसा रहेगा! एक-दूसरे की फीस भी चुका देते चार-चार आने, कोई हर्जा भी न होता, जानकारी भी हो जाती। अब ऐसा ज्योतिषी, जो अपना ज्योतिष पूछ रहा है... !
एक बार एक बड़े ज्योतिषी को मेरे पास लाया गया। उनकी फीस एक हजार एक रुपए। उन्होंने कहा कि एक हजार एक रुपया मेरी फीस है। मैंने कहा, कोई हर्ज नहीं, हाथ तो देखें। हाथ जब देख लिया, फिर बड़ी देर हो गई और बातें चलती रहीं, दो-चार बार उन्होंने इशारा किया कि वह एक हजार एक रुपया! मैं बात टाल गया। फिर-फिर उन्होंने याद दिलाई। मैंने कहा कि तुम्हें यह भी पता नहीं चलता कि मुझसे ये रुपए मिलने वाले नहीं हैं? तुम अपना हाथ तो घर से देखकर निकले होते। तुम मेरा भविष्य बताते हो, तुम्हें अपना आज भी पता नहीं है। पर पारस्परिक चलता है। लेन-देन है। हम तुम्हारी प्रशंसा कर देते हैं, तुम हमारी प्रशंसा कर देते हो, दोनों घर प्रसन्न लौट जाते हैं।
डूबो मौन में! दूसरे को जितना भूल सको उतना अच्छा। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम भाग जाओ जिंदगी से। मैं यह कह रहा हूं कि तुम जिंदगी में सच्चे हो जाओ। धीरे-धीरे तुम में एक बल आएगा, वह तुम्हारे भीतर से आएगा। और तब तुम पाओगे कि बोलने में भी तुम्हारी प्रामाणिकता रह जाती है, मिटती नहीं। वस्तुतः तुम पाओगे कि बोलने में भी तुम्हारा मौन खंडित नहीं होता, बना ही रहता है। उसकी एक सतत धारा, एक अंतर्धारा बहती रहती है। बोलते भी तुम हो, लेकिन अपने से छूटते नहीं। बोलते भी तुम हो, शब्द का उपयोग भी करते हो, लेकिन तुम्हारे निःशब्द को शब्द खंडित नहीं कर पाता।
शब्द बड़ा कमजोर है, निःशब्द को कैसे खंडित करेगा? बादल आते हैं, जाते हैं, आकाश कहीं मैला होता है! कितने बादल आए और गए न होंगे इस आकाश के समक्ष अनंत काल से, आकाश पर रेखा भी तो नहीं छूट जाती। ऐसा ही निःशब्द का आकाश है, मौन का आकाश है, शून्य का भीतर आकाश है, उस पर कोई फर्क नहीं पड़ता विचारों से। विचार क्या फर्क लाएंगे! रेखा भी नहीं खिंचती। लेकिन उसका तुम्हें पता हो तब।
एक बार मौन में थिर हो जाओ, फिर तुम्हारी वाणी में भी एक सुगंध आ जाएगी। एक बार मौन में उतर जाओ, फिर तुम्हारी वाणी भी नई गहराइयां ले लेगी, फिर तुम्हारी वाणी में भी एक विशालता आ जाएगी।
तुम बोलोगे भी तो दूसरे पर ध्यान रखकर न बोलोगे। तुम बोलोगे अपने भीतर की आवाज से। तुम्हारा बोलना संगीतपूर्ण होगा; तुम्हारा बोलना सत्य होगा; तुम्हारा बोलना तुम्हारे पूरे व्यक्तित्व की सुगंध से ओतप्रोत होगा; तुम बोलोगे तो दूसरों पर भी शीतलता छा जाएगी; तुम बोलोगे भी तो दूसरों पर तुम्हारे निःशब्द की धुन बजने लगेगी; तुम्हारा मौन उन्हें छुएगा।
इस देश में हमने यह नियम समझा था कि केवल वही बोले, जिसने मौन के तल छू लिए हों, बाकी चुप रहें। इसलिए बुद्ध बोलते हैं, ठीक। बुद्ध का बोलना सार्थक।
अब यह बड़े मजे की बात है, यह बड़ा विरोधाभास है, जिसने न बोलना सीख लिया, वही बोलने का हकदार है। जिसने चुप होना जाना, वही पात्र है कि अगर बोले तो सौभाग्य। जिसने चुप होना सीख लिया, उसको चुप हमने नहीं रहने दिया।
कहते हैं, बुद्ध को जब ज्ञान हुआ तो वे सात दिन चुप रह गए। चुप्पी इतनी मधुर थी, ऐसी रसपूर्ण थी, ऐसा रोआं-रोआं उसमें नहाया, सराबोर था, बोलने की इच्छा ही न जगी, बोलने का भाव ही पैदा न हुआ। कहते हैं, देवलोक थरथराने लगा। कहानी बड़ी मधुर है। अगर कहीं देवलोक होगा तो जरूर थरथराया होगा।
कहते हैं, ब्रह्मा स्वयं घबड़ा गया।

क्योंकि कल्प बीत जाते हैं, हजारों-हजारों वर्ष बीतते हैं, तब कोई व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। ऐसे शिखर पर कोई हजारों वर्षों में पहुंचता है। और अगर उस शिखर से आवाज न दे, उस शिखर से अगर बुलावा न दे, तो जो नीचे अंधेरी घाटियों में भटकते लोग हैं, उन्हें तो शिखर की खबर भी न मिलेगी; वे तो आंख उठाकर देख भी न सकेंगे; उनकी गर्दनें तो बड़ी बोझिल हैं। वस्तुतः वे चलते नहीं, सरकते हैं, रेंगते हैं।
आवाज बुद्ध को देनी ही पड़ेगी। बुद्ध को राजी करना ही पड़ेगा। जो भी मौन
का मालिक हो गया, उसे बोलने के लिए मजबूर करना ही पड़ेगा।
कहते हैं, ब्रह्मा सभी देवताओं के साथ बुद्ध के सामने मौजूद हुआ। वे उनके चरणों में झुके।
हमने देवत्व से भी ऊपर रखा है बुद्धत्व को। सारे संसार में ऐसा नहीं हुआ। हमने बुद्धत्व को देवत्व से ऊपर रखा है। कारण हैः देवता भी तरसते हैं बुद्ध होने को। देवता सुखी होंगे, स्वर्ग में होंगे--अभी मुक्त नहीं हैं, अभी मोक्ष से बड़े दूर हैं। अभी उनकी लालसा समाप्त नहीं हुई, अभी तृष्णा नहीं मिटी, अभी प्यास बुझी नहीं। उन्होंने और अच्छा संसार पा लिया है, और सुंदर स्त्रियां पा ली हैं, और सुंदर पुरुष पा लिए हैं। कहते हैं, स्वर्ग में कंकड़-पत्थर नहीं हैं, हीरे-जवाहरात हैं। कहते हैं, स्वर्ग के जो पहाड़ हैं, वे शुद्ध स्फटिक-मणि से बने हैं। कहते हैं, स्वर्ग में जो फूल लगते हैं, वे मुर्झाते नहीं। परम सुख है।
लेकिन स्वर्ग से भी गिरना होता है। क्योंकि सुख से भी दुख में लौटना
ही पड़ेगा। सुख और दुख एक ही सिक्के के पहलू हैं। कोई नरक में पड़ा है, कोई स्वर्ग में पड़ा है। जो नरक में पड़ा है वह नरक से बचना चाहता है। जो स्वर्ग में पड़ा है वह स्वर्ग को पकड़े रखना चाहता है।
दोनों चिंतातुर हैं। दोनों पीड़ित और परेशान हैं। जो स्वर्ग में पड़ा है, वह भी किसी लोभ के कारण वहां पहुंचा है। जो नरक में पड़ा है, वह भी किसी लोभ के कारण वहां पहुंचा है। एक ने अपने लोभ के कारण पाप किए होंगे, एक ने अपने लोभ के कारण पुण्य किए हैं--लोभ में फर्क नहीं है।
बुद्धत्व के चरणों में ब्रह्मा झुका। और उसने कहा कि आप बोलें; आप न बोलेंगे तो महा दुर्घटना हो जाएगी। और एक बार यह सिलसिला हो गया, तो आप परंपरा बिगाड़ देंगे। बुद्ध सदा बोलते रहे हैं। उन्हें बोलना ही चाहिए। जो न बोलने की क्षमता को पा गए हैं, उनके बोलने में कुछ अंधों को मिल सकता है, अंधेरे में भटकतों को मिल सकता है। आप चुप न हों, आप बोलें।
किसी तरह बामुश्किल राजी किया। कहानी का अर्थ इतना ही है कि जब तुम मौन हो जाते हो तो अस्तित्व भी प्रार्थना करता है कि बोलो; वृक्ष और पत्थर और पहाड़ भी प्रार्थना करते हैं कि बोलो; करुणा को जगाते हैं तुम्हारी कि बोलो। तुम जहां पहुंच गए हो वहां और भी बहुत पहुंचना चाहते हैं। उन्हें रास्ते का कोई भी पता नहीं। उन्हें मार्ग का कोई भी पता नहीं; अंधेरे में टटोलते हैं। उन पर करुणा करो, बोलो। तुम भी कल उनके साथ थे, इतनी जल्दी भूल मत जाओ, विस्मरण मत करो। पीछे लौटकर देखो।
साधारण आदमी वासना से बोलता है; बुद्ध पुरुष करुणा से बोलते हैं। साधारण आदमी इसलिए बोलता है कि बोलने से शायद कुछ मिल जाए; बुद्ध पुरुष इसलिए बोलते हैं कि शायद बोलने से कुछ बंट जाए। बुद्ध पुरुष इसलिए बोलते हैं कि तुम भी साझीदार हो जाओ उनके परम अनुभव में। पर पहले शर्त पूरी करनी पड़ती है--मौन हो जाने की, शून्य हो जाने की।
जब ध्यान बोलता है, जब ध्यान की वीणा पर संगीत उठता है, जब मौन मुखर होता है, तब शास्त्र निर्मित होते हैं। जिनको हमने शास्त्र कहा है, वे ऐसे लोगों की वाणी है, जो वाणी के पार चले गए थे। और जब भी कभी कोई वाणी के पार गया, उसकी वाणी शास्त्र हो जाती है, आप्त हो जाती है; उससे वेदों का पुनः जन्म होने लगता है।
तो पहले तो मौन को साधो, मौन में उतरो; फिर जल्दी ही वह घड़ी भी आएगी, वह मुकाम भी आएगा, जहां तुम्हारे शून्य से वाणी उठेगी। तब उसमें प्रामाणिकता होगी, सत्य होगा। क्योंकि तब तुम दूसरे के भय के कारण न बोलोगे, तुम दूसरों से कुछ मांगने के लिए न बोलोगे। तब तुम देने के लिए बोलते हो, भय कैसा! कोई

ले तो ठीक, कोई न ले तो ठीक। ले ले तो उसका सौभाग्य, न ले तो उसका दुर्भाग्य। तुम्हारा क्या है? तुमने बांट दिया। जो तुमने पाया तुम बांटते गए। तुम पर यह लांछन न रहेगा कि तुम कृपण थे, जब पाया तो छिपाकर बैठ गए।
पर ऐसा कभी हुआ ही नहीं। ऐसा कभी होता ही नहीं। क्योंकि यह पाना कुछ ऐसा है कि इसमें बांटने की अभीप्सा साथ में ही आती है, इसके भीतर ही छिपी आती है। जैसे फूल जब खिलता है तो उस खिलने में ही गंध का बंटना भी छिपा होता है। कोई फूल यह चाहे कि खिल तो जाऊं और बंटू न, तो असंभव होगा।
इसलिए ब्रह्मा आए या नहीं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, यह कहानी है। बुद्ध को बोलना ही पड़ेगा। जब फूल खिलता है, सुगंध को बिखरना ही पड़ेगा। जब दीया जलता है तो किरणें बरसेंगी ही चारों तरफ; कोई ब्रह्मा की जरूरत नहीं कि दीए से प्रार्थना करे। कहानी तो प्रतीक है--मधुर प्रतीक है।
पहले मौन, फिर वाणी में सत्य का अवतरण... !
शुभ है। प्रारंभ है। घबड़ा मत जाना। डरना मत। पाखंड टूटने की घड़ी करीब
आ रही है।
इब्तिदा से आज तक नातिक की है ये सरगुजश्त
पहले चुप था, फिर हुआ दीवाना, अब बेहोश है
ये तीन घड़ियां आती हैं।
पहले चुप था, फिर हुआ दीवाना...
क्योंकि जैसे ही तुम चुप हुए, दुनिया तुम्हें दीवाना कहेगी। इधर तुम चुप हुए कि उधर खबर फैलनी शुरू हुई कि तुम दीवाने हुए, कि तुम पागल हुए। ऐसे दुनिया अपनी रक्षा करती है। ऐसे दुनिया तुम्हें पागल न कहे तो फिर और लोग भी इसी रास्ते पर जाने को आतुर हो जाएं। असल में दुनिया अपनी रक्षा करती है, क्योंकि तुम्हें देखकर औरों के मन में भी उठती है आवाज। लेकिन तब बड़ा हेर-फेर करना पड़ेगा। जिंदगी का ढांचा बदलना पड़ेगा। वह जरा ज्यादा मुश्किल है।
तुम पागल हो--ऐसा तुम्हें पागल कहकर आदमी निश्चिंत हो जाते हैं कि पागल है, छोड़ो भी उसकी बात। मेरे संन्यासियों को लोग पागल ही समझते हैं। पागल हैं, उनकी बात ही मत सुनो--ऐसे वे तुम्हें पागल कह रहे हैं, यह नहीं है। ऐसे वे इतना ही कह रहे हैं कि आकर्षित तो वे भी हो रहे हैं, लेकिन भयभीत हैं, कमजोर हैं, कायर हैं। तुम्हें पागल कहकर वे अपने को बचाने की कोशिश कर रहे हैं। तुम अगर पागल सिद्ध हो जाओ तो यह झंझट मिटे, अन्यथा तुम उन्हें भी बुलाए ले रहे हो! उन्हें भी तुम आकर्षित किए ले रहे हो! उन्हें भी तुम खींचे ले रहे हो! उस खिंचाव को झुठलाने के लिए, उस आकर्षण से बच जाने के लिए वे तुम्हें पागल घोषित कर रहे हैं।
पहले चुप था, फिर हुआ दीवाना...
लेकिन यह "दीवाना" दोहरा अर्थ रखता है। लोग पागल कहें या न कहें, जो चुप होता है वह एक अर्थ में दीवाना हो ही जाता है। किस अर्थ में दीवाना हो जाता है? इस अर्थ में दीवाना हो जाता है कि चुप होने के साथ ही साथ वह समाज के घेरे के बाहर पड़ने लगता है, मुक्त होने लगता है।
जैसे ही तुम चुप होते हो, तुम इतने बलशाली होने लगते हो कि समाज की निर्भरता तुम छोड़ने लगते हो। और तुम्हारे जीवन में एक मस्ती आती है जो केवल दीवानों के जीवन में होती है; तुम्हारे चेहरे पर एक नई रौनक आ जाती है; तुम्हारी आंखें किसी और ही ओज से भर जाती हैं; तुम्हारे पैर चलते हैं, जमीन पर पड़ते नहीं; जैसे तुम हर-हमेश किसी नशे से भरे हो!
आज की सुबह मेरे कैफ का अंदाज न पूछ
दिले-वीरां में अजब अंजुमन आराई है
मत पूछ मेरी मस्ती का हिसाब! उजड़े हुए हृदय में कोई अजीब महोत्सव हुआ है, कोई नई धुन बजी है!
दीवाने तो तुम हो ही जाओगे। पागल तो तुम मालूम होने ही लगोगे। पर यह पागलपन चुनने जैसा है। यह पागलपन करने जैसा है। तुम्हारी सारी होशियारियां भी इकट्ठी होकर इस पागलपन के एक कतरे का भी मुकाबला नहीं कर सकतीं। तुम्हारी बुद्धिमत्ता दो कौड़ी की है। क्योंकि जिसने पागल होना जाना, उसने ही परमात्मा का होना भी जाना।

फिर हुआ दीवाना, अब बेहोश है
और फिर तीसरी घड़ी भी आती है। जब तुम नहीं रहते, तुम बचते ही नहीं। उसी घड़ी को "बेहोश" कहते हैं। बेहोशी का मतलब यह नहीं है कि तुम्हारा होश खो जाता है। बेहोशी का मतलब है कि तुम खो जाते हो, होश तो पूरा हो जाता है। यह ऐसी बेहोशी है कि इसमें होश खोता नहीं, बढ़ जाता है, लेकिन तुम मिट जाते हो। यही सांसारिक शराब और परमात्मा की शराब का भेद है।
जब तुम शराब पीते हो, तुम तो रहते हो, होश खो जाता है। जब तुम परमात्मा
को पीते हो, तुम तो मिट जाते हो, होश रह जाता है।
इब्तिदा से आज तक नातिक की है ये सरगुजश्त
पहले चुप था, फिर हुआ दीवाना, अब बेहोश है
घबड़ाना मत। यहीं तो सदगुरु की जरूरत हो जाती है। तुम्हारा डर स्वाभाविक है। अब तक जिस ढंग से तुम जीए, वह सब लड़खड़ा जाएगा। अब तक जिसको तुमने जिंदगी समझी थी, अब जिंदगी मालूम न होगी। अब कहीं दूर ने तुम्हें पुकारा। अब तुम चल पड़े किसी ऐसी खोज में, जहां आदमी को अकेला ही जाना पड़ता है, जहां राजपथ नहीं है, जहां बस पगडंडियां हैं। पगडंडियां भी पहले से तैयार नहीं; चलते हो, बस उतनी ही तैयार होती हैं। दुनिया तो यही समझेगी कि तुम गए! दुनिया तो यही समझेगी कि तुम मुर्दा हुए!
मुहब्बत ने उम्रे-अबद हमको बख्शी
मगर सब यह समझे फना हो गए हम
लोग यही समझे कि मर गया यह आदमी। पहले समझेंगे पागल, फिर समझेंगे मृत। लोग भूल ही जाएंगे तुम्हें कि तुम हो भी। ऐसा किनारा काटकर निकल जाएंगे। दुनिया यही समझेगी, यह आदमी समाप्त हुआ। लेकिन तुम्हारे भीतर जो घटा है, वह तुम्हीं जानते हो। तुम्हारे भीतर जो मेघ-मल्हार जगी है, वह तुम्हीं जानते हो। तुम्हारे भीतर आषाढ़ के मेघों को देखकर जो मोर नाचने लगे हैं, वह तुम्हीं जानते हो। तुम्हारे भीतर तो अमृत बरसा है, मृत्यु समाप्त हुई है, लेकिन लोगों के लिए तुम लगोगे कि मृतक हो गए।
मौन से शुरुआत होती है। उस शुरुआत में डर लगेगा, भय लगेगा, भाग जाने का
मन होगा, लौट-लौटकर लोगों से बात करने का मन होगा, किसी तरह अपने को उलझा लेने का मन होगा। क्योंकि भय लगेगा, यह भीतर कहां मैं जा रहा हूं! क्योंकि जो तुम्हारी गहराई है भीतर, वह तुमसे भी गहरी है, वह तुमसे पार है। उस गहराई में उतरते वक्त मौत रास्ते में पड़ेगी; ऐसा लगेगा कि मरे, गए!
ध्यान में मृत्यु घटती है। ध्यान सूली है, लेकिन सूली के बिना सिंहासन नहीं। ध्यान में जो मरता है, वही परमात्मा में जगता है। संसार से तो तुम मृतवत हो जाते हो और परमात्मा तुम में जीवंत हो जाता है। मरने की तैयारी रखना, क्योंकि वही साधना है। और मरकर ही मिलता है महाजीवन।
शुभ है घड़ी, घबड़ाना मत। सम्हालना इस घड़ी को टूट न जाए, फूट न जाए, बिखर
न जाए। बड़े सौभाग्य से आती है, बड़ी मुश्किल से आती है। सैकड़ों कोशिश करते हैं, किसी एकाध को आती है। धन्यभागी मानना अपने को और परमात्मा के प्रति अनुग्रह का भाव रखना कि इतनी समझ दी है, तो द्वार खुलने लगा। बहुत कुछ और होगा।
पहले चुप था, फिर हुआ दीवाना, अब बेहोश है

दूसरा प्रश्नः ऐसा क्यों है कि सभी बुद्ध पुरुष बोध और जागरण के केंद्रीय संपरिवर्तन का उपदेश देते हैं और उनके स्थापित धर्म आचरण और कर्मकांड में सिकुड़कर रह जाते हैं? क्या सभी संगठित धर्म समाज के ही हिस्से नहीं हैं?

ऐसा होता है, अब तक हुआ है, आगे भी होता रहेगा। क्योंकि जब कोई बुद्ध पुरुष बोलता है तो वह जहां से बोलता है, वहां तुम तो समझ नहीं सकते! उसे समझने के लिए तो तुम्हें भी बुद्ध पुरुष हो जाना पड़ेगा। और तब तो समझने की कोई जरूरत ही न रहेगी; तुम ही जान लोगे तो फिर समझने की जरूरत क्या है? जरूरत तो तभी तक है जब तक तुम्हारा अपना कोई स्वाद नहीं, अपना कोई अनुभव नहीं।

और जब बुद्ध पुरुष बोलते हैं तो वे कहीं शिखर से बोल रहे हैं, तुम अपनी घाटियों से, अंधेरी वादियों से सुनते हो। तुम्हारा अंधेरा तुम्हारे श्रवण में सम्मिलित हो जाता है। तुम्हारा अंधेरा तुम जो सुनते हो, उसकी व्याख्या करने लगता है। तुम्हारा अंधेरा, तुम जो सुनते हो वही नहीं सुनते, कुछ और तुम्हें सुना देता है। बुद्ध कुछ बोलते हैं, तुम कुछ और सुनते हो। ऐसा मुझे रोज ही अनुभव आता है। लोग मेरे पास ही आ जाते हैं, वे कहते हैं, आपने ऐसा कहा था। मैंने कभी कहा नहीं, उन्होंने सुना जरूर। उनको मैं झूठ नहीं कह सकता। उन्होंने सुना है, मैंने कहा हो या न कहा हो। चकित होता हूं कभी-कभी कि यह बात तो मैंने कभी कही नहीं। वे मुझे याद दिलवाते हैं, तब मुझे याद आता है कि जरूर ऐसा ही कुछ मैंने कहा था; ऐसा ही कुछ, यही नहीं। उसमें कुछ शब्द उन्होंने जोड़ दिए, कुछ घटा दिए, सारा अर्थ ही बदल गया। एक कॉमा भी तुम जोड़ दो, अर्थ बदल जाएगा। और एक कॉमा की क्या बात है, तुम तो पहाड़ जोड़ देते हो; तुम अपना सारा सब कुछ उसमें जोड़ देते हो। तुम सुनते थोड़े ही हो, तुम विचार करते हो। तुम अपना कूड़ा-करकट उसमें डाल देते हो। यह सब अनजाने होता है।
इसलिए फिर, पहले तो बुद्ध पुरुष बोलते हैं किसी ऊंचाई से, सुनते ही घटना कहीं और पहुंच जाती है, हाथ के बाहर हो जाती है। बुद्ध पुरुष भी कुछ कर नहीं सकते इसमें; जानकर ही बोलते हैं कि समझा नहीं जाएगा। समझा नहीं जाएगा, यह जानकर भी बोलते हैं। पूरा सूरज निकले, एक किरण तो पहुंच जाएगी। किरण भी न पहुंचे, किरण का नाम तो पहुंच जाएगा, कोई बीजारोपण हो जाएगा; शायद आज काम न आए, अनंत जन्मों में कभी ठीक समय पर अंकुरित हो उठे।
मैं तुमसे जो आज कह रहा हूं, वह तुम आज समझोगे, यह जरूरी नहीं; लेकिन अगर तुमने सुन भी लिया, गलत भी सुना, तो भी एक बीजारोपण हुआ--कभी न कभी उसमें फल आने शुरू होंगे।
फिर जब लोग सुनते हैं और लोग ही इकट्ठा करते हैं, लोग ही संगृहीत करते हैं--फिर हजारों साल बीत जाते हैं, उस संग्रह में जुड़ता चला जाता है। अज्ञानियों के हाथ की छाप बुद्ध पुरुषों के वचनों को मैला करती चली जाती है। धीरे-धीरे हाथ की छापें ही रह जाती हैं। तुम्हारे हस्ताक्षर रह जाते हैं। बुद्ध पुरुषों के हस्ताक्षर बहुत फीके हो-होकर खो जाते हैं।
इसलिए भारत में एक अनूठी परंपरा रही है कि जब फिर कोई बुद्ध पुरुष हो
तो अतीत के बुद्ध पुरुषों की वाणी को पुनरुज्जीवित करे। तुम्हारे हस्ताक्षर हटाए; तुमने जो धूल-धवांस इकट्ठी कर दी है चारों तरफ, उसे हटाए; दर्पण को फिर निखराए, फिर उघाड़े।
थोड़ी ही देर के लिए धर्म शुद्ध रहता है, बड़ी थोड़ी देर के लिए! तुम्हारे सुनते ही उपद्रव शुरू हो गया। तुम संगठन करोगे। तुम संप्रदाय बनाओगे, तुम शास्त्र निर्मित करोगे। वे शास्त्र, वे संप्रदाय, वे सिद्धांत, वे धर्म तुम्हारे होंगे--बुद्ध पुरुषों के नहीं। बुद्ध पुरुषों का तो बहाना होगा। धीरे-धीरे उनका बहाना भी हट जाएगा। लकीरें रह जाएंगी--मुर्दा।
मैंने सुना है, एक घर में पहला विवाह हो रहा था। लड़के की मां बार-बार
कह चुकी थी अपने पति को कि तुम एक सफेद बिल्ली ले आओ। उसने हंसकर कई बार टाला कि इसकी क्या जरूरत है। वह बोली कि तुम्हें इन बातों में पड़ने की जरूरत नहीं है; लेकिन तुम बिल्ली ले आओ, अन्यथा विवाह कैसे होगा? घर बहू आएगी, मैं उसका स्वागत कैसे करूंगी? तो उसके पति ने पूछा कि आखिर मैं समझूं भी तो, कि बिल्ली का क्या लेना-देना है स्वागत से! उसने कहा, जब मैं घर में आई थी तो तुम्हारी मां ने मुझे मीठा दही खिलाने के लिए एक टोकरे के नीचे दही की मटकी रखी थी, वह टोकरी उठाई थी; मटकी के पास ही एक सफेद बिल्ली बैठी हुई थी। तो मुझे भी बहू का स्वागत करना पड़ेगा, मटकी रखनी पड़ेगी, सफेद बिल्ली बिठानी पड़ेगी। जो होता रहा है, वह करना ही पड़ेगा। रीति-नियम हैं बड़े-बूढ़ों के।
पति ने कहा, पागल! दही खिलाया था, वह तो समझ में आता है। दही तू भी खिला देना। लेकिन बिल्ली कोई उस व्यवस्था का हिस्सा नहीं थी। बिल्ली बैठ गई होगी दही के ख्याल से जाकर अंदर। बिल्ली का जूठा दही तूने खाया होगा। अब कुछ बहू को फिर बिल्ली का जूठा दही खिलाने के जरूरत नहीं है। वह भूल थी।

लेकिन पत्नी न मानी। उसने कहा, भूल और सुधार, इन बातों में मैं नहीं पड़ती। कोई अपशगुन हो जाए! अपना बिगड़ता क्या है?
लकीरें बनी रह जाती हैं। ऐसा हुआ था, ऐसा किया गया था, ऐसा कहा था। फिर हमारे अर्थ, फिर हमारा अंधापन उनमें जुड़ता है। और धर्म अंधविश्वास हो जाता है, और सत्य अपने शिखर खो देता है और घाटियों का झूठ हो जाता है। फिर उसी झूठ के आसपास भीड़ें बढ़ती चली जाती हैं।
बुद्ध के पास जो लोग पहली दफे पहुंचे थे, अपने बोध से पहुंचे थे। फिर उनके बच्चे पैदा होते हैं; इन बच्चों को न बुद्ध से कुछ लेना है, न कुछ देना है। धर्म इनके लिए केवल एक रीति-रिवाज होता है। चूंकि बौद्धों के घर में पैदा हो गए हैं, इसलिए बौद्ध; हिंदू घर में पैदा होते, हिंदू; मुसलमान घर में पैदा होते, मुसलमान। यह संयोग की बात है। यह हिंदू के घर में पैदा होना उतनी ही संयोग की बात है, जितनी दही की मटकी के पास सफेद बिल्ली का होना। यह मुसलमान होना, यह तुम्हारा कोई चुनाव नहीं है।
धर्म चुना जाता है। इसे मुझे फिर दोहराने दें। धर्म तभी सत्य होता है
जब तुम उसे सजगता से, अपनी परिपूर्ण चेतना से चुनते हो। कोई व्यक्ति जन्म के साथ धर्म का मालिक नहीं हो सकता। और जब तक पृथ्वी पर जन्म के आधार पर धर्म रहेगा, तब तक अधर्म रहेगा।
मगर मुश्किल है। मेरे पास ही लोग आते हैं। पति-पत्नी संन्यास ले लेते हैं, अपने छोटे बच्चे को ले आते हैं, कहते हैं, इसे भी संन्यास दे दें। यह तो छोड़ें, स्त्रियां मुझसे संन्यास लेती हैं, वे कहती हैं, उनको गर्भ है, बच्चा गर्भ में है, उसको संन्यास दे दें। मैं कहता हूं, कम से कम उसे पैदा हो जाने दें। इतनी जल्दी क्या है? उसे भी तुम मौका दो, उससे भी तो पूछो; उसे चुनने दो, थोपो मत।
तो जिसको तुम संप्र्रदाय की तरह जानते हो, वह थोपा हुआ धर्म है, वह तुमने चुना नहीं। चुनना तो केवल हिम्मतवरों का काम है। चुनने का अर्थ है दांव लगाना। तुम अगर मेरे पास आए हो तो यह चुनाव है। जब मैं जा चुका होऊंगा, तुम जा चुके होओगे, तुम्हारे बच्चे मुझे याद करेंगे--वह चुनाव नहीं होगा।
तुमने अगर मेरी तस्वीर अपने घर में टांग ली है, वह तुम्हारा प्रेम है। तुम्हारे बच्चे उसे बरदाश्त करेंगे; वह उनका प्रेम नहीं होगा। धीरे-धीरे वह तस्वीर सरकती जाएगी, बैठकखाने से पीछे के कमरों में पहुंच जाएगी। क्योंकि उनका भी प्रेम होगा किसी से--और यह उचित है ऐसा ही हो।
आखिर तुमने जब मेरी तस्वीर अपने घर में टांगी है तो कोई तस्वीर हटा दी होगी। और जब तुमने मुझे चाहा है तो कोई और चाह से संबंध तोड़ लिया होगा। और जब तुमने मुझे प्रेम किया है तो तुमने कुछ परंपरा से आए हुए प्रेम को खंडित किया होगा। तुम राम को छोड़कर आए होओगे मेरे पास, या कृष्ण को छोड़कर आए होओगे, या बुद्ध को छोड़कर, या महावीर को छोड़कर आए होओगे। तुमने हिम्मत की है। तुमने दांव लगाया है। तुमने महावीर को मेरे लिए दांव लगाया है। तुमने कृष्ण को मेरे लिए दांव लगाया है। तुमने क्राइस्ट को मेरे लिए दांव लगाया है। तुम्हारे बच्चे अगर समझदार होंगे तो मुझे किसी के लिए दांव लगा देंगे--किसी जिंदा, जीवित सत्य को चुनेंगे।
मरे हुए लोग मुर्दा सत्यों को चुनते हैं, क्योंकि उनसे कुछ हर्जा नहीं होता, उनसे कुछ लाभ भी नहीं होता। वे केवल औपचारिकताएं होती हैं। सामाजिक व्यवस्था का अंग होता है।
बुद्ध पुरुषों से संप्रदाय पैदा नहीं होते; लेकिन बुद्ध पुरुषों के पीछे संप्रदाय वैसे ही आते हैं जैसे आदमी के पीछे छाया आती है, और बैलगाड़ी चलती है तो चाक के निशान रास्ते पर छूट जाते हैं। कोई बैलगाड़ी इसलिए न चली थी कि रास्ते पर चाक के निशान छूट जाएं। कौन बैलगाड़ी इसलिए चलाता है! बुद्ध पुरुष इसलिए न बोले थे कि संप्रदाय बन जाएं। कौन संप्रदाय बनाने के लिए बोलता है! संक्रांति के लिए बोले थे कि जो सुने, उसके जीवन में क्रांति हो जाए। लेकिन थोड़े से लोग ही इस लाभ को ले पाते हैं--थोड़े से सौभाग्यशाली लोग। फिर धूल जमनी शुरू हो जाती है। यह स्वाभाविक जीवन का क्रम है।

"ऐसा क्यों है कि सभी बुद्ध पुरुष बोध और जागरण के केंद्रीय संपरिवर्तन का उपदेश देते हैं और उनके स्थापित धर्म आचरण और कर्मकांड में सिकुड़कर रह जाते हैं?"
स्वाभाविक है। जैसे बच्चा पैदा होता है, उसके चेहरे पर सलवटें नहीं होतीं, सिकुड़न नहीं होती, बुढ़ापे में पड़ जाती हैं। हर बच्चे की यही गति होगी। जब बुद्ध पुरुष बोलते हैं तो सत्य होता है; जब तुम सुनते हो, सिद्धांत बन जाता है; जब तुम अपने बच्चों को देते हो, संप्रदाय हो जाता है। बुद्ध पुरुष सत्य बोलते हैं अनुभव से, तुम सुनते हो। लेकिन कम से कम बोलने वाला सत्य है, सुनने वाला झूठ हो तो इस संवाद में थोड़ी सी सत्य की किरण होती है। वही किरण तुम्हारे लिए सिद्धांत बन जाती है।
सिद्धांत का अर्थ हैः तुमने नहीं जाना, लेकिन तुमने किसी ऐसे आदमी को जाना है, जिसने जाना है। इतना भरोसा तुम्हें आ गया है कि ठीक होगा। तुमने किसी ऐसे आदमी को जाना है जो गलत नहीं हो सकता। तो तुम सिद्धांत बनाते हो। सत्य न रहा अब, अब यह श्रद्धा हो गई।
बुद्ध पुरुष बोलते हैं सत्य, जो सुनते हैं उनको श्रद्धा होती है। फिर उनके बच्चे, उनके लिए सिर्फ विश्वास होता है, श्रद्धा भी नहीं। मानते हैं, मानना पड़ता है; सदा से चला आया, चलाना पड़ता है; एक उत्तरदायित्व का बोध रहता है कि बाप-दादे इसी रास्ते पर चले, अब उनकी लकीर को तोड़ना उचित नहीं है। अब जो नहीं हैं जमीन पर, उनसे बगावत भी क्या करनी! अब जो वे दे गए हैं, बिगड़ता ही क्या है, उसे पूरा कर दो। हर्जा भी तो कुछ नहीं है। लगता भी तो कुछ नहीं है।
लोग किए चले जाते हैं। धर्म सिकुड़कर संप्रदाय हो जाता है।
धर्म मुक्ति देता है; संप्रदाय बांध लेता है। धर्म मोक्ष जैसा आकाश खोल देता है; धर्म काल-कोठरियां बन जाता है जैसे ही संप्रदाय होता है।
संप्रदाय और धर्म बिल्कुल विपरीत हैं। इसलिए सजग रहना, क्योंकि वही फिर हो सकता है--वही होगा ही। लेकिन कम से कम तुम सजग रहना। कम से कम तुमसे न हो यह पाप।
संप्रदाय समाज का हिस्सा है; धर्म व्यक्ति की क्रांति।
बुद्ध पुरुष बोलते हैं और तत्क्षण नेतागण पकड़ लेते हैं। इसे ख्याल में रखना। बुद्ध ने जो बोला, वह तत्क्षण बुद्ध के आसपास नेता होने की प्रवृत्ति के जो लोग थे उन्होंने पकड़ लिया। उन्होंने गिरोह बनाना शुरू कर दिया। उन्होंने संगठन खड़ा करना शुरू कर दिया। उन्होंने शास्त्र निर्मित करना शुरू कर दिया। उन्होंने मंदिर बनाना शुरू कर दिया।
कारवां लग चुका है रस्ते पर
फिर कोई रहनुमां न आ जाए
ध्यान रखना, जब तुम मंजिल के करीब पहुंच रहे हो, तब नेताओं से बचना। कारवां लग चुका है रस्ते पर
फिर कोई रहनुमां न आ जाए
फिर कोई नेता न आ जाए कि तुम्हें मार्ग बताने लगे।
बुद्ध पुरुष नेतृत्व नहीं करते; बुद्ध पुरुष आदेश भी नहीं देते-- बुद्ध पुरुष सिर्फ उपदेश देते हैं। उपदेश का अर्थ हैः कह दिया तुमसे; मान लो मर्जी, न मानो मर्जी। कह दिया तुमसे; फिर मत कहना कि नहीं कहा था। कह दिया तुमसे; लेकिन कोई जबर्दस्ती नहीं है कि तुम्हें मानना ही पड़ेगा। आग्रह नहीं है।
जैसे ही उपदेश में आग्रह हो जाता है, उपदेश भ्रष्ट हो जाता है। सत्य
का कोई आग्रह नहीं होता। सत्याग्रह जैसा झूठा कोई शब्द नहीं है। सत्य का तो निवेदन होता है, आग्रह क्या होगा! आदेश की तो बात ही नहीं है। धर्म कोई सैन्य-प्रशिक्षण नहीं है कि आदेश हो। नेता आदेश देते हैं कि ऐसा करो। बुद्ध पुरुष कहते हैं कि ऐसा हमें हुआ, सुनो। करने की बात ही नहीं है, होने की बात है।
और इसलिए अगर कभी तुम्हें कोई जीवित गुरु मिल जाए, तो उन क्षणों को मत चूकना। मुर्दा संप्रदायों से तुम्हें कुछ भी न मिलेगा। मुर्दा संप्रदाय ऐसे हैं जैसे तुम कभी-कभी फूलों को किताब में रख देते हो, सूख जाते हैं, गंध

भी खो जाती है, सिर्फ एक याददाश्त रह जाती है। फिर कभी वर्षों बाद किताब खोलते हो, एक सूखा फूल मिल जाता है।
संप्रदाय सूखे फूल हैं, शास्त्र किताबों में दबे हुए सूखे फूल हैं। उनसे न गंध आती है, न उनमें जीवन का उत्सव है, न उनसे परमात्मा का अब कोई संबंध है। क्योंकि उनकी कहीं जड़ें नहीं अब, पृथ्वी से कहीं वे जुड़े नहीं, आकाश से जुड़े नहीं, सूर्य से उनका कुछ अब संवाद नहीं, सब तरफ से कट गए, टूट गए, अब तो शास्त्र में पड़े हैं। सूखे फूल हैं।
अगर तुम्हें जिंदा फूल मिल जाए तो सूखे फूल के मोह को छोड़ना। जानता हूं मैं, अतीत का बड़ा मोह होता है। जानता हूं मैं, परंपरा में बंधे रहने में बड़ी सुविधा होती है। छोड़ने की कठिनाई भी मुझे पता है। अड़चन बहुत है। अराजकता आ जाती है। जिंदगी जमीन खो देती है। कहां खड़े हैं, पता नहीं चलता। अकेले रह जाते हैं। भीड़ का संग-साथ नहीं रह जाता।
लेकिन धर्म रास्ता अकेले का है। वह खोज तनहाई की है। और व्यक्ति ही वहां तक पहुंचता है, समाज नहीं। अब तक तुमने कभी किसी समाज को बुद्ध होते देखा? किसी भीड़ को तुमने समाधिस्थ होते देखा? व्यक्ति-व्यक्ति पहुंचते हैं, अकेले-अकेले पहुंचते हैं। परमात्मा से तुम डेपुटेशन लेकर न मिल सकोगे; अकेला ही साक्षात्कार करना होगा।
संगठित धर्म धर्म नहीं रहा, समाज का हिस्सा हो गया; रीति-रिवाज हो गया, क्रांति नहीं। जीवंत धर्म समाज का हिस्सा नहीं है; व्यक्ति के भीतर की आग है। इसलिए जो दिल वाले हैं, जिगर वाले हैं, बस उनकी ही बात है।
हमें दैरो-हरम के तफरकों से काम ही क्या है
मंदिर और मस्जिद के झगड़ों से मतलब क्या है? संप्रदायों के ऊहापोह से प्रयोजन क्या है? सिद्धांतों की रस्साकशी में पड़ने की जरूरत क्या है? हमें दैरो-हरम के तफरकों से काम ही क्या है
सिखाया है किसी ने अजनबी बनकर गुजर जाना
मंदिर और मस्जिद से अपने दामन को बचाकर गुजर जाना; कहीं उलझ मत बैठना कांटों में। जहां भी तुम्हें लगे कि मुर्दा है, लाश है, वह कितने ही प्यारे आदमी की हो, इससे क्या फर्क पड़ता है। अपनी मां मर जाती है तो उसको भी दफना आते हैं; प्यारी थी, दफनाने की बात ही नहीं जंचती, बात ही कठोर लगती है; इधर मरी नहीं, वहां अर्थी सजने लगती है, चले मरघट! रोते जाते हैं, लेकिन जाना तो पड़ता है मरघट। आंसू बहाते हैं, लेकिन आग तो लगानी पड़ती है चिता में।
ऐसी ही समझ और ऐसी ही हिम्मत मुर्दा धर्मों के साथ भी होनी चाहिए। जो
मर गए, अब उनसे कुछ होता नहीं। कभी उनसे हुआ था--मैं यह नहीं कहता--कभी उनसे बड़ी क्रांति घटी थी, अन्यथा वे इतने दिन जिंदा कैसे रह जाते? मरकर भी इतने दिन तक जिंदा कैसे रहते? लाश को भी कोई बचाता क्यों? लाश बड़ी प्यारी रही होगी कभी, लाश चलती रही होगी। कभी इस लाश में भी जीवन रहा होगा। इन आंखों में भी दीए जलते होंगे कभी। कभी इन हृदयों में भी धड़कन रही होगी। कभी इन ने भी लोगों को छुआ होगा, बदला होगा। कभी इनके कारण लाखों लोग नए जीवन को उपलब्ध हुए होंगे--सच, माना।
लेकिन अब? इसी मां ने तुम्हें जन्म दिया था, इसी मां की तुम अर्थी बांधकर ले चले! थोड़ा कठोर होना पड़ता है। रोओ, रोने से कुछ मनाही नहीं है। आंसू गिरेंगे, स्वाभाविक है। लेकिन यह भूल मत करना कि लाश को घर में रखकर बैठ जाओ, कि यह मां की लाश है, इसे कैसे जला सकते हैं? अगर मां की लाश घर में रख ली तो जो जिंदा हैं, उनके लिए रहना मुश्किल हो जाएगा। और अगर ऐसी लाशें तुम इकट्ठी करते चले गए तो घर न होंगे, मरघट होंगे।
थोड़ा सोचो तो, जितने लोग तुम्हारे परिवार में मर चुके हैं अब तक, अगर सबकी लाश बचा ली गई होती, तुम्हें रहने को जगह होती घर में? घर की छोड़ो, जमीन पर जगह होती? तुम जहां बैठे हो, वैज्ञानिक कहते हैं, एक-एक आदमी जहां बैठा है, वहां कम से कम दस आदमियों की कब्र बन चुकी है उस जगह पर। अगर सब मुर्दे बचा लिए गए होते तो जमीन पर जिंदा आदमियों को रहने को जगह होती? मुर्दे ही सब जगह घेर लेते। उनके लिए भी जगह काफी न होती। जिंदा आदमी तो पागल हो जाते। जिंदा आदमी तो सिर फोड़ लेते, आत्महत्या कर लेते, खुदकुशी कर

लेते, जहर खा लेते। इतने मुर्दों के बीच कैसे जीते? अच्छा हुआ कि लोगों ने लाशें इकट्ठी नहीं कीं।
लेकिन धर्म की दुनिया में ऐसा नहीं हो पाया; लोग लाशें इकट्ठी कर लेते हैं। फिर उन मुर्दों के कारण तुम जी भी नहीं पाते। तुम्हारे मंदिर-मस्जिद सिर्फ लड़वाते हैं, पहुंचाते कहां हैं? तुम्हारे मंदिर-मस्जिद तुम्हें परमात्मा की तरफ तो दूर, तुम्हें आदमी तक भी नहीं होने देते।
हमें दैरो-हरम के तफरकों से काम ही क्या है
सिखाया है किसी ने अजनबी बनकर गुजर जाना
यही मैं तुम्हें सिखा रहा हूं। मुर्दा लाशों के पास से सम्मानपूर्वक, श्रद्धा के दो फूल चढ़ाकर, लेकिन अपने दामन को बचाकर निकल जाना। मुर्दा लाशों से ज्यादा नेह मत लगाना, क्योंकि मुर्दों को जो ज्यादा प्रेम करेगा, वह खुद भी मुर्दा हो जाएगा। हम वही हो जाते हैं जो हमारा प्रेम है।
जीवंत को खोजना, अगर जीवन चाहते हो।
सदगुरु को खोजना, अगर जीवन चाहते हो।
लेकिन लोग अजीब हैं। लोग मुर्दों पर ज्यादा भरोसा रखते हैं। उसका कारण है, और कारण यह है कि मुर्दों के साथ तुम जो चाहो कर सकते हो। जिंदा सदगुरु के साथ तुम जो चाहोगे वह न कर सकोगे; वह जो चाहेगा वही होगा। मरे बुद्ध की अब तुम जो चाहो करो--पूजा चाहो पूजा, न पूजा करना हो न पूजा, फोड़ना हो फोड़ो, तोड़ना हो तोड़ो। बुद्ध की प्रतिमा तुम्हें रोक न पाएगी।
देखो जरा मजा, श्वेतांबर जैन हैं। महावीर जिंदगी के परम सत्य को नग्न रहकर पाए। उनको बेचैनी है--श्वेतांबरों को--उनके नग्न होने से। और जिंदा महावीर को तो न पहना पाए कपड़े, मरे महावीर को पहना देते हैं। जिंदा महावीर को तो आभूषण न पहना पाए, मरे महावीर को पहना देते हैं। जिंदा महावीर ने तो सब छोड़ दिया, और मरे की तुम जो चाहो, तुम्हारे हाथ में है, मजबूरी है, जो चाहो करो।
बुद्ध ने कहा था, मेरी मूर्तियां मत बनाना। लेकिन जितनी मूर्तियां बुद्ध की हैं किसी और की नहीं हैं। अब तुम जो चाहो करो, तुम्हारी जैसी मर्जी। एक-एक मंदिर में दस-दस हजार मूर्तियां हैं बुद्ध की। पुजारी भी कम पड़े जा रहे हैं। दस हजार मूर्तियां हैं।
पूजा कभी की बंद हो चुकी, उपचार रह गया है।

तीसरा प्रश्नः कल कहा गया कि कोई किसी को सुख या दुख नहीं दे सकता है, यदि दूसरा लेने को राजी न हो। और यह भी कहा गया कि यदि कोई स्वयं आनंद को उपलब्ध हो, तो उस आनंद की वर्षा अनायास दूसरों पर हो जाती है। आप हमें स्वार्थी होने का लाभ तो नहीं बता रहे हैं?

बड़ी देर हो गई है, अगर तुम अब तक न समझे। स्वार्थी होना ही सिखा रहा हूं। लेकिन जल्दी मत कर लेना समझने की, जो मैंने कहा। तुम जिसे स्वार्थ कहते हो, उसे तो मैं स्वार्थ नहीं कहता। मैं जिसे स्वार्थ कहता हूं, उसकी तुम्हें खबर भी नहीं है। तुम जिसे परार्थ कहते हो, उसे तो मैं परार्थ नहीं कहता। मैं जिसे परार्थ कहता हूं, उसकी तुम्हें कोई भी खबर नहीं है। इसलिए तुम्हारे भीतर का पूरा इंतजाम बदलना पड़ेगा। भाव ही नहीं बदलने पड़ेंगे, तुम्हारी भाषा भी बदलनी पड़ेगी। क्योंकि तुम्हारे भावों ने तुम्हारी भाषा को भी दूषित कर दिया है।

स्वार्थ शब्द बड़ा प्यारा है, लेकिन खराब हो गया है। उसका अर्थ होता हैः स्वयं के हित में, स्वयं के अर्थ में। स्वार्थ को आत्मार्थ कहो। खोजी आत्मार्थी है। आत्मार्थ कहते ही तुम्हें अड़चन नहीं होती; बिल्कुल ठीक, प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं कि बात बिल्कुल ठीक है। स्वार्थ कहते ही अड़चन हो जाती है। स्व का अर्थ आत्मा है।
लेकिन तुमने अहंकार को स्व समझा है, इसलिए अड़चन हो रही है। अब यह बड़ी उलझन की बात है। पहले तुम अहंकार को स्व समझ लिए, वहीं भूल हो गई। वह तुम्हारा स्व नहीं, वह तुम्हारी आत्मा नहीं, वह तुम नहीं--वह एक झूठ है, जो

तुमने ईजाद की और समाज ने तुम्हारी ईजाद में सहारा दिया। क्योंकि समाज चाहता है, तुम सच्चे न होओ, झूठे होओ। झूठों पर हुकूमत करनी आसान है। सच्चे बगावती होते हैं। सत्य विद्रोही है। झूठ अनुगामी हो जाता है। झूठा व्यक्तित्व डरा रहता है।
तो समाज के ठेकेदार चाहते हैं तुम झूठे रहो। राजनेता चाहते हैं तुम झूठे रहो। पंडित-पुरोहित चाहते हैं तुम झूठे रहो। तुम जितने झूठे हो उतना ही उनका धंधा ठीक से चलता है। तुम जितने सच्चे हुए उतना ही उनका धंधा टूटने लगता है। सच्चे आदमी को कहां जगह है मंदिरों में? सच्चे आदमी की कहां गुंजाइश है मस्जिदों में? सच्चे आदमी की कहीं भी तो जगह नहीं।
जीसस ने कहा है, लोमड़ियों को भी जगह है छिपा लेने को सिर, मेरे लिए नहीं।
अहंकार झूठ है। अहंकार का अर्थ क्या होता है? अहंकार का अर्थ होता हैः मैं इस समस्त अस्तित्व से अलग हूं, अलग-थलग हूं। मैं मैं हूं और यह सारा संसार मुझसे अलग है। यह सारा अस्तित्व अलग है, मैं अलग हूं। यह अहंकार का अर्थ है। यह झूठ है। तुम अलग नहीं हो, एक क्षण को अलग नहीं हो। श्वास से जुड़े हो, सूरज की किरणों से जुड़े हो, भोजन से जुड़े हो, सब तरफ से जुड़े हो, चैतन्य से भी जुड़े हो।
जैसे रोज-रोज तुम भोजन लेते हो और शरीर जीता है, ऐसे रोज-रोज तुम परमात्मा भी पीते हो और आत्मा जीती है, अन्यथा आत्मा भी न जी सकेगी। जुड़े हो, एक हो। अहंकार भ्रम है।
तो पहले तो एक भ्रम को मान लिया कि अहंकार है, एक झूठ स्वीकार कर लिया।
अब जब अहंकार मान लिया तो स्वार्थ बुरा हो गया। स्वार्थ बुरा हो गया तो तुम्हें शिक्षक मिल जाते हैं जो परार्थ सिखाते हैं। अब बुनियाद से झूठ खड़ी हो गई। बुनियाद में अहंकार को मान लिया, मैं हूं। मैं मान लिया तो अब मैं के आधार पर जितने काम तुम करते हो, वे सब बुरे मालूम पड़ते हैं। क्योंकि मैं झूठ है, झूठ के सहारे जो भी होगा पाप होगा। तो स्वार्थ बुरा हो गया। अब जब स्वार्थ बुरा हो गया तो इलाज क्या करें? बीमारी पकड़ गई तो औषधि चाहिए, तो परार्थ करो।
लेकिन मजा यह है, बुनियाद को ही हम क्यों न बदल डालें? गलत बुनियाद पर क्यों यह मकान खड़ा करें? बुनियाद झूठ, फिर पहली मंजिल खड़ी होती है स्वार्थ की, उसके ऊपर परार्थ की दूसरी मंजिल खड़ी होती है। तुम्हारा स्वार्थ भी झूठा, तुम्हारा परार्थ भी झूठा, क्योंकि तुम झूठे हो।
मैं तुम्हें स्वार्थ सिखाता हूं। क्योंकि मैं जानता हूं, तुम्हारे परम स्वार्थ में ही परार्थ संभव है, अन्यथा नहीं। मैं तुमसे कहता हूं, तुम अपने आनंद को पा लो। क्योंकि वही एकमात्र राह है कि दूसरों के ऊपर तुम्हारा आनंद बरस सके और उन्हें मिल सके। अपने भीतर का दीया जला लो तो दूसरों को भी तुम्हारी रोशनी दिखाई पड़ने लगे; तुम्हारे दीए की रोशनी में कोई दूसरा भी राह खोज ले सकता है।
यही तो सत्संग का अर्थ है। किसी और के दीए की रोशनी में तुम राह खोजते हो--राह है कि तुम्हारा अपना दीया भी तुम जला लो। जो शांति को उपलब्ध है, उसके आसपास शांति बरसती है। जो परमात्मा को उपलब्ध है, उसके आसपास परमात्मा परिक्रमा करता है। परमात्मा को उपलब्ध व्यक्ति के पास पहुंचकर तुम्हें भी परमात्मा की पगध्वनियां सुनाई पड़ने लगेंगी, तुम्हें भी स्पर्श होने लगेगा किसी अनूठी घटना का, तुम भी अपने को किसी और ही बहाव में बहता हुआ पाओगे।
सत्संग का अर्थ हैः ऐसा व्यक्ति, जो सत्य को पा गया है। तुम उसकी लहर
का लाभ ले लेना; अपना पाल खोल देना, उसकी हवा आए, तुम्हें भी ले जाए।
नदी में या तो पतवार चलाओ या पाल खोल दो। अहंकार पतवार चलाता है, पाल नहीं खोलता। अहंकार अपनी ही चेष्टा करता है, परमात्मा को कुछ नहीं करने देता।
सत्संग का अर्थ हैः रखो पतवार अलग, बहुत खे ली, कितने जन्मों से खे रहे हो, पहुंचे कहां? किनारे से दूर भी नहीं गए हो, खूटियां किनारे पर ही गड़ी हैं। नाव जंजीरों से बंधी है और तुम पतवारें चला रहे हो? नाहक मेहनत कर

रहे हो, व्यर्थ पसीना-पसीना हुए जा रहे हो। कितने जन्म गंवा दिए। छोड़ो, पाल खोलो। हवाओं का रुख पहचानो। अगर पूरब जाना है तो देखो, कब हवाएं पूरब जा रही हैं, तब पाल खोल दो और हवाओं पर सवार हो जाओ।
जब तुम किसी परमात्मा को उपलब्ध व्यक्ति के पास पहुंचते हो, अपने पाल खोल दो। वह आदमी परमात्मा की तरफ जा ही रहा है, जा ही रहा है, जा ही रहा है-- तुम भी सवार हो जाओ। तुम भी थोड़ी देर उसकी रौ में बह लो। तुम भी थोड़ा स्वाद ले लो। माना, दीया उसका है--उसकी रोशनी में तुम भी अपने अंधेरे रास्ते को थोड़ा रोशन कर लो।
स्वार्थ सिखाता हूं, क्योंकि तुम अगर हो जाओ, तुम अगर आनंदित होओ, शांत होओ, प्रफुल्ल होओ, तुम्हारे जीवन में फूल खिलें--दूसरों को गंध भी मिलेगी। अगर वे न लेना चाहें, बात अलग। क्योंकि फूल के पास से भी तुम अपनी नाक रूमाल से बंद करके गुजर जा सकते हो, इसमें फूल बेचारा क्या करे! सूरज नाचता हो चारों तरफ, तुम आंख बंद करके बैठे रह सकते हो, इसमें सूरज बेचारा क्या करे! यह तुम्हारी मर्जी।
लेकिन मैंने एक ही बात जानी है अब तकः उन्हीं से परार्थ हुआ है, जिन्होंने पहले स्वार्थ साध लिया है। और यह बात ठीक है, गणित की है, साफ है। क्योंकि जो अपना ही नहीं हुआ अभी, वह दूसरे का क्या हित कर सकेगा? जिसने अपना हित न साधा, वह दूसरे का क्या हित कर सकेगा? तुम अपने बुझे दीए लेकर दूसरों के दीए जलाने मत निकल पड़ना। खतरा यह है कि दीया तो तुम जला ही न सकोगे--कैसे जलाओगे, तुम्हारा ही बुझा है--खतरा यह है कि कहीं तुम दूसरों के दीयों के जलने की संभावना में बाधा न बन जाओ। तुम्हारी अनुकंपा होगी, मत जाना दूसरों के पास।
मैं तुम्हें सेवा नहीं सिखाता, मैं तुम्हें स्वार्थ सिखाता हूं। यद्यपि मैं जानता हूं कि जब तुम्हारा स्वार्थ पूरा होगा, तुम्हारे जीवन में सेवा आ जाएगी। सेवा परिणाम है।
साधारणतः तुम्हें उलटी बात सिखाई जा रही है। लोग कहते हैं, सेवा करो
तो तुम अपने को पा लोगे। मैं तुमसे कहता हूं, अपने को पा लो तो सेवा हो सकेगी। तुम सेवा करोगे कैसे? तुम्हारे पास है क्या जो तुम देने जाओगे? तुम अपना जहर ही दूसरों की जिंदगी में मत डाल आना।
और यही हो रहा है। पति कहता है, मैं पत्नी को प्रेम करता हूं, उसका सुख चाहता हूं। लेकिन पत्नी से पूछो, वह कहती है, यह आदमी दुख दे रहा है। पत्नी सोचती है, मैं पति को सुख दे रही हूं, सारा इंतजाम सुख देने का कर रही हूं, चौबीस घंटे उसी की सेवा में रत हूं। पति से पूछो कि पत्नी से सुख मिल रहा है? वह कह रहा है कि अकेले थे तब सुखी थे, मगर यह बड़ी देर से पता चला। अब फिर अकेले होना चाहते हैं। लेकिन अब बड़ा मुश्किल है; पत्नी है, बच्चे हैं, उत्तरदायित्व है।
तुम्हें अपने अकेले होने का सुख तभी पता चलता है, जब दूसरा बंध जाता
है और दुख शुरू हो जाता है। मां-बाप कहते हैं, हम बच्चों के सुख के लिए सब कर रहे हैं। बच्चों से भी तो पूछो! बच्चे कहते हैं, ये दुष्ट हैं, ये सता रहे हैं, स्वतंत्रता नष्ट कर रहे हैं, अपने को हमारे ऊपर जबर्दस्ती थोप रहे हैं। मां बैठी है, बच्चे को टेबल पर खाना खिला रही है। आंसू बह रहे हैं बच्चे के, वह खाना नहीं चाहता, मां डंडा लिए बैठी है। ठूंस रहा है बच्चा किसी तरह। और देखो उसके आंसू बह रहे हैं। और मां उस पर कृपा कर रही है, सेवा कर रही है। बच्चे से पूछो। बच्चे कहते हैं, कितनी जल्दी बड़े हो जाएं, बस! ताकि यह झंझट मिटे।
एक मां अपने छोटे लड़के को पालक की सब्जी खाने के लिए जबर्दस्ती कर रही थी। अब पालक! उसे समझा रही थी, इससे ताकत आएगी, शक्ति बढ़ेगी। बच्चा रो रहा है। उसने कहा, अच्छा खाए लेता हूं! लेकिन इसीलिए खा रहा हूं कि शक्ति बढ़ जाए, ताकि मुझे फिर कोई पालक न खिला सके।
तुम थोपे जा रहे हो। तुम्हारी सेवा से यह संसार बना है--इतना कुरूप, इतना वीभत्स, इतना रुग्ण। और सब एक-दूसरे की सेवा कर रहे हैं, सब एक-दूसरे को प्रेम कर रहे हैं, करुणा बरस रही है। और परिणाम क्या है?

कहीं कुछ भूल हो रही है। कहीं कोई बड़ी बुनियादी भूल हो रही है। और वह भूल यह है कि तुम्हें खुद जीवन का कोई रस नहीं आया और तुम दूसरे को रस देने की कोशिश कर रहे हो। तुम्हें खुद तरीका नहीं आया जीवन का, तुम्हारे खुद ढंग-ढौल रास्ते पर नहीं हैं। तुम्हारे मां-बाप ने तुम्हें बिगाड़ा सेवा करके, तुम अपने बच्चों को बिगाड़ रहे हो सेवा करके।
नेताओं से पूछो, वे कहते हैं कि देश को हम आगे ले जाने के लिए प्राण लगाए हुए हैं। जनता से पूछो, वे कहते हैं, ये सब शरारती हैं, सब चालबाज हैं, सब बेईमान हैं। कोई निक्सन पकड़ा गया, कोई नहीं पकड़ा गया, बाकी हैं सब एक से। नेता जान गंवाए दे रहा है और वह सोच रहा है कि शहीद हुआ जा रहा है। जनता कहती है, तुम शहीद हो ही जाओ, फिर हम तुम्हारे मजार पर मेले भरेंगे, मगर तुम शहीद तो हो जाओ! किसी तरह हमारी गर्दन से नीचे उतरो। बहुत छाती पर बैठ लिए, हटो!
इसलिए जैसे ही कोई नेता गद्दी से नीचे उतरा, जनता बिल्कुल भूल जाती है। याद ही नहीं आती, अखबारों से नाम खो जाता है, लोगों की जबान से नाम खो जाता है, लोग बिल्कुल भूल जाते हैं। माजरा क्या है? मामला क्या है?
मैंने सुना है, एक ईसाई पादरी ने रविवार की धर्मकक्षा में अपने बच्चों को समझाया कि कम से कम एक सेवा का काम रोज करना चाहिए। दूसरी बार उसने पूछा, तीन लड़कों ने हाथ हिलाया कि हमने सेवा का काम किया, आज ही किया। वह बहुत खुश हुआ। उसने पहले से पूछा, क्या सेवा का काम किया? उसने कहा कि एक बूढ़ी स्त्री को रास्ता पार करवाया। इस तरफ से उस तरफ जाना था, ट्रेफिक भारी था, कारें दौड़ रहीं, बसें दौड़ रहीं, साइकिलें! बुढ़िया काफी बूढ़ी थी, उसको पार करवाया।
पादरी ने कहा, परमात्मा इसका फल देगा, मैं खुश हूं। दूसरे से पूछा कि तूने क्या किया? उसने कहा, मैंने भी बुढ़िया को रास्ते के पार करवाया। थोड़ा पादरी चिंतित हुआ, इतनी बुढ़ियाएं एकदम कहां से आ गयीं! तीसरे से पूछा, उसने कहा कि मैंने भी बुढ़िया को रास्ते के पार करवाया। उसने कहा, तुम सबको इतनी बुढ़ियाएं मिल गयीं? आज ही? उन्होंने कहा, बुढ़िया तो एक ही थी, हम तीनों को करवाना पड़ा, क्योंकि वह उस तरफ जाना ही न चाहती थी। मगर करवा दिया पार! तुम्हारे सेवक, तुम पैर नहीं भी दबवाना चाहते, तो दबाए जा रहे हैं।
मेरे साथ ऐसा बहुत बार हुआ। एक बार एक भक्त रात को दो बजे--मैं ट्रेन
से सफर कर रहा था--रात को दो बजे डब्बे में चढ़ आया। उसने मेरे पैर दबाने शुरू कर दिए। अचानक मेरी नींद खुली। मैंने पूछा, भाई कौन हो? क्या कर रहे हो? उसने कहा कि आप सोए रहें निश्चिंत, मैं तो सेवा कर रहा हूं। कई दिन से इच्छा रही है, लेकिन आपके भक्तगण भीतर घुसने ही नहीं देते। तो मैंने कहा, ठीक है देख लेंगे, सेवा तो करके ही रहेंगे। आप तो सोएं, मैं पैर दबाऊंगा। मैंने कहा, महाजन! मैं सोऊंगा कैसे, तू इतने जोर से पैर दबा रहा है? तुझे मेरी फिक्र नहीं है कि दो बजे रात सोए आदमी को उठा दिया!
मगर एक घंटा उसने मेरा पीछा न छोड़ा। एक घंटा जब तक गाड़ी उस स्टेशन पर खड़ी रही--जंक्शन था और वहां एक घंटा गाड़ी रुकती है--और वह एक घंटा पैर दबाता ही रहा। वह बड़ा प्रसन्न है, उसने सेवा की। वह सोच रहा है, उसने पुण्य कमाया। अगर परमात्मा के सामने मेरा उससे मुकाबला हुआ तो मैं न कह सकूंगा, इसने पुण्य कमाया। मेरे हिसाब में तो इसने पाप कमाया। मगर मेरी कौन सुनता है! सेवक कहीं किसी की सुनते हैं! सब किए जा रहे हैं सेवा।
तुम्हारी सेवा से युद्ध पैदा हो रहे हैं। तुम्हारी सेवा से राष्ट्र बनते हैं, मूढ़ताएं पैदा होती हैं, राजनीति खड़ी होती है, हजार तरह के जाल रचते हैं--और सब सेवा कर रहे हैं! तुम्हारी सेवा कहीं बुनियादी रूप में भूल-भरी मालूम पड़ती है।
मैं तुम्हें सेवा नहीं सिखाता, मैं तुम्हें स्वार्थ सिखाता हूं। हां, तुम्हारे स्वार्थ की जब पूर्णता आ जाएगी तब तुम्हारे जीवन में एक सेवा होगी। लेकिन वह सेवा बड़ी और होगी। वह बड़ी सौम्य होगी, प्रेम से जगेगी। और ध्यान दूसरे पर होगा, ध्यान अपने पर न होगा। अगर बच्चा भोजन नहीं कर रहा है, तो छोड़ दो उसे उसकी मर्जी पर। प्रकृति ने खुद ही इंतजाम किया है, भूख लगेगी और वह भोजन कर लेगा। तुम भूख के बिना भोजन मत थोपो।

अगर तुम प्रेम करते हो पत्नी को तो मुक्ति दो, बांधो मत। अगर पत्नी चाहती है कि पति प्रसन्न हो, आनंदित हो, तो बांधो मत, मुक्त करो। ईर्ष्या के घेरे मत खड़े करो। जेलखाना मत बनाओ घर को। नहीं तो जिनको हम घर कहते हैं, सभी जेलखाने हो गए हैं।
तुम्हारा स्वार्थ पूरा हो जाए--और मेरा अर्थ है स्वार्थ का कि तुम परमात्मा को पा लो--फिर सब अपने से हो जाएगा। पहले बुनियादी चीज हो जाए। तू चिरागे-बज्मे-उल्फत को बुझाकर शाद है
प्रेम के दीए को बुझाकर तुम सोच रहे हो कि तुम प्रसन्न हो।
तू चिरागे-बज्मे-उल्फत को बुझाकर शाद है
दौलते-यजदां को मिट्टी में मिलाकर शाद है
और ईश्वरीय संपदा को मिट्टी में मिलाकर तुम सोचते हो, तुम प्रसन्न हो? क्या न फूटेगी तेरे दिल में सदाकत की किरन
क्या कभी तुझे होश न आएगा? क्या सत्य की किरण तेरे जीवन में कभी न फूटेगी? क्या तू अपने को झूठ और धोखे दिए ही चला जाएगा?
तू चिरागे-बज्मे-उल्फत को बुझाकर शाद है
दौलते-यजदां को मिट्टी में मिलाकर शाद है
क्या न फूटेगी तेरे दिल में सदाकत की किरन
क्या साधुता का कभी जन्म न होगा?
दर्दे-दिल ही जन्नते-गुमगश्ता है पहचान ले
प्रेम और प्रेम से जो पीड़ा पैदा होती है--दर्दे-दिल ही जन्नते- गुमगश्ता है--वही एकमात्र स्वर्ग है जो प्रेम की पीड़ा से पैदा होता है। और कोई स्वर्ग नहीं है।
दर्दे-दिल ही जन्नते-गुमगश्ता है पहचान ले
है मुहब्बत ही हयाते-सरमदी पहचान ले
प्रेम ही सत्य का द्वार है।
है मुहब्बत ही हयाते-सरमदी पहचान ले
वही सत्य का जीवन है।
तू अगर मेरा नहीं बनता न बन अपना तो बन
मैं स्वार्थ सिखाता हूं।
तू अगर मेरा नहीं बनता न बन अपना तो बन
अपना तू बन जाए तो सबका हो गया।
जितना तुम भीतर जाओगे और अपने को पाओगे, उतना ही प्रेम तुम्हारे जीवन में आएगा। और वह प्रेम भी ऐसा प्रेम कि किसी के ऊपर आक्रामक न होगा। वह प्रेम भी ऐसा प्रेम कि तुम बांटोगे, थोपोगे नहीं। उस प्रेम में हिंसा न होगी। वह प्रेम ऐसा नाजुक होगा जैसे फूल की सुगंध, सुबह की पहली किरण! उसके पदचाप भी कहीं सुने न जाएंगे।
जिन्होंने स्वयं को जानकर सेवा की है, उन्होंने कहीं घोषणा नहीं की
कि हम सेवक हैं। जो भी घोषणा सेवक होने की करता है, सेवा का उसे पता ही नहीं है। वह सेवा से भी कुछ अहंकार ही खोज रहा है।
सेवकों के अहंकार बड़े प्रगाढ़ होते हैं। उनको जरा गौर से देखो, तुम उन्हें महान अहंकारी पाओगे। और जहां अहंकार है, वहां कैसी सेवा? वहां सेवा भी शोषण है। वहां वह भी तरकीब है अपने अहंकार के शिखर को ऊंचा करने की, अहंकार की पताकाएं फहराने की।
तू अगर मेरा नहीं बनता न बन अपना तो बन

आखिरी प्रश्नः कल आपने समझाया कि पुण्य अर्थात जो आनंदित करे, मुक्त करे! तो फिर इस कथन का क्या अर्थ है कि पाप से तो मुक्त होना ही है, पुण्य से भी मुक्त होना है?

निश्चित ही, पाप से तो मुक्त होना है। मैंने कहा, पाप वह, जो बाहर ले जाए। मैंने कहा, पुण्य जो भीतर लाए। लेकिन बाहर से तो मुक्त होना ही है, भीतर से भी मुक्त होना है। पहले बाहर से मुक्त हो लो, तब तत्क्षण तुम पाओगे कि जिसे हमने भीतर कहा था, वह बाहर की तुलना में भीतर था। जैसे ही बाहर से

तुम मुक्त हुए, वैसे ही तुम पाओगे कि अब तक जो भीतर मालूम पड़ता था, अब वह भी बाहर मालूम पड़ता है। क्योंकि तुम्हारी तुलना में तो वह भी बाहर है। तुम तो वहां हो जहां बाहर भी नहीं है और भीतर भी नहीं है--तुम तो साक्षी-मात्र हो। दुख से तो मुक्त होना ही है, सुख से भी मुक्त होना है। दुख तो बांधता
ही है, सुख भी बांध लेता है। इसलिए सिर्फ हमारे मुल्क में तीन शब्द हैं, सारे संसार में कहीं नहीं हैं, क्योंकि इतनी गहरी किसी ने कभी खोज नहीं कीः स्वर्ग है, नरक है, मोक्ष है। ईसाइयत के पास दो शब्द हैंः स्वर्ग और नरक। इस्लाम के पास दो शब्द हैंः स्वर्ग और नरक। सिर्फ इस देश में हमारे पास तीन शब्द हैंः स्वर्ग, नरक और मोक्ष। नरक यानी पाप, पाप का फल, पाप की सघनता। स्वर्ग यानी पुण्य, पुण्य का फल, पुण्य की सघनता। मोक्ष--दोनों के पार।
जिसने दुख छोड़े, एक दिन पाता है कि सुख भी छोड़ देने योग्य है। क्योंकि सुख में भी उत्तेजना है। और जब तक सुख है तब तक किसी न किसी तरह दुख भी कहीं छिपा हुआ कोने-कातर में बना ही रहेगा, नहीं तो सुख का पता कैसे चलेगा? तुम्हें आनंद का भी पता इसीलिए चलेगा, क्योंकि तुमने बहुत दिन तक आनंदरहितता का अनुभव किया था। आनंद को भी छोड़ जाना है। जाना है, पहुंचना है वहां, जहां कोई अनुभव न रह जाए--क्योंकि सभी अनुभव बांधते हैं--जहां तुम शुद्ध चैतन्य रह जाओः कैवल्य, मोक्ष, निर्वाण।
निश्चित ही, आनंद से भी तसल्ली न होगी।
किसी सूरत किसी उन्वां से तलाफी न हुई
किस कदर तल्ख हकीकत है न मिलना तेरा
दुख से तो होगी ही नहीं तृप्ति, किसकी होती है? सुख से भी नहीं होती!
जब तक कि सत्य ही न मिल जाए, परमात्मा ही न मिल जाए, जब तक कि तुम परमात्मा ही न हो जाओ... ।
किसी सूरत किसी उन्वां से तलाफी न हुई
किस कदर तल्ख हकीकत है न मिलना तेरा
न मिलना परमात्मा का, सत्य का, आत्मा का--कोई भी नाम दो--बड़ी कठिन वास्तविकता है। कुछ भी और तुम पालो, पाते ही पाओगे, मंजिल आगे सरक गई। दुख छोड़ो, सुख पा लो; बाहर जाना छोड़ो, भीतर आना शुरू कर दो; बाहर जाने की बजाय भीतर आना बेहतर; दुख की बजाय सुख बेहतर--लेकिन वह तुलना दुख से है, स्वयं से नहीं। स्वयं तो तुम वही हो जहां न कोई दुख उठता है, न कोई सुख। तुम सिर्फ बोध मात्र हो।
कभी सफेद बादल घिरते आकाश में, कभी काले बादल--आकाश दोनों से अलग है। कभी लोहे की जंजीरें पहनते तुम, कभी सोने की--तुम दोनों जंजीरों से अलग हो। कभी फूलों से खेलते, कभी कांटों से--तुम दोनों से अलग हो। रात आती, सुबह आती--तुम दोनों से अलग हो।
यह तुम्हारा जो पार होना है! प्रत्येक अनुभव से तुम अलग होओगे ही, क्योंकि अनुभव के भी तुम द्रष्टा हो। जब तुम कहते हो, बड़ा आनंद, तब गौर से देखोः तुम अलग खड़े देख रहो कि आनंद है। आनंद से तुम अलग हो।
पर पहले बाहर से तो भीतर आओ, फिर भीतर से भी छुड़ा लेंगे। आखिर में जब कुछ न बचे, आखिर में जब बस तुम ही बचो, तुम्हारा शुद्ध होना बचे--तो बुद्धत्व।
धर्म कोई अनुभव नहीं, धर्म अनुभव-अतीत है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 3
सत्ताईसवां प्रवचन

लाभ-पथ नहीं, निर्वाण-पथ

न हि पापं कतं कम्मं सज्जु खीरं" व मुच्चति।
उहंत बालमन्वेति भस्माच्छन्नो" व पावक।। 65।।

अनत्थायांतंबालस्स जायति।
हन्ति बालस्स सुक्कंसं मुदमस्स विपातयं।। 66।।

असतं भावनमिच्छेय्य पुरेक्रवारं च भिक्खुसु।
आवासेसु च इस्सरियं पूजा पर कुलेसु च।। 67।।

ममेव कतमांंयन्तु गिही पूब्बजिता उभो।
ममेवातिवसा अस्सू किच्चकिश्चेसु किस्मिचि।
इति बालस्स संकल्पो इच्छा मानो च बड्ढति।। 68।।

अांं हि लाभूपनिसा अांं निब्बानगामिनी।
एवमेतं अभिंंये भिक्खु बुद्धस्स सावको।
सक्कारं नाभिनन्देय्य विवेकमनुबूहये।। 69।।

ज्ञान की खोज तो सभी करते हैं, लेकिन ज्ञान तक पहुंच केवल वे ही पाते हैं, जो मूढ़ता के गणित को ठीक से समझ लेते हैं। असली सवाल सत्य को पाने का नहीं है; क्योंकि सत्य वही है, जो मिला ही हुआ है। असली सवाल सूरज की तलाश का नहीं है; क्योंकि सूरज वही है, जो उगा ही हुआ है। असली सवाल है कि तुमने कैसे सत्य से अपने को दूर किया। असली सवाल है कि तुमने कैसे सत्य की तरफ पीठ की। असली सवाल है कि तुमने कैसे आंखें बंद कीं, कि सूरज मौजूद है और तुम अंधेरे में हो गए।
सत्य की खोज नकारात्मक है। मार्ग से बाधाएं हटानी हैं। झरना बहने को प्रतिपल तैयार है, झरने पर रखी चट्टान अलग करनी है। इसलिए जो झरने की खोज में जाएगा, वह झरने को नहीं पा सकेगा। जो चट्टान की खोज करेगा ठीक से--कहां है, क्या है--और चट्टान को हटाने में सफल हो जाएगा, वह झरने को पा लेगा। तुम जहां हो, तुम जैसे हो, सत्य में ही खड़े हो। सत्य तुम्हारा स्वभाव है। हर सांस में वही आता है, हर सांस में वही जाता है। यह कहना उचित नहीं है कि तुम श्वास लेते हो, यही कहना ज्यादा उचित है कि सत्य ने तुममें श्वास ली है। यह कहना ठीक नहीं कि परमात्मा तुम्हारे भीतर है, यही कहना ज्यादा ठीक है कि तुम परमात्मा के भीतर हो। उसी ने तुम्हारे हृदय में धड़कन ली है। वही तुम्हारे रगों में खून बनकर बहा है। वही है तुम्हारी देह, वही है तुम्हारा मन, वही है तुम्हारे चैतन्य का आकाश।
उसे खोया कभी नहीं है; भूल गए हैं, विस्मरण किया है। अगर खो दिया हो, तो खोजना असंभव है। अगर विस्मरण किया है, तो स्मरण लाया जा सकता है। वह तुम्हारी जबान पर ही रखा है। जरा से पुकारने की बात है।
इसलिए तो नाम-स्मरण का इतना मूल्य हो गया। जरा सा उसका नाम याद करना है; भूला तो कभी नहीं है। झीना सा पर्दा है विस्मृति का, हटाते ही मिल जाएगा। इसलिए बुद्ध पुरुषों ने सत्य को कैसे पाया जाए, यह नहीं कहा; इतना ही कहा कि असत्य को तुमने कैसे पकड़ा है। इतना तुम्हें समझ में आ जाए; तुम असत्य छोड़ दो। सत्य मिला हुआ है।
इसलिए मूढ़ता के गणित को समझ लेना जरूरी है, क्योंकि वही चट्टान है। तुमने ठीक से मूढ़ता का विश्लेषण कर लिया तो कुछ और करने को शेष नहीं रह जाता।
मूढ़ता की पहली तो बुनियाद यह है कि मूढ़ता कभी स्वीकार नहीं करती कि मैं मूढ़ हूं। वहीं से मूढ़ता का भवन खड़ा होता है। मूढ़ता हजार उपाय करती है

सिद्ध करने की कि मैं मूढ़ नहीं हूं। तुमने भी यही किया है। सभी ने यही किया है।
इसलिए पहला सूत्र तो समझ लो कि तुम्हें जागना है इस संबंध में। तुममें मूढ़ता अगर है तो उसे स्वीकार करना है। उसकी स्वीकृति में ही उसके आधे प्राण निकल जाते हैं। आधार अलग हो गया। भवन डगमगा जाता है। पैर ही टूट जाते हैं। मूढ़ता लंगड़ी हो जाती है। मूढ़ता चलती है सत्य के ज्ञान के उधार पैरों से। उसके पास अपने कोई पैर नहीं। इसलिए मूढ़ आदमी सदा चेष्टा में लगा रहता है सिद्ध करने की, कि मैं मूढ़ नहीं हूं। उस चेष्टा में वह अपनी बीमारी को बचाता है।
थोड़ा सोचो, तुम बीमार हो और अगर तुम यह चेष्टा करते रहो कि मैं बीमार नहीं हूं और तुम चिकित्सक को यह कहो कि बीमार हूं ही नहीं, तो फिर तुम्हारी चिकित्सा न हो सकेगी। फिर इलाज खोजा न जा सकेगा। फिर तो तुमने अपनी बीमारी को ही अपनी आत्मा बना लिया। पहली तो बात हैः निदान; ठीक से पहचान कि बीमारी बीमारी है।
यह स्वीकार करने में अहंकार को बड़ी पीड़ा होती है कि मैं मूढ़ हूं। किसी
को मूढ़ कहकर देखो! कोई धन्यवाद न देगा, गालियां बरसाने लगेगा। हम सुरक्षा कर रहे हैं उसकी, जो हमारी मौत है। हम उसे हजार-हजार उपायों से बचा रहे हैं, जो गले में फांसी है।
मूढ़ बड़े तर्क करता है अपने को बचाने के लिए। मूढ़ यह कह सकता है कि ईश्वर नहीं है और तर्क खोज सकता है। ज्यादा से ज्यादा इतना ही कहो कि मुझे पता नहीं है। समझदारी की पहली यात्रा शुरू हो गई। इतना ही कहो, मुझे पता नहीं है। और इतना ही पता हो जाए तो काफी हुआ। ईश्वर नहीं है, इसे तुम कैसे कहोगे? किस आधार पर कहोगे? लेकिन मूढ़ कहता है, ईश्वर नहीं है। असल में वह ईश्वर की चुनौती से डरा हुआ है। अगर ईश्वर है तो खोजना पड़ेगा। अगर ईश्वर है तो मुझे मिटना पड़ेगा। अगर ईश्वर है तो मैं न हो सकूंगा।
फ्रेडरिक नीत्शे ने अपने एक पत्र में लिखा है कि या तो ईश्वर हो सकता
है, या मैं हो सकता हूं; तो यही उचित है कि ईश्वर न हो। मैं तो हूं। इतना तो साफ है, पक्का है, मैं हूं। ईश्वर नहीं होगा। एक म्यान में दो तलवारें न रह सकेंगी, ऐसा लिखा है फ्रेडरिक नीत्शे ने। मैं और ईश्वर एक साथ कैसे हो सकेंगे इस अस्तित्व में? अगर ईश्वर होगा तो मैं मिटा।
इसलिए मूढ़ अपने अहंकार को बचाने के लिए ईश्वर नहीं है, ऐसा कहेगा। कहना था इतना ही, मुझे पता नहीं है। इतना अनंत विस्तार है, कहां छिपा हो ईश्वर, मुझे पता नहीं।
एक तरह के मूढ़ कहेंगे कि ईश्वर नहीं है। दूसरे तरह के म.ूढ कहेंगे कि ईश्वर है। उन्हें भी पता नहीं है। जितनी मूढ़ता इस बात में है कि ईश्वर नहीं है, उतनी ही मूढ़ता दूसरी बात में भी है कि ईश्वर है। तुम्हें पता कहां? काश! इतना ही तुम्हें पता हो जाता, तो फिर तो कुछ और करने को न बचा था। पता नहीं है और तुम कहते हो, ईश्वर है! यह भी विपरीत रास्ते से--जो नहीं है तुम्हारे पास, जो ज्ञान तुम्हारे पास नहीं है, उसको मान लेने की तरकीब हुई।
एक नास्तिक का ढंग हुआ मूढ़ता को बचाने का; एक आस्तिक का ढंग हुआ मूढ़ता
को बचाने का। नास्तिक ही मूढ़ होते तो कोई बड़ा खतरा न था, नास्तिक बहुत थोड़े हैं। आस्तिक उतने ही मूढ़ हैं। तो तुमने कैसे मूढ़ता को बचाया है, इसे समझना। इतना ही कहो कि मुझे पता नहीं है, है ईश्वर या नहीं, कौन जाने?
वेद के ऋषियों ने कहा है, हमें पता नहीं, किसने जगत बनाया! जिसने बनाया होगा, उसे ही पता हो। और कौन जाने, उसे भी पता है या नहीं! बड़े अनूठे लोग रहे होंगे। हमें पता नहीं है कि कैसे यह जगत बना; कैसे यह आविर्भाव हुआ; कैसे शून्य आकाश से इतने रंग-बिरंगे रूप निकले, कैसे यह अभिव्यक्ति का फैलाव हुआ! हमें पता नहीं है। जिसने बनाया होगा उसे ही पता होगा। और कौन जाने, उसे भी पता न हो!
इतनी हिम्मत की बात वेद के अतिरिक्त किसी शास्त्र में नहीं है--कौन जाने उसे भी पता न हो! क्योंकि यह कहना--थोड़ा समझना, बारीक है--यह कहना कि उसे पता है, परोक्ष में यह कहना है कि हमें पता है। कौन कह रहा है, उसे पता

है? वह स्वयं तो नहीं कह रहा है। मैं कहता हूं कि ईश्वर ने दुनिया को बनाया। और उसको पता है कि दुनिया के बनाने का कारण क्या है, क्यों बनाया। लेकिन यह कह तो मैं ही रहा हूं। यह वक्तव्य तो मेरा ही है। यह ईश्वर भी मेरा; यह ईश्वर की स्रष्टा की तरह की धारणा भी मेरी; और इस ईश्वर को पता है, यह भी मेरा ही ज्ञान हुआ।
उपनिषद, वेद के ऋषि ने अदभुत बात कही, कौन जाने, उसे भी पता है या नहीं! अहंकार को खड़े होने की जगह न छोड़ी। न ईश्वर को इंकार करके बचा पाओगे-- क्योंकि वेद का ऋषि यह नहीं कहता कि ईश्वर नहीं है, इतना ही कहता है, मुझे पता नहीं है। वेद का ऋषि यह भी नहीं कहता कि ईश्वर को पता नहीं है; इतना ही कहता है, कौन जाने, उसे पता हो न हो, वही जाने। न तो ईश्वर के इंकार में अहंकार को बचाया और न ईश्वर के स्वीकार में अहंकार को बचाया।
जरा सोचो, जरा ध्यान करो; तब तुम पाओगे कि ऐसी घड़ी में तुम मिटने लगे; धुएं की तरह बिखरने लगे। जब कुछ भी पता न हो तो तुम बचोगे कैसे? तुम्हारा होना ज्ञान की आड़ में बचता है। मैं जानता हूं, यही मैं के बचने की राह है। तो कोई मानकर बचता है, कोई आस्तिक होकर बचता है, कोई नास्तिक होकर बच जाता है। लेकिन तुम जब तक हो, तब तक चट्टान पड़ी है।
फिर तुम कितनी सुरक्षा करते हो! अगर तुम आस्तिक हो और कोई कहे ईश्वर नहीं है, तो मरने-मारने को उतारू हो जाते हो। तुम सोचते हो, ईश्वर को बचा रहे हो! ईश्वर को तुम्हारे बचाव की जरूरत है? तुम अपनी मूढ़ता को बचा रहे हो। मरने-मारने को तैयार हो। तुम अपनी मूढ़ता को बचा रहे हो।
अगर कोई कहेगा, ईश्वर नहीं है; तो तुम कहोगे, कौन जाने! शायद ऐसा ही हो। मुझे पता नहीं है। मैं कैसे खंडन करूं? मैं कैसे मंडन करूं? मैं हूं कौन? मेरी सामर्थ्य क्या है? अपनी वास्तविक स्थिति को इस भांति देख लेना कि उसमें कोई भी झूठ का सहारा न रहे, किसी भी झूठी धारणा का आसरा न रहे--तो तुम पाओगे, मूढ़ता को बचने की जगह न बची। यह चट्टान साफ हो जाएगी। इसे हटाना कठिन न होगा। अभी तो कोई दूसरा भी इसे हटाने आए तो तुम हटाने नहीं देते। मूढ़ता बड़ी मुखर है और बड़ी तर्कनिष्ठ है। मूढ़ता का अपना दर्शन है, अपने फलसफा हैं। और इस तरह की तरकीबें मूढ़ता निकाल लेती है, वे इतनी कुशल हैं कि कुशल से कुशल आदमी भी धोखे में आ जाए।
समझ तो ली है दुनिया की हकीकत
मगर अब अपना दिल बहला रहा हूं
जिसने दुनिया की हकीकत समझ ली हो, वह दिल बहलाएगा?
समझ तो ली है दुनिया की हकीकत
संसार का सत्य जान लिया; फिर कोई दिल बहलाएगा?
मगर अब अपना दिल बहला रहा हूं
यह बात तो ऐसे ही हुई कि जाग तो गए, पहचान तो लिया कि सपना सपना है, लेकिन अभी भी देखे जा रहा हूं। यह कैसे संभव है? जाग तो गए, पहचान गए कि हाथ में कंकड़-पत्थर हैं, हीरे-जवाहरात नहीं, अब भी मुट्ठी बांधे हैं।
मगर अब अपना दिल बहला रहा हूं
कौन बहलाएगा दिल? नहीं, पहली बात झूठ होगी। लेकिन यह भी मानने का मन नहीं होता कि मैंने संसार की असलियत को नहीं जान लिया है। लोग कहे चले जाते हैं कि सब जान लिया। कुछ सार नहीं संसार में। फिर क्यों, फिर कैसे उलझे हो? फिर कहां उलझे हो? नहीं, तुम यह भी नहीं मानना चाहते कि हमें पता नहीं है।
समझ तो ली है दुनिया की हकीकत
मगर अब अपना दिल बहला रहा हूं
ऐसे धोखे मत देना। न समझी हो तो समझना कि नहीं समझी है। समझी हो तो फिर कोई दिल नहीं बहलाता। जब समझ में आ जाए बात, जब समझ ही आ जाए तो जिसे तुम दिल कहते हो और दिल का बहलाना कहते हो, वे बचते ही नहीं। वे तुम्हारी नासमझी में ही बचते हैं। तुम्हारे अंधेरे साए में ही बचते हैं। जब सत्य का प्रकाश तुम्हें घेर लेता है तो तुम्हारे आसपास कोई अंधेरा नहीं टिक सकता।

ख्याल रखना, ये बातें किसी और के लिए नहीं हैं; तुम्हारे लिए हैं--सीधी तुम्हारे लिए। गौर से देखना कि तुमने अपनी मूढ़ता को किस ढंग से बचाया है।
हर आदमी के ढंग अलग हैं।
रंगे-निशात देख मगर मुतमइन न हो
शायद कि यह भी हो कोई सूरत मलाल की
बड़ी रंगरेलियां चल रही हैं।
रंगे-निशात देख मगर मुतमइन न हो
आश्वस्त मत हो जा। थोड़ा विचार कर, थोड़ा होशपूर्वक देख।
शायद कि यह भी हो कोई सूरत मलाल की
शायद यह भी दुख को छिपाने का कोई ढंग हो। शायद यहां भी कोई दुख छिपा हो। जल्दी से धोखे में मत आ जा। फूल देखकर जल्दी मत करना, शायद कोई कांटा छिपा हो। हर फूल में कांटे छिपे हैं; और हर खुशी में आंसुओं का वास है; और हर दिन के पीछे रात दबी है; और जहां-जहां तुमने सुख जाने हैं, वहां-वहां हमेशा दुख पाए हैं। जहां सुख ख्याल में आया, जान ही लेना--
शायद कि यह भी हो कोई सूरत मलाल की
गुलशन बहार पर है हंसो ऐ गुलो हंसो
जब तक खबर न हो तुम्हें अपने मलाल की
हंस लो। वसंत आया है, फूल खिले हैं। फूलो! हंस लो; जब तक तुम्हें पता न हो, कि जल्दी ही पतझड़ आता है; जल्दी ही सूख जाओगे।
ख्याल रखना, अगर दुख दुख जैसे ही आते, तो कौन इतना मूढ़ होता जो दुखी होता? अगर कांटे कांटे की तरह ही सीधे आ जाते और फूलों की ओट में न आते, तो कौन इतना पागल होता जो कांटों से चुभता? अगर अंधेरे सीधे-सीधे आते, रोशनियों में पीछे छिपे न आते, तो कौन पागल होता जो अंधेरे को अपने भीतर वास देता, जगह देता, स्थान देता?
नहीं, नर्क के दरवाजों पर स्वर्ग का नामपट लगा है। लोग तो स्वर्ग में
ही जाते हैं, पहुंच जाते हैं नर्क में यह बात और! नामपटों से धोखे में मत आ जाना। जिनको तुमने ईश्वर के मंदिर समझा है, बहुत संभावना है शैतान की दुकानें हों। और जिनको तुमने रंगरेलियां समझा है, उत्सव समझा है, हो सकता है, सिर्फ अपने को भुलाने के इंतजाम हों। विस्मरण करने की चेष्टाएं हों। यह दुखी आदमी हजार उपाय करता है कि दुख की याद न आए। और जिसे दुख की याद न आई, वह कभी सत्य की खोज पर निकला है? वह निकलेगा ही क्यों? बुद्ध सत्य की खोज पर निकले, क्योंकि दिखाई पड़ा, जीवन दुख है; क्योंकि दिखाई पड़ा, जीवन के पीछे मौत चली आती है। जीवन धोखा न दे पाया। जीवन के आवरण में मौत को पहचान लिया।
जरा गौर से अपने चारों तरफ देखना; जिनको तुम जिंदा कहते हो, उन सबके भीतर मौत के अस्थिपंजर दबे हैं। हर जगह से मौत ने झांका है, लेकिन उसने बड़े रंगीन चेहरे बनाए हैं। कांटे गुलाबों में ढंके हैं। यही तो अड़चन है। अन्यथा कोई भी क्यों इतनी देर तक अंधेरे में रुकता? कोई भी क्यों इतने दिन तक अज्ञान में भटकता?
"जैसे ताजा दूध शीघ्र ही नहीं जम जाता है--कहा है बुद्ध ने--वैसे ही पाप-कर्म शीघ्र ही अपना फल नहीं लाता। राख से ढंकी आग के समान जलाता हुआ वह मूढ़ का पीछा करता है।"
ताजा दूध शीघ्र ही नहीं जम जाता, थोड़ा समय लेता है। वैसे ही पाप-कर्म शीघ्र ही अपना फल नहीं लाता, थोड़ा समय लेता है; पकता है।
तो जब तुम करते हो, तुम किसी और आशा से करते हो। आशा में ही सारा भ्रम-जाल है। तुम जब बीज बोते हो, तुम सोचते हो, आम के बो रहे हो; और जब फल आते हैं तब कडुवे सिद्ध होते हैं। और मूढ़ता यही है कि तुम फलों और बीजों को जोड़ नहीं पाते। तुम यह देख ही नहीं पाते कि दोनों में कोई संबंध है।
अफ्रीका में आदिम जातियां हैं। इस सदी के पहले तक उनको यह पता ही नहीं
था कि बच्चे संभोग से पैदा होते हैं। यह पता नहीं था, क्योंकि बच्चे के पैदा होने में नौ महीने लगते हैं। फिर हर बार संभोग करने से बच्चे पैदा भी नहीं होते। पता भी कैसे चले? फासला काफी बड़ा है। तो वे--उनको ख्याल ही नहीं था यह कि संभोग से बच्चे पैदा होते हैं। उनको ख्याल था कि बच्चे तो भगवान

की कृपा से पैदा होते हैं। देवी-देवताओं का हाथ है इसमें। हजारों साल तक बच्चे पैदा होते रहे और उन्हें यह पता भी न चला कि इसका कोई संबंध संभोग से है। बीज बोने में और फल के आने में नौ महीने का फासला है।
इससे भी बड़े फासले हैं जिंदगी में। आज तुम कुछ करते हो, कभी-कभी वर्षों लग जाते हैं। काम तो शुरू हो जाता है, सिलसिला तो आज ही शुरू हो जाता है, लेकिन गर्भ पकता है, बड़ा होता है, जन्म लेते-लेते कई महीने लग जाते हैं।
"जैसे ताजा दूध शीघ्र ही नहीं जम जाता, वैसे ही पाप-कर्म शीघ्र ही अपना
फल नहीं लाता। राख से ढंकी आग के समान जलाता हुआ वह मूढ़ का पीछा करता है।" राख समझकर अंगारों को तुमने ढोया है। भीतर अंगारे हैं। राख भी बुझा हुआ अंगारा है। जहां-जहां राख हो, थोड़ा सम्हलना। तुम्हारे जीवन का सारा दुख, तुम्हारा ही बोया हुआ है। आज तुम काट रहे हो। दूसरों को तुम दोष देते हो।
समझो; कोई गाली देता है, तुम अपमानित होते हो, लेकिन गाली किसी को अपमानित नहीं कर सकती। गाली में वह ताकत नहीं है। अपमानित तो तुम होते हो क्योंकि तुमने अहंकार के बीज बोए। तुमने अपने को कुछ समझा। तुम अकड़कर रहे। फिर किसी ने गाली दी, गाली तुम्हारे अहंकार के बीज को फोड़ देती है। जैसे बीज पड़ा हो भूमि में, वर्षा आ जाए और चटक जाए, अंकुरित हो जाए। खाली भूमि में तो वर्षा बीज को नहीं तोड़ सकती। बीज चाहिए। जहां नहीं होगा बीज, वर्षा हो जाएगी, बह जाएगी। भूमि वैसी की वैसी रह जाएगी।
तुम अहंकार को पाले हो--हम रोज पाल रहे हैं। उसको हम बड़ा सजा-संवार कर रखते हैं। जितना तुमने सजा-संवारकर अपने अहंकार को रखा है, उतनी ही गाली तुम्हें चोट दे जाएगी। तुम्हारी सजावट पर निर्भर है कि गाली कितनी चोट देगी! तुम गाली देने वाले को दोषी मत मानना। खोज करना अपने भीतर, गाली छू गई क्यों? गाली आर-पार भी जा सकती थी तुम्हें बिना छुए। अगर तुम्हारे भीतर कोई अहंकार का पर्दा न होता तो गाली आती और चली जाती। एक कोरी आवाज थी, शून्य में गूंजती और खो जाती। तुम सुन लेते, तुम समझ लेते, लेकिन कोई प्रतिक्रिया न होती। जैसे कोई खाली कुएं में, सूखे कुएं में बाल्टी डाले, खाली की खाली खड़खड़ाएगी और लौट आएगी। जल भरकर न आएगा। जल है ही नहीं तो भरकर कैसे आएगा?
जब कोई गाली देता है तुम्हें तो बाल्टी डालता है तुम्हारे कुएं में। अगर भीतर अहंकार न हो, खड़खड़ाएगी, आवाज होगी, लौट आएगी। शायद गाली देने वाले को भी बोध आए तुम्हें शांत और निर्विकार देखकर। शायद वह भी रूपांतरित हो। पछताएगा तो जरूर। आंखें उसकी गीली तो हो आएंगी। आदमी है, पत्थर तो नहीं है। कितना ही कठोर हो, आदमी है, पत्थर तो नहीं है। सोचेगा, ठिठक जाएगा। क्या हुआ? अपनी गाली की प्रतिध्वनि ही उसके पास आएगी। खुद की गाली वापस लौट आएगी, चुभेगी। जब तुम भीतर गाली को पकड़ लेते हो, लौटती नहीं, चुभती भी नहीं। पछतावे का मौका भी तुम छीन लेते हो उस आदमी से। और तुम सोचते हो, उसने तुम्हें दुखी किया। कोई तुम्हें दुखी नहीं कर सकता। तुम दुखी होने की तैयारी करते थे।
"जैसे ताजा दूध शीघ्र नहीं जम जाता... ।"
तुम्हारी तैयारी वक्त लेती है। अहंकार भी बचपन में बचपन होता है, जवानी में जवान हो जाता है, बुढ़ापे में बिल्कुल पक जाता है। बच्चे को फिक्र नहीं है। तुम गाली भी दे दो, सुन लेता है, खेलता हुआ चला जाता है। तुम कहते हो, अबोध है। अबोध नहीं, अभी अहंकार नहीं है इतना मजबूत कि गाली चोट करे। जवान उलझ जाएगा; मरने-मारने को उतारू हो जाएगा। अहंकार भी जवान हो गया। दूध जम गया! और बूढ़ों के अहंकार का तो तुम कुछ कहना ही मत।
इसलिए तो बूढ़े आदमियों के साथ रहना मुश्किल हो जाता है। खुद के बेटे अपने बाप के साथ रहने में मुश्किल अनुभव करने लगते हैं। बूढ़ों के अहंकार बड़े मजबूत हो जाते हैं। जिंदगीभर की कमाई वही है। जिंदगीभर दूध को जमाया है। जिंदगीभर सब तरह से यही कोशिश की है, कि मैं कुछ हूं। बूढ़े बड़े दूभर हो जाते हैं, बोझिल हो जाते हैं। तुम सभी को बूढ़ों के पास होने का अनुभव होगा। रस्सी जल भी गई है, लेकिन अकड़ बनी रह जाती है। मौत करीब आती है, मरने के

करीब पहुंच रहे हैं, सब खो जाएगा, लेकिन जैसे दीया बुझने के पहले भभक उठता है, ऐसे ही मरने के पहले अहंकार बड़ा मजबूत हो जाता है।
ध्यान रखना, अगर सोए-सोए जीए तो वही तुम्हारे भीतर भी हो रहा है। उस प्रक्रिया से बच न सकोगे। थोड़े जागने की जरूरत है। थोड़े देखने की जरूरत है।
एक सूत्र को तो तुम जितना अपनी स्मृति में पिरो लो, उतना ही भला हैः कि अगर दुखी होते हो तो कारण तुम हो; अगर सुखी होते हो तो कारण तुम हो। कारण बाहर मत खोजना।
मूढ़ता बाहर कारण खोजती है और भटक जाती है।
ज्ञान भीतर कारण खोजता है और सम्हल जाता है।
सब तुम्हारे भीतर है--सुख भी, दुख भी, सुख और दुख के पार जाना भी।
"मूढ़ का जितना भी ज्ञान होता है, वह उसके ही अनर्थ के लिए होता है। वह मूढ़ के मस्तिष्क को नीचे गिराकर उसके शुक्लांश (शुभ) को नष्ट कर देता है।" ऐसा नहीं है कि मूढ़ के पास ज्ञान नहीं होता। यह बड़े मजे की बात है। तुम सोचते हो, मूढ़ वह, जिसके पास ज्ञान नहीं; नहीं। मूढ़ों में बड़े पंडित तुम्हें मिल जाएंगे। मूढ़ता भीतर रह जाती है, पांडित्य ऊपर से आवरण बन जाता है। और मूढ़ता शोभायमान हो जाती है। और मूढ़ता में इत्र छिड़क दिए, सुगंध भी आने लगी। और मूढ़ता पर सोने मढ़ दिए, हीरे-जवाहरात जड़ दिए। मूढ़ता भी पांडित्य से अपनाशृंगार करती है।
बुद्ध कहते हैं, "मूढ़ का जितना भी ज्ञान होता है... ।"
नहीं होता, ऐसा नहीं; लेकिन एक बात तुम उसमें पाओगे, उसका ज्ञान उसके
ही अनर्थ के लिए होता है। उसके हाथ की तलवार उसको ही जख्म पहुंचाती है। जिस ज्ञान से नौका बन सकती थी, जीवन के सागर के पार हुआ जा सकता था, वही ज्ञान गले में लटकी हुई चट्टान हो जाता है। वही ज्ञान उसे डुबाता है। अगर मूढ़ के हाथ में शास्त्र लग जाए, तो वह मूढ़ के हाथ में लगी तलवार है। मूढ़ के हाथ में शस्त्र लगे तो, शास्त्र लगे तो, आत्मघाती है। अपना ही अहित कर लेगा।
अब तुम थोड़ा सोचो, तुम्हारे पास जो भी तुमने ज्ञान संचित कर लिया है, उसका तुमने क्या उपयोग किया है? उससे तुमने अपनी मूढ़ता को बचाने का उपयोग किया है या मिटाने का उपयोग किया है? उस प्रकाश में तुमने अपने अंधेरे को जलाया है या बचाया है?
अगर तुमने ज्ञान का सम्यक उपयोग किया तो तुम अपने अज्ञान को स्वीकार करोगे। अगर तुमने ज्ञान का दुरुपयोग किया तो तुम अपने अज्ञान को छिपा लोगे और अपने ज्ञान की घोषणा करोगे। और एक बार तुम्हें यह वहम सवार हो जाए कि तुमने जान लिया, तो तुम जानने की दुनिया से हजारों कोसों दूर पड़ गए।
उस शाम से डरो जो सितारों की छांव में
आती है एक हसीन अंधेरा लिए हुए
तुम्हारी नजर सितारों पर रहे, कहीं धोखा न हो जाए!
उस शाम से डरो जो सितारों की छांव में
एक घना अंधेरा भी आ रहा है। सितारों पर आंख रही, धोखा खा जाओगे।
आती है एक हसीन अंधेरा लिए हुए
एक बड़ा प्यारा अंधेरा लेकर आ जाती है। तुम सितारों में उलझे रहते हो, अंधेरा तुम्हें चारों तरफ से घेर लेता है।
डरो उन शास्त्रों से, जिनके शब्दों के पीछे, हसीन अंधेरों के पीछे-- बड़े सुंदर हैं वे शब्द--मूढ़ता शरण पा लेती है।
उपनिषद में कथा हैः उद्दालक का बेटा श्वेतकेतु ज्ञान लेकर घर लौटा; विश्वविद्यालय से घर आया। बाप ने देखा, दूर गांव के पगडंडी से आता। सुबह सूरज उगा है। लेकिन बाप बड़ा दुखी हुआ। क्योंकि बाप ने सोचा था, विनम्र होकर लौटेगा; वह बड़ा अकड़ा हुआ आ रहा है। अकड़ तो हजारों कोस दूर तक खबर भेज देती है। अकड़ तो अपने चारों तरफ तरंगें उठा देती है। वह ऐसा नहीं आ रहा है कि जानकर आ रहा हो। ऐसा आ रहा है कि मूढ़ता तो भीतर है, ऊपर-ऊपर ज्ञान को संगृहीत कर लाया है। पंडित होकर आ रहा है, ज्ञानी होकर नहीं आ रहा।

विद्वान होकर आ रहा है, प्रज्ञावान होकर नहीं आ रहा है। कोई समझ की ज्योति नहीं जली है, अंधेरे शास्त्रों का बोझ लेकर आ रहा है। बाप दुखी हो गया। बेटा आया। उद्दालक ने पूछा कि क्या-क्या तू सीखकर आया?
उसने कहा, सब सीखकर आया हूं। कुछ छोड़ा नहीं। यही तो मूढ़ता का वक्तव्य है। उसने गिनती करा दी, कितने शास्त्र सीखकर आया है। सब वेद कंठस्थ कर लिए हैं। सब उपनिषद जान लिए हैं। इतिहास, भूगोल, पुराण, काव्य, तर्क, दर्शन, धर्म, सब जानकर आया हूं। कुछ छोड़ा नहीं। सब परीक्षाएं पूरी करके आया हूं। स्वर्ण-पदक लेकर आया हूं।
बाप ने कहा, लेकिन तूने वह एक जाना, जिसे जानने से सब जान लिया जाता है? उसने कहा, कैसा एक? किसकी बात कर रहे हैं? बाप ने कहा, तूने स्वयं को जाना, जिसे जानने से सब जान लिया जाता है? श्वेतकेतु उदास हो गया। उसने कहा, उस एक की तो कोई चर्चा वहां न हुई।
तो बाप ने कहा, तुझे फिर जाना पड़ेगा। क्योंकि हमारे कुल में हम सिर्फ जन्म से ही ब्राह्मण नहीं होते रहे हैं, हम जानकर ब्राह्मण होते रहे। यह हमारी कुल की परंपरा है। मेरे बाप ने भी मुझे ऐसे ही वापस लौटा दिया था। एक दिन ऐसे ही अकड़कर मैं भी घर आया था; सोचकर कि सब जानकर आ रहा हूं। झुका था बाप के चरणों में, लेकिन झुका नहीं था। भीतर तो यही ख्याल था कि बाप से भी ज्यादा जानता हूं। लेकिन मेरे पिता उदास हो गए थे और उन्होंने कहा था, वापस जा। उस एक को जाना, जिसे जानने से सब जान लिया जाता है? उन्होंने मुझसे कहा था, हमारे कुल में हम जन्म से ही ब्राह्मण नहीं होते रहे हैं, ब्रह्म को जानकर ब्राह्मण होते रहे हैं। तुझे वापस जाना होगा श्वेतकेतु। श्वेतकेतु को वापस जाना पड़ा। तभी लौट सका घर, जब उस एक को जानकर आया। लेकिन तब और ही ढंग से आया। तब बात ही बदल गई। तब ऐसे आया, जैसे शून्य आता है। तब ऐसे आया, कि पैरों की पदचाप भी न हो। तब ऐसे आया, जैसे विनम्रता आखिरी गहराइयां छूती हो। मिटकर आया। और जो मिटकर आया, वही होकर आया। अपने को खोकर आया।
शास्त्र का बोझ नहीं था अब, सत्य की निर्भार दशा थी। विचारों की भीड़ न
थी अब, ध्यान की ज्योति थी। भीतर एक विराट शून्य था। भीतर एक मंदिर बनाकर आया। एक पूजागृह का भीतर जन्म हुआ।
"मूढ़ का जितना भी ज्ञान होता है, वह उसके ही अनर्थ के लिए होता है।"
मूढ़ जो भी सीख लेता है, उस सीख से रूपांतरित नहीं होता, बदलता नहीं अपने को; उस सीख से अपने पुराने ढंग को और मजबूत कर लेता है। इससे तो न जानता तो ही बेहतर था। कम से कम अज्ञान की लोचपूर्णता तो होती! अब ज्ञान की अकड़ भी आ गई और ज्ञान भी हाथ न आया। जानने का भ्रम आ गया, जाना कुछ भी नहीं। मूढ़ का सब जानना उधार है। और जब तक जीवंत बोध न हो, जब तक तुम्हें ही स्वाद न लग जाए सत्य का, तब तक मत समझना कि जाना। तब तक जानना कि यात्रा अभी और करनी है; अभी मंजिल आई नहीं।
कैसे मूढ़ अनर्थ करता है अपना ही अपने ही ज्ञान से?
मेरे पास बहुत लोग आ जाते हैं; उपनिषद के वचन दोहराते हैं, गीता कंठस्थ है। उनसे कुछ भी कहो, वे कहते हैं, हमें मालूम है। मैं उनसे पूछता हूं, फिर आए क्यों हो? जब तुम्हें मालूम ही है तो तुम व्यर्थ परेशान क्यों हुए हो? क्या कारण है यहां आने का?
कहते हैं, नहीं, मन हो गया, जिज्ञासावश चले आए। ध्यान सीखना है।
मैं कहता हूं, तुम्हें उपनिषद के वचन मालूम हैं। ये वचन बिना ध्यान के
तो आते ही नहीं। इनका तो जन्म ही ध्यान में होता है। ये किताब से नहीं आते। काश, किताब से आते होते तो कितनी सरल हो गई होती बात! जिंदगी में फिर उलझाव क्या था? किताब से अगर परमात्मा मिलता होता तो और क्या आसान होता! ध्यान से आते हैं।
तो मैं उनसे कहता हूं, अगर ध्यान सीखना है, तो कृपा करके इन वचनों को हटाओ। खाली करो जगह। ये वचन ध्यान न होने देंगे। यह ख्याल कि तुम जानते ही हो, जानने की यात्रा पर तुम्हें चलने ही न देगा। जिसको ख्याल है, वह पहुंच ही गया, अब चलेगा क्यों?

तर्क करते हैं वे, दलीलें देते हैं कि शास्त्र तो मार्गदर्शक है; और शास्त्र तो सहारा है। तो मैं उनसे कहता हूं, जिंदगीभर इस सहारे को तुम पकड़े रहे, अब तक पहुंचे नहीं; कब जागोगे? अब और कितनी देर दोगे परीक्षा के लिए? अभी तक परीक्षा नहीं हो गई?
मगर बड़ा कठिन है यह मानना कि मैं अज्ञानी हूं। बड़ा कठिन है। और बिना
यह माने तो कोई ध्यान के जगत में प्रवेश कर नहीं सकता।
"मूढ़ का जितना भी ज्ञान है वह उसके ही अनर्थ के लिए हो जाता है। वह मूढ़
के मस्तिष्क को नीचे कर उसके शुक्लांश को नाश कर देता है।"
जैसे रात है और दिन है, ऐसे ही तुम्हारे भीतर भी दो पहलू हैं, एक शुभ का है, एक अशुभ का है। वह जो अशुभ का पहलू है, वह उधार से जीता है। उसकी अपनी कोई संपदा नहीं है।
शैतान उधार से जीता है। इसको समझ लेना; इसका अर्थ यह होता है कि शैतान तुम्हें यह धोखा देकर जीता है कि वह भगवान है। झूठ तुम अगर किसी से बोलो तो तुम तभी बोल सकते हो, जब तुम यह उसे आश्वासन दो कि यह सच है; जब तुम कसम खाओ कि यह सच है। झूठ सच का धोखा देकर ही चल सकता है, और कोई उपाय नहीं है। और उतना ही चल सकता है, जितनी देर तक दूसरे को उसके सच होने का भ्रम बना रहे। जैसे ही पता चला कि झूठ है, वहीं गिर जाता है। फिर वहां से एक इंच आगे नहीं जा सकता।
अगर दुनिया में सभी लोग झूठ बोलने वाले हों और यह स्वीकृत सत्य हो जाए
कि बस झूठ ही जीवन का व्यवहार है, तो झूठ मर जाएगा। झूठ चल ही न सकेगा। कोई मानेगा ही नहीं। झूठ चल सकता है, सत्य का आभास दे तो।
ध्यान रखना, वह तुम्हारे भीतर जो अंधेरा कोना है, वह तुम्हें प्रकाश
का आभास दे तो ही बचा रह सकता है; अन्यथा मिट जाएगा। तुम उसे कभी का उठाकर फेंक दोगे। गले में चट्टान लटकाकर तुम तभी तक चल सकते हो, जब तक तुम्हें ख्याल हो कि यह चट्टान नहीं, कोहिनूर है। जंजीरें तुम तभी तक पहने रह सकते हो, जब तक तुम्हें ख्याल हो, ये जंजीरें नहीं, आभूषण हैं। कारागृह में तुम तभी तक रह सकते हो, जब तक तुम्हें पता हो कि यह घर है, अपना घर है। संसार तभी तक तुम्हें पकड़े रख सकता है, जब तक तुम्हें ख्याल है कि संसार सत्य है, संसार परमात्मा है।
मुझे मालूम है अंजाम रूदादे-मुहब्बत का
मगर कुछ और थोड़ी देर सई-ए-रायगां कर लूं
मालूम है, जिसे तुम प्रेम कहते हो, उसका अंत। मालूम है उस प्रेम-कथा का अंत। सिवाय नर्कों के और कहीं ले नहीं गई। फिर भी तुम्हारा अंधेरा कोना कहे जाता है--
मगर कुछ और थोड़ी देर सई-ए-रायगां कर लूं
यह व्यर्थ कोशिश थोड़ी देर और कर लूं।
अब यह जरा सोचने की बात है। जब तुम्हें पता चल गया कि यह व्यर्थ कोशिश
है, तो तुम थोड़ी देर और करोगे? नहीं, तुम्हें पता ही न चला होगा। यह उधार है ख्याल कि यह कोशिश व्यर्थ है। तुम्हें तो यही ख्याल है कि इस कोशिश में सार्थकता है। अभी भी सफलता मिल सकती है। अभी भी आशा की किरण शेष है।
एक बहुत बड़े मनीषी हैं, ख्यातिलब्ध हैं, देश के कोने-कोने में उनका नाम है, हजारों लोग उन्हें मानते हैं। वे मुझे मिलने आए थे। तो उन्होंने कहा, हमें सब पता है कि क्रोध बुरा है, मगर फिर भी क्रोध होता है। हमें पता है कि राग बुरा है, फिर भी राग होता है। हमें पता है कि लोभ बुरा है, लेकिन फिर भी लोभ होता है। अब क्या करें?
मैंने उनसे कहा, पहले तो आप यह स्वीकार करो कि पता नहीं है। कहीं ऐसा हुआ है कि पता हो, आग जलाती है, और आदमी हाथ डाल दे? कभी ऐसा हुआ है? होता तो उलटा है। दूध के जले छाछ भी फूंक-फूंककर पीने लगते हैं। कौन डालता है हाथ जब पता हो कि आग जलाती है? नहीं, पता न होगा।
वे बोले कि नहीं, पता है। अब यह भी क्या आप कह रहे हैं? जिंदगीभर यही
तो मैं औरों को भी समझाता रहा हूं और मुझे पता न होगा?
मैंने कहा, औरों को समझाया होगा; और औरों ने तुम्हें समझाया होगा, लेकिन पता नहीं है। किसी ने तुम्हारे कान में कह दी होगी यह बात; और तुम

दूसरों के कान में कहे जा रहे हो। जिनको तुमने समझा दिया है, वे भी समझ रहे होंगे कि समझ गए। और उनकी भी अड़चन यही होगी कि क्या करें? पता तो है क्रोध करना बुरा है, लेकिन क्रोध होता है।
ऐसा ज्ञान नपुंसक है। ऐसे ज्ञान का क्या मतलब? क्या मूल्य? तुम्हें पता है कि दीवाल है और फिर भी तुम निकलने की कोशिश करते हो, व्यर्थ कोशिश करते हो! आंख वाला कभी करता नहीं। तुम कहो कि आंख भी मेरी दुरुस्त है, और मुझे पता भी है कि यह दीवाल है, फिर भी क्या करूं? कुछ रास्ता बताएं; कैसे रोकूं अपने को इसमें से न निकलने से? सिर टकराता है। जिसको पता होता है, वह दरवाजे से निकलता है। जिसको पता नहीं होता, वह दीवाल से निकलने की कोशिश करता है। न तो उसे पता है, न उसके पास आंख है।
लेकिन मूढ़ता उधारी पर जीती है। सुन लिया है। शास्त्रों के वचन सुन लिए हैं और उन्हीं को मान लिया ज्ञान। तर्क से समझ में भी आ गया होगा। ऐसे ही, जैसे कोई पाकशास्त्र पढ़ ले और सब कुछ समझ ले भोजन के संबंधों में; भूख तो न मिटेगी। भूख अपनी जगह रहेगी। और वह कहे, मुझे भोजन के संबंध में सब पता है। अब यह भूख क्यों लगे जाती है? अब यह भूख रुकती क्यों नहीं है? पाकशास्त्र जानने से भूख के मिटने का क्या लेना-देना! भोजन चाहिए। और भोजन भी तुम्हें करना चाहिए; बुद्धों ने किया हो, इससे क्या होगा? उनकी भूख मिटी होगी। कृष्ण ने किया होगा, मोहम्मद ने किया होगा, उनकी भूख मिटी होगी। सौभाग्यशाली थे वे कि पाकशास्त्रों में न उलझे। अपना भोजन बना लिया। तुम नासमझ हो। तुम शास्त्र को ढो रहे हो। तुम शब्दों पर बैठ गए हो। तुमने शब्द तोतों की तरह कंठस्थ कर लिए हैं; उनको तुम दोहराए जाते हो। दोहराते-दोहराते तुम्हें यह भ्रम हो गया है कि तुम्हें मालूम है। बहुत बार झूठ को मत दोहराना; क्योंकि खतरा यह है कि बहुत बार दोहरकर झूठ भी सत्य जैसा मालूम होने लगता है।
अडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि सच और झूठ में मैंने इतना ही फर्क जाना कि जो झूठ बहुत बार दोहराए जाते हैं, वे सच हो जाते हैं। ज्यादा फर्क नहीं है। और वह ठीक कह रहा है। उसने अनेक झूठ खुद दोहराए जिंदगीभर। और भरोसा दिला दिया एक बड़ी समझदार जाति को, जर्मन जाति को भरोसा दिला दिया कि वह ठीक कह रहा है।
पहले लोग हंसे। पहले लोगों ने मजाक बनाया। लेकिन वह दोहराए चला गया; उसने कोई फिक्र ही न की। उसने बड़े आत्मविश्वास से दोहराया। उसने घूंसे उठा-उठाकर दोहराया। धीरे-धीरे जब कोई आदमी इतने बल से दोहराता है, दूसरे लोग भी दोहराने लगे। पूरी कौम को भरोसा आ गया। बड़ी मूढ़तापूर्ण बातों पर भरोसा आ गया। सारी दुनिया को युद्ध की आग में झोंक दिया इस आदमी ने। और मजा यह है कि उसको खुद भी पहले भरोसा न था; लेकिन जब दूसरों को भरोसा आ गया तो उनकी आंखों में भरोसे की चमक देखकर उसको भी भरोसा आने लगा।
सभी राजनीतिज्ञ जब यात्रा शुरू करते हैं तो बड़े डगमगाए होते हैं। खुद
ही भरोसा नहीं होता है। फिर धीरे-धीरे जैसे लोगों को, भीड़ को भरोसा आता है, उनको भी भरोसा आने लगता है। एक-दूसरे के बीच, एक झूठ दोहर-दोहरकर सच्ची हो जाती है।
तुम जरा ख्याल करना, कितने झूठ पर तुमने भरोसा कर लिया है। तुम पैदा हुए, तब तुम्हें पता न था कि ईश्वर है या नहीं। हिंदू घर में पैदा हुए तो हिंदू संस्कार; मुसलमान घर में पैदा हुए तो मुसलमान संस्कार। जो तुम्हारे पास दोहराया गया, वह तुम्हें कंठस्थ हो गया। अब तुम उसी को दोहराए जा रहे हो। तुम ग्रामोफोन के रिकार्ड हो या आदमी? तुम अभी भी अपने को हिंदू और मुसलमान कहे जा रहे हो? थोड़ा बचकर चलो। थोड़ा सम्हलकर चलो। किसने तुमसे कह दिया ईश्वर है? किसने तुम्हें समझा दिया ईश्वर नहीं है? किसने तुम्हें जिंदगी के ढंग दे दिए? किसने तुम्हें आचरण के रंग दे दिए? किसी और ने! तुम आत्मा हो, तुम चैतन्य हो, या मिट्टी के लोंदे हो; कि दूसरों ने तुम्हें ढंग दे दिए, रूप दे दिए, आकार दे दिए!
गोबर-गणेश होने से न चलेगा। आत्मा का जन्म तभी होता है, जब तुम नगद पर जीना शुरू करते हो और उधार को छोड़ते हो।

"मूढ़ का जितना भी ज्ञान होता है, वह उसके ही अनर्थ के लिए होता है। वह मूढ़ के मस्तिष्क को नीचे गिरा देता है; उसके शुक्लांश का नाश कर देता है।" और धीरे-धीरे वह अंधेरे को ही रोशनी समझने लगता है। धीरे-धीरे झूठों
को सच मान लेता है। सत्य की धारणाओं को, सत्य का अनुभव समझ लेता है। शास्त्रों की पुनरुक्ति को समाधि मान लेता है। फिर भटक गया। फिर बहुत कठिन है उसका लौटकर आना। उसका ज्ञान ही उसके लिए अहितकर हो गया।
"झूठा बड़प्पन मिले, भिक्षुओं में अगुआ होऊं, मठों का अधिपति बनूं, गृहस्थ परिवारों में पूजा जाऊं, गृही और भिक्खु दोनों ही मेरे किए हुए को प्रमाण मानें, और कार्याकार्य में सब मेरे ही अधीन चलें, इस प्रकार मूढ़ का संकल्प इच्छा और अभिमान को बढ़ाता है।"
भिक्षुओं से बुद्ध बोले हैं ये वचन। बुद्ध ने धीरे-धीरे भिक्षुओं से
ही बात की। जैसा कि मैं चाहता हूं कि धीरे-धीरे संन्यासियों से ही बात करूं। क्योंकि जो बदलने को तैयार हो, उससे ही बात करने का कुछ मजा है। जो सिर्फ सुनने को चला आया हो, कुतूहल से चला आया हो, या बहुत-बहुत जिज्ञासा से चला आया हो, उससे बात करना समय का गंवाना है। और समय का गंवाना ही नहीं, खतरा भी है। क्योंकि वह मूढ़ कहीं इन बातों को पकड़कर, याददाश्त में भरकर यह न समझ बैठे कि जान गया। अन्यथा लाभ तो कुछ भी न हुआ, हानि बड़ी हो गई।
बुद्ध ने सिर्फ भिक्षुओं से बात की है। भिक्षु का अर्थ है, जिसने जीवन
को दांव पर लगाने की तैयारी दिखाई है; जो जिज्ञासा से नहीं, मुमुक्षा से आया है; जो कहता है, बदलने को तैयार हूं। देख लिए जीवन के सपने; तोड़ने को तैयार हूं। एक बात पहचान में आ गई कि जैसा मैं हूं, गलत हूं। ठीक होने के लिए जो भी करना हो, वह करने की मेरी तैयारी है।
दुनिया हंसे, कोई बात नहीं। दुनिया जिसे लाभ कहती है, हाथ से छूट जाए, कोई बात नहीं। दुनिया जिसे संपदा और सफलता कहती है, देख लिया। न वहां संपदा है, न वहां सफलता है। हाथ खाली लेकर आया हूं। अब जहां संपदा हो, उसकी तलाश पर जाने को तैयार हूं। मार्ग कठिन हो, हो। यात्रा लंबी हो, हो। ऐसे यात्रियों का दल--उनसे ही कुछ बात करने का मजा है। कुछ बात कहने की बात है। "झूठा बड़प्पन मिले... ।"
पर उनमें भी लोग ऐसे आ जाते हैं। भिक्षु भी हो जाते हैं, संन्यस्त भी
हो जाते हैं, और फिर भी पुरानी आदतों से बाज नहीं आते। गलत कारण से भी तुम संन्यासी हो सकते हो। अगर यह भी अहंकार ही हो, अगर तुम इसलिए संन्यस्त हो जाओ कि संन्यासी होने से भी अहंकार की तृप्ति होती है, कि मैं कोई साधारण आदमी न रहा। मैं कोई साधारण गृहस्थ नहीं हूं, घर-गृहस्थी वाला नहीं हूं, संन्यासी हूं। अगर यह भी तुम्हारे भीतर अभिमान को जन्माता हो तो चूक हो गई। अहंकार ही घर है; और अहंकार में जो रहता है, वही गृहस्थ है। अहंकार के जो पार हुआ वही संन्यस्त है। फिर वह चाहे घर में भी रहे तो कोई फर्क नहीं पड़ता।
"झूठा बड़प्पन मिले, भिक्षुओं में अगुआ होऊं... ।"
संन्यासी होकर भी प्रतियोगिता, प्रतिस्पर्धा! संन्यासी होकर भी दौड़ वही कि आगे खड़ा हो जाऊं, दूसरों को पीछे कर दूं। वहां भी अहंकार और ईर्ष्या--चूक हो गई फिर। और निश्चित ही, जिसे आगे खड़ा होना हो, वह शांत नहीं हो सकता। जिसे आगे खड़ा होना हो, वह उपद्रव से मुक्त नहीं हो सकता। वस्तुतः आगे खड़े होने के लिए उपद्रवी होना जरूरी है।
मैं एक गांव में मेहमान था। पंद्रह अगस्त का दिन था। और स्कूल के बच्चे गांव में जुलूस लेकर निकले थे, उनकी कतार बनाई गई थी। छोटा बच्चा आगे, उससे फिर बड़ा, उससे फिर बड़ा, ऐसा सिलसिले से वे खड़े थे। कतार तो बिल्कुल ठीक थी, सिर्फ एक लड़का, जो सबके आगे खड़ा था और झंडा लिए था, वह इसशृंखला के बाहर था।
तो मैंने पूछा एक लड़के को कि इस लड़के कोशृंखला में क्यों खड़ा नहीं किया गया? क्या यह तुम्हारा अगुआ है? उसने कहा, अगुआ नहीं है, लेकिन इसको कहीं और खड़ा करो तो लोगों को चिउटियां लेता है। इसलिए इसको झंडा देकर आगे खड़ा करना पड़ा।

तुम्हारे सब राजनेता बस ऐसे ही हैं, चिउटियां! उनको कहीं भीतर खड़ा करो मत, झंझट का काम है। उनको आगे रखना पड़ता है। हालांकि वे झंडा लिए हैं, वे अकड़े हुए हैं। मगर कुल कारण उनके आगे होने का यह है कि वे उपद्रवी हैं। आगे होना हो तो उपद्रव से मुक्त होने का उपाय नहीं है; उपद्रवी होना पड़ेगा। अहंकार सब तरह की झंझटों में जीता है। झंझटें उसका भोजन है। शांति में मर जाता है। शांति उसकी मौत है। निरुपद्रवी अगर तुम हो जाओ तो अहंकार को खड़े होने की जगह नहीं रह जाती।
मैं ऐ सीमाब सूरज बन के चमका हूं अंधेरों में
न होने से मेरे महसूस दुनिया में कमी होगी
किसी के न होने से दुनिया में कोई कमी महसूस नहीं होती। सिकंदर आते हैं और चले जाते हैं; दुनिया अपनी राह पर चलती रहती है। किसी के न होने से कमी महसूस नहीं होती। लेकिन अहंकार इसी भाषा में सोचता है कि मैं बड़ा अनिवार्य हूं, अपरिहार्य हूं। मेरे बिना दुनिया कैसे चलेगी? चांद-तारों का क्या होगा?
ध्यान रखना, तुम न थे, तब भी दुनिया चली जाती थी। तुम न होओगे, तब भी चली जाएगी। यह जो थोड़ी देर का तुम्हारा होना है, इसे उपद्रव मत बनाओ। इस थोड़ी देर के होने को ऐसा शांत कर लो कि यह करीब-करीब न होने जैसा हो जाए। तुम न थे, फिर तुम न हो जाओगे। यह बीच की जो थोड़ी देर के लिए उथल-पुथल है, इसको भी ऐसी शांति से गुजार दो, जैसे कि न होना था पहले, न होना अब भी है, न होना आगे भी होगा; तो तुम अपने स्वभाव का अनुभव कर लोगे।
यह जो थोड़ी देर के लिए आंख खुली है जीवन में, इससे तुम अपने न होने को पहचान लो। न होने की सतत धार तुम्हारे भीतर बह रही है। कल तुम न थे, कल फिर तुम न हो जाओगे। यह जो आज की थोड़ी घड़ी तुम्हें होने की मिली है, इसमें पहचान लो कि नीचे सतत धार न होने की अभी भी बह रही है। वह न होना ही स्वयं को जानना है। वह न होना ही परमात्मा को पहचान लेना है। बुद्ध ने उसे निर्वाण कहा है।
"झूठा बड़प्पन मिले, भिक्षुओं में अगुआ होऊं, मठों का अधिपति बनूं, गृहस्थ परिवारों में पूजा जाऊं, गृही और भिक्खु मेरे किए हुए को प्रमाण मानें, कार्याकार्य में सब मेरे अधीन चलें, इस प्रकार मूढ़ का संकल्प इच्छा और अभिमान ही बढ़ाता है।"
मूढ़ अगर संन्यास भी ले ले तो संन्यास भी उसकी मूढ़ता में ही एक आभूषण
हो जाता है। मूढ़ अगर प्रार्थना भी करे, तो प्रार्थना भी अहंकार को ही सजाने वाली बन जाती है। मूढ़ अगर मंदिर भी जाता है तो देखता हुआ जाता है, कि लोगों ने देख लिया कि नहीं! मूढ़ अगर मंदिर में पूजा भी करता है तो बड़े शोरगुल से करता है, ताकि सारे गांव को पता चल जाए कि मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं, पूजा करने वाला हूं, प्रार्थना करने वाला हूं। अन्यथा प्रार्थना को जोर-जोर से करने की कोई बात नहीं। परमात्मा तो तुम्हारे हृदय की भावदशा को भी समझ लेता है। चिल्लाते किसलिए हो? शोरगुल किसलिए मचाते हो? जो तुम्हारे भीतर उठा, उठने के पहले भी परमात्मा की समझ में आ जाता है।
तुमने कहानी सुनी है?
एक बूढ़ी औरत बड़ा बोझ लिए सिर पर जाती है। एक घुड़सवार पास से निकला। तो
उस बूढ़ी औरत ने कहा कि बेटा, बोझ बड़ा है, इसे तू ले ले; और आगे चार मील बाद, चुंगी पर दे जाना। मैं जब वहां पहुंचूंगी तो ले लूंगी।
घुड़सवार अकड़ा--घुड़सवार! उसने कहा, क्या समझा है तूने? मैं तेरा कोई गुलाम हूं? कोई नौकर-चाकर हूं? ढो अपना बोझ। यह गंदी गठरी मैं कहां ले जाऊंगा? एड़ मारी, आगे बढ़ गया। लेकिन कोई दो फर्लांग गया होगा, उसे ख्याल आया कि गठरी लेकर चल ही देते। चुंगी-चौकी वाले को क्या पता? नाहक गठरी गंवाई। पता नहीं क्या हो! लौटकर आया, कहाः मां, भूल हो गई। तू निश्चित बूढ़ी है और बोझ ज्यादा है। दे-दे, चुंगी-चौकी पर दे जाऊंगा। उस बूढ़ी ने कहाः बेटा, अब तू चिंता मत कर। जो तुझसे कह गया, वह मुझसे भी कह गया है। तू अपनी राह ले, अब मैं ढो लूंगी।

तुम्हारे हृदय में जो उठती है बात, तुम्हारे जानने के पहले भी परमात्मा तक पहुंच जाती है। क्योंकि तुम अपने हृदय से बहुत दूर हो, परमात्मा तुम्हारे हृदय में विराजमान है। प्रार्थना को चिल्ला-चिल्लाकर करने की कोई बात नहीं। कहने की बात ही नहीं है कुछ। कहने को क्या है? परमात्मा के सामने सिर झुकाकर बैठ जाना है। असहाय होकर, प्यासे होकर, उसके हाथों में अपने को छोड़ देना है।
नहीं, लेकिन जब तक रथयात्रा न निकले, शोभायात्रा न हो, तब तक उपवास करने में मजा नहीं आता। और जब तक प्रार्थना के लिए सत्कार-अभिनंदन न मिले, तब तक कौन प्रार्थना करने को राजी होता है?
मैंने सुना है, इंग्लैंड की महारानी एक चर्च में आने को थी। एक धनपति
ने चर्च के पादरी को फोन किया कि मैंने सुना है कि आने वाले रविवार को महारानी स्वयं चर्च में आने वाली हैं। क्या यह सच है? अगर यह सच हो तो मेरे लिए भी प्रथम पंक्ति में स्थान बनाकर रखा जाए। चर्च के पादरी ने कहा, राजा- रानियों का क्या भरोसा? एक बात पक्की है कि परमात्मा आएगा। रानी-राजा का क्या भरोसा? आएं, न आएं; एक बात पक्की है कि परमात्मा आएगा। पहले भी आता रहा है, अब भी आता रहेगा। अगर तुम्हारी उत्सुकता परमात्मा में हो तो पहली पंक्ति में स्थान बनाकर रखेंगे। उस आदमी ने कहा कि ठीक है, फिर कोई बात नहीं। परमात्मा में किसकी उत्सुकता है? लेकिन रानी देख ले कि प्रथम पंक्ति में बैठे हैं चर्च में।
वैसी एक कहानी मैंने और सुनी है कि स्वीडन का सम्राट एक बार एक चर्च में गया। तो वहां बड़ी भीड़ थी प्रार्थना करने वालों की। खचाखच भरा था चर्च। इंचभर जगह न थी। वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने पुरोहित को कहा कि मैं खुश हूं कि लोग इतने धार्मिक हैं। उसने कहा, महानुभाव, भूल में पड़ते हैं। यह चर्च सदा खाली रहता है। ये आज क्यों यहां आए हैं, मुझे पता नहीं। आपकी वजह से आए होंगे, परमात्मा के कारण नहीं आए। और ये इतने जोर-जोर से जो प्रार्थनाएं चल रही हैं, ये आपको सुनाने को चल रही होंगी। इन प्रार्थनाओं के पीछे राजनीति होगी, धर्म नहीं है।
मूढ़ अगर संन्यस्त भी हो जाए, तो गलत ही कारणों से होता है। मूढ़ अगर व्रत भी ले तो गलत कारणों से ही लेता है। और मूढ़ों को समझाने वाले जो लोग हैं, वे भी इस राज को समझते हैं। वे उनकी मूढ़ता को ही प्रोत्साहन देते हैं। अणुव्रत ले लो तो बड़ा आदर-सत्कार होता है। ब्रह्मचर्य का व्रत ले लो
तो तालियां पिट जाती हैं। वे तालियां पीटने वाले भी जानते हैं कि तालियां पीटना तुम्हारे लिए ज्यादा मूल्यवान है ब्रह्मचर्य से। ये तालियां याद रहेंगी। फिर तुम डरोगे कि समाज ने इतना सम्मान दिया, अब अगर व्रत तोड़ें तो सम्मान छिन न जाए। इसलिए तुम्हारा समाज साधु-संन्यासियों को इतना सम्मान देता है। सम्मान का कारण यह है कि वे सम्मान के कारण ही साधु-संन्यासी हैं। अगर सम्मान गया, साधु-संन्यास भी गया।
तुम उनके अहंकार की पूजा कर रहे हो, ताकि अब वे संन्यासी हो गए हैं तो बने रहें। वे हुए भी इसीलिए हैं; वे बने भी इसीलिए हैं। थोड़ा सोचो, भारत में कोई एक करोड़ साधु-संन्यासी हैं, एक करोड़ साधु-संन्यासी अगर सच में हों तो इस मुल्क के भाग्य में और क्या कमी रह जाए? लेकिन उनके होने से कुछ होता नहीं है, सिर्फ थोड़ा उपद्रव होता है।
रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहां कोई न हो
हमसुखन कोई न हो और हमजबां कोई न हो
ऐसी जगह तो खोजनी मुश्किल है। जहां भी जाओगे, जहां तुम जा सकते हो, वहां दूसरे भी जा सकते हैं। ऐसी जगह खोजनी तो मुश्किल है। तुम आदमी हो, तुम पहुंच गए, तो दूसरा आदमी भी पहुंच सकता है।
रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहां कोई न हो
ऐसी जगह बाहर तो नहीं खोजी जा सकती, बस भीतर खोजी जा सकती है।
हमसुखन कोई न हो और हमजबां कोई न हो
न तो कोई बातचीत करने को हो, न कोई अपनी जबान समझता हो। कहां जाओगे? बाहर जाने का उपाय नहीं। बस, भीतर एकांत खोजा जा सकता है।

मूढ़ अगर एकांत भी खोजता है तो बाहर खोजता है। समझदार अगर एकांत खोजता
है तो भीतर खोजता है। बाहर तो संसार है। जहां भी जाओ, कहीं भी जाओ, चांद-तारों पर चले जाओ, संसार ही होगा। तुम जहां होओगे, वहां संसार होगा। भीतर चलो! क्योंकि जैसे-जैसे तुम भीतर जाओगे, तुम मिटने लगते हो। इसलिए तो लोग भीतर जाने में डरते हैं।
ध्यान मौत है। मौन मौत है। वहां सीमाएं बिखरने लगती हैं। जैसे-जैसे तुम भीतर जाते हो, जहां भाषा नहीं पहुंचती--हमसुखन कोई नहीं हमजबां कोई नहीं। जैसे ही भाषा नहीं, वहां खुद को भी बोल नहीं सकते कुछ। खुद से भी बोल नहीं सकते कुछ। जहां सब चुप है, जहां चुप्पी का संसार है, वहीं तुम्हारा एकांत है।
मूढ़ एकांत खोजे तो जंगल जाता है; समझदार एकांत खोजे तो स्वयं में जाता है। मूढ़ अगर त्याग करे तो वस्तुओं का त्याग करता है; समझदार अगर त्याग करे तो परिग्रह का त्याग करता है, वस्तुओं का नहीं; पकड़ का त्याग करता है। मूढ़ अगर गृहस्थी छोड़े, घर छोड़े, तो मिट्टी का घर छोड़ता है। समझदार अगर घर छोड़ता है तो घर बनाने की आकांक्षा छोड़ता है। असुरक्षा को स्वीकार करता है, सुरक्षा के उपद्रव छोड़ देता है।
"लाभ का रास्ता दूसरा है और निर्वाण का रास्ता दूसरा है।"
यह वचन बड़ा अदभुत है।
बुद्ध कहते हैं, "लाभ का रास्ता दूसरा है, निर्वाण का रास्ता दूसरा है।"
मूढ़ हमेशा लाभ का ही हिसाब रखता है। निर्वाण की दिशा में भी जाता है
तो भी।
मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैं, ध्यान करेंगे तो लाभ क्या होगा? कौन कहे इनसे? लाभ ही तो ध्यान नहीं होने दे रहा है। लाभ ने ही तो मारा। लाभ ने ही तो पागल बनाया है, विक्षिप्त किया है। और अब यहां भी आते हो तो पूछते हो कि ध्यान करेंगे तो लाभ क्या होगा? संन्यास लेंगे तो लाभ क्या होगा? लाभ की दृष्टि ही तो रोग है; उसे यहां भी ले आते हो? तुम बिना लाभ के कुछ कर ही नहीं सकते! तुम यह पूछते हो कि परमात्मा को क्यों खोजें? लाभ क्या होगा? धन की भाषा पीछा नहीं छोड़ती। लोभ की भाषा पीछा नहीं छोड़ती। अगर नहीं है यह दस्ते-हविश की कमजोरी
तो फिर दराजिए-दस्ते-दुआ को क्या कहिए
पहले तुम संसार में भीख मांगते रहते होः लाभ-लाभ। फिर तुम मंदिर भी जाते हो तो परमात्मा के सामने हाथ फैलाते हो। मांग जारी रहती है।
अगर नहीं है यह दस्ते-हविश की कमजोरी
वह जो नमाज के बाद, प्रार्थना के बाद हाथ फैलाए जाते हैं, वे भी तो तृष्णा की ही कमजोरी है। वह भी तो मांग है, वह भी तो लोभ है। तो तुमने संसार कहां छोड़ा? तुम परमात्मा के पास भी संसार ही ले आए।
समझो; संसार का अर्थ हैः मांगने की वृत्ति। संसार का अर्थ हैः संग्रह
की वृत्ति। संसार का अर्थ हैः लोभ की वृत्ति। संसार का अर्थ हैः तुम अलोभ में नहीं जी सकते। तुम जीवन के सौंदर्य को, जीवन के सत्य को, जीवन के शुभ को परम मूल्य की तरह स्वीकार नहीं कर सकते। तुम उसका भी मूल्य चाहते हो। तुम कहते हो, अगर पुण्य करूंगा तो स्वर्ग में क्या-क्या मिलेगा? तुम्हारे शास्त्र सब बताते हैं, क्या-क्या मिलेगा; लोभियों ने सुने, लोभियों ने लिखे। तुम पूछते हो, तीर्थ-यात्रा को जाएंगे तो लाभ क्या-क्या होगा? तुम्हारे शास्त्र बताते हैं! लोभियों ने सुने, लोभियों ने लिखे। और हद्द लोभ है।
मैं एक कुंभ के मेले में प्रयाग में था, बैठा था तट के किनारे। एक पंडा अपने शिष्यों को समझा रहा था कि एक पैसा यहां दोगे तो एक करोड़ गुना वहां पाओगे। एक करोड़ गुना! कुछ थोड़ा हिसाब भी तो रखो। संसार में भी सीमाएं हैं लोभ की। यह तो लाटरी बड़ी हो गई। एक पैसे से, एक करोड़ गुना? जुआ खिलाने वाले लोग भी इतना आश्वासन नहीं देते। मगर स्वर्ग के आश्वासन चल सकते हैं, क्योंकि कोई कभी देखकर आया नहीं। कोई लौटकर कभी कहता नहीं कि पाया कि पैसा भी गंवाया; कि हाथ में जो था, वह भी गया।

लेकिन कितना लोभ तुम दे रहे हो! इसके पीछे अर्थ क्या है? इसका अर्थ यह
है कि जो लोग इकट्ठे हैं, उन्हें परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं। वे एक पैसे को करोड़ गुना करने की तरकीब खोजने आए हैं। वही संसार में करते थे; फिर चोरी और क्या थी? डाका और क्या था? शोषण और क्या था? फिर दुकानदार को गाली क्यों दे रहे हो? फिर धन इकट्ठे करने वाले की निंदा क्यों कर रहे हो? फिर यही तो यहां भी जारी है।
तो सारे धर्म एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर लाटरी बताते हैं। वे कहते हैं कि अगर हमारे रास्ते पर चले, अगर यह लाटरी की टिकट खरीदी, तो एक पैसे का करोड़गुना क्या, दस करोड़गुना मिलेगा! लफ्फाजी है। कोई हर्जा तो है ही नहीं कहने में। एक करोड़ क्यों, दस करोड़ कहो। अरब-खरब कहो। जहां तक संख्या जाती हो, शंख-महाशंख कहो; कोई रुकावट नहीं है। कोई प्रमाण नहीं है।
सूरत में मुसलमानों का एक छोटा सा समाज है। उनका गुरु चिट्ठी लिखकर देता है कि इस आदमी ने इतना दान किया; लिख दिया भगवान के नाम। और जब वह आदमी मरेगा तो वह चिट्ठी उसकी छाती पर रखकर कब्र में दबा देते हैं।
उस समाज का एक आदमी मुझे मिलने आया। तो मैं सूरत में था, उसने कहा, आपका इस संबंध में क्या कहना है? मैंने कहा, तुम जाकर जरा एकाध कब्र खोलकर तो देखो; चिट्ठी वहीं की वहीं पाओगे। वह बोला कि यह भी ठीक आपने कहा। यह मुझे ख्याल ही न आया। चिट्ठियां भगवान के नाम लिखकर दी जा रही हैं, कि इस आदमी ने इतना-इतना किया, इसका ख्याल रखना। स्वर्ग में जरा जगह निकट देना। "लाभ का रास्ता दूसरा, निर्वाण का रास्ता दूसरा है। बुद्ध का श्रावक भिक्षु इसे ठीक से पहचानकर सत्कार का कभी अभिनंदन न करे और विवेक (एकांतवास) को बढ़ाता जाए।"
वह भी है दस्ते-हविश दस्ते-दुआ जिसको कहें
इन्फिआल अपनी खुदी का है खुदा जिसको कहें
वह भी वासना ही है, जिसे हम प्रार्थना कहते हैं। और जिसको हम परमात्मा कहते हैं, वह परमात्मा नहीं, हमारे पापों का पश्चात्ताप है।
तुम घबड़ा गए हो अपने पापों से, तो तुमने परमात्मा खड़ा कर लिया है। तुम्हारा परमात्मा, तुम्हारे पापों का पश्चात्ताप है; यह असली परमात्मा नहीं। यह तुमने अपने पापों की वजह से ईजाद किया है। क्योंकि इतने कर चुके, अब कोई चाहिए, जो क्षमा करे। अब तुमसे तो न होगा। अब तुम क्या करोगे? अब तो तुम इतना कर चुके--इतने जन्मों-जन्मों कीशृंखला, इतने पाप कर्म--अब कोई चाहिए महाकरुणावान। तो बैठे हो मंदिर में, कहते हो, हे पतित-पावन! पतित होने का धंधा तुमने किया, पावन होने का धंधा तुम करो। अब तुम कह रहे हो कि मैंने तो करके दिखा दिए पाप, अब तुम करुणा करके दिखाओ।
यह तुम्हारे पापों का ही पश्चात्ताप है। इसे थोड़ा समझना; अगर तुम्हारे जीवन में पाप न हो तो परमात्मा की जरूरत भी क्या? तुम्हारे जीवन में अगर पाप न हो, तो प्रार्थना की जरूरत क्या? तब तुम्हारा जीवन ही प्रार्थना होगी। प्रार्थना की अलग से कोई जरूरत न रह जाएगी। तुम्हारी श्वास-श्वास में प्रार्थना की गंध होगी। तुम्हारे उठने-बैठने में प्रार्थना का राग होगा, रंग होगा। तुम्हारे होने में प्रार्थना खिलेगी। प्रार्थना की अलग से जरूरत क्या? पाप किया है तो जरूरत है। परमात्मा को अलग से याद करने की जरूरत क्या? उसकी याद तुम्हारे श्वास-श्वास में रम जाएगी। लेकिन अभी तुम जिसे परमात्मा कहते हो, वह सिर्फ पश्चात्ताप है। वह भी है दस्ते-हविश दस्ते-दुआ जिसको कहें
वह भी तृष्णा का ही हाथ है, जो प्रार्थना के बाद परमात्मा के सामने फैलता है।
दस्ते दुआ जिसको कहें
इन्फिआल अपनी खुदी का है खुदा जिसको कहें
वह अपने अहंकार का ही पश्चात्ताप है, जिसको तुम खुदा कहते हो, वह अपनी
ही खुदी का पश्चात्ताप है। बहुत अहंकार को मजबूत कर लिया है, अब कोई चाहिए, जिसके सामने समर्पण करें। और असली परमात्मा तब प्रगट होता है, जब तुम्हारी लोभ की यह दृष्टि, तुम्हारा हिसाब-किताब गिर जाता है।
"लाभ का रास्ता दूसरा है और निर्वाण का रास्ता दूसरा है।"

निर्वाण का क्या है रास्ता फिर?
पक्षी गीत गा रहे हैं। पूछो, लाभ क्या है? किसलिए गा रहे हैं? न अखबारों में कोई खबर छपेगी, न भारत-रत्न और पद्म-विभूषण के कोई खिताब मिलेंगे, न कोई विश्वविद्यालय उपाधियां देंगे, न बैंकों में हिसाब बढ़ेगा।
पूछो, पक्षी गीत क्यों गा रहे हैं? पूछो, फूल खिले क्यों हैं? कोई उत्तर न आएगा।
फूल खिले हैं, खिलने के लिए। पक्षी गीत गा रहे हैं, गीत गाने के लिए।
गीत गाना इतना अपरिसीम आनंद है, अपने आप में अंत है; साध्य है, साधन नहीं।
फूल का खिलना परिसमाप्ति है, आखिरी मंजिल है; उसके पार और कुछ भी नहीं।
लोभ का रास्ता हमेशा हर चीज को साधन बना लेता है। निर्वाण का रास्ता प्रत्येक चीज को साध्य मानता है। कोई चीज किसी और का साधन नहीं है।
तुम तो हर चीज को साधन बना लेते हो। मां अगर बेटे को प्रेम भी कर रही
है तो आशाएं बांध रही है--बड़ा होगा, धन कमाएगा। बस, चूक गए तुम वहीं। बेटे के प्रति प्रेम, निर्वाण का रास्ता भी हो सकता था।
पत्नी पति को प्रेम कर रही है, कभी-कभी अतिशय प्रेम करने लगती है तो पति डर जाता है। जरूर जेब में हाथ डालेगी। अन्यथा कोई फिक्र नहीं करता एक-दूसरे की। जब कुछ काम लेना हो, नए गहने बनवाने हों, नई साड़ियां खरीदनी हों, तब पति के प्रति पत्नी अतिशय प्रेम से भर आती है। प्रेम भी साधन हो गया, निर्वाण न रहा। लोभ ने सभी चीजों को विकृत किया। लोभ ने सभी के प्रति व्यभिचार किया।
जीवन को एक और भी ढंग है देखने का, जहां प्रत्येक चीज अपना लक्ष्य है, कहीं और पार लक्ष्य नहीं है। जहां यही क्षण गंतव्य है, और कहीं गंतव्य नहीं। प्रेम प्रेम के लिए, ध्यान ध्यान के लिए।
तुम तो अहिंसक बनते हो, ब्रह्मचर्य लेते हो, वह भी साधन है स्वर्ग जाने का। तुम तो किसी की सेवा भी करते हो तो उसमें भी नजर तुम्हारी रहती है कि परमात्मा देख रहा है कि नहीं। कितनी सेवा की है, हिसाब लिख लिया गया कि नहीं।
लोभ का रास्ता और, निर्वाण का रास्ता और। निर्वाण के रास्ते का अर्थ
ही यही है कि तुम्हारे जीवन की प्रत्येक घड़ी साध्य हो जाए ब्रह्मचर्य के लिए। ब्रह्मचर्य का आनंद इतना है कि अब तुम और स्वर्ग मांगते हो? साफ है कि तुम्हें ब्रह्मचर्य का आनंद नहीं मिला; इसलिए तुम उसका फल चाहते हो। नहीं तो ब्रह्मचर्य व्यर्थ की मेहनत हो गई, व्यर्थ की परेशानी हुई। तुमने उपवास किया, अब तुम कहते हो, स्वर्ग में जगह चाहिए। उपवास का अपना ही आनंद है। अगर ठीक से किया, अगर जाना कि कैसे करें, तो उपवास का परम आनंद है। वह उपवास में ही मिल जाएगा। वह शांति, वह सरलता, जो उपवास की घड़ियों में घटती है; वह निर्भार हो जाना, पंख लग जाना, जो उपवास की घड़ियों में घटते हैं; एक भीतर स्वच्छता का अनुभव, एक ताजगी का भर जाना, वह जो उपवास में उतरता है, अपने-आप में परिपूर्ण है। कहीं और जाने की जरूरत नहीं। कुछ और मांगने का सवाल नहीं। जिसने उपवास किया, उसने पा लिया।
प्रार्थना का मजा प्रार्थना में परिपूर्ण है। फिर तुम जब हाथ फैलाते
हो मांगने के लिए, तो इतना ही बताते हो कि प्रार्थना झूठ थी। तुम्हें प्रार्थना में कुछ न मिला, अब तुम और हाथ फैलाते हो? प्रार्थना भी मतलब से करते हो? प्रार्थना भी तरकीब थी परमात्मा को फुसलाने की? प्रार्थना भी जैसे खुशामद थी!
संस्कृत में तो प्रार्थना को स्तुति ही कहते हैं--खुशामद; कि तुम महान हो, बड़े हो, ऐसे हो, वैसे हो--मतलब की बातें हैं। जब काम पड़ा, कह लीं; जब काम न रहा, कौन करता है याद!
तो दुख में खुदा याद आ जाता है। पीड़ा में परमात्मा की बातें होने लगती हैं। सुख में सब भूल जाते हैं। स्तुति शब्द ही गंदा है--खुशामद! कुछ पाने की इच्छा! तो परमात्मा को तुम फुसला रहे हो बड़ा-बड़ा कहकर। तुम उसके अहंकार को फुला रहे हो। तुम उससे कह रहे हो, देखो, इतना बड़ा कहा, अब सिद्ध करना कि हो इतने बड़े। तो प्रार्थना जब पूरी कर दोगे तो सिद्ध हो जाएगा कि जरूर बड़े

हो; फिर और बड़ा कहेंगे। तुम खेल किससे खेल रहे हो? तुम अपनी मूढ़ता परमात्मा के भीतर भी डाल रहे हो।
तुमसे इसी तरह काम चलता है। तुमसे जब किसी को काम लेना होता है तो वह कहता है, अहा! तुम जैसा कोई आदमी नहीं; महात्मा हो। सब बातें करके वह कहता है, एक पांच रुपया उधार चाहिए। अब तुम जरा मुश्किल में पड़ते हो; क्योंकि इसने महात्मा भी कहा, अब इज्जत का भी सवाल है। अब पांच रुपए के पीछे कोई महात्मापन खोता है? अब दे ही दो; ज्यादा से ज्यादा ले ही जाएगा। उसने भी इसीलिए कहा। दे दोगे तो वह भी मुस्कुराएगा सीढ़ियां उतरकर कि खूब बनाया। मतलब था।
तुम अहंकार की भाषा समझते हो तो तुम सोचते हो, परमात्मा भी अहंकार की
ही भाषा समझेगा। निर्वाण का रास्ता नहीं है, लोभ का रास्ता है। प्रार्थना तो इतनी सुंदर है अपने में, इतनी पूरी है अपने में, परिपूर्ण है; उससे ज्यादा और पूर्णता कुछ हो नहीं सकती। जो नाच लिया प्रार्थना में, जो गीत गा लिया, उस पर वर्षा हो गई अमृत की। वह भर गया; उसकी झोली भरी है। झोली फैलाने की जरूरत नहीं है। प्रार्थना के बाद प्रार्थना का फल नहीं है, प्रार्थना में है; प्रार्थना में अंतर्निहित है। इसलिए तो भक्ति-सूत्र में नारद ने कहा, भक्ति अपना फल है; साधन नहीं, साध्य है। लेकिन तुम अगर लोभ से भरे रहे तो तुम प्रार्थना भी कर लोगे, वर्षा हो
भी जाएगी और तुम अछूते रह जाओगे। परमात्मा द्वार पर भी आ जाएगा, तुम्हारी नजर उसकी जेब पर ही लगी रहेगी। तुम परमात्मा के हृदय में प्रवेश न पा सकोगे।
किरन आफताब की दस्ते-दर पे तपिश छिड़क के चली गई
सूरज की किरण तुम्हारे द्वार पर भी आएगी, अपनी ऊष्मा, अपनी गर्मी छिड़क
कर चली भी जाएगी।
किरन आफताब की दस्ते-दर पे तपिश छिड़क के चली गई
मगर एक जईए मनफइल जो बुझा रहा सो बुझा रहा
लेकिन तुम बुझे के बुझे रहे। तुम अपने अहंकार में, अपने संकोच में, अपने लोभ में दबे रहे, सो दबे रहे। किरण आई भी और गई भी।
सारी बदलाहट लोभ से निर्वाण के रास्ते पर है। उससे बड़ा और कोई इंकलाब नहीं, कोई और बड़ी क्रांति नहीं, महाक्रांति है। बस, एक ही क्रांति है इस संसार में--लोभ से निर्वाण के रास्ते पर बदलाहट।
पूछो मत जीवन में कि किसलिए है? जीयो। और प्रत्येक क्षण को अपनी मंजिल
हो जाने दो; फिर किरणों का राज खुल जाएगा; फिर फूलों की गंध तुम्हारी तरफ उठने लगेगी; फिर तुम जीवन को एक और ही नई आंख से देखोगे। सब कुछ था, लेकिन तुम्हारी लोभ की नजर के कारण तुम अंधे थे। सब कुछ मिला ही हुआ था। कुछ कमी न थी। कभी भी कमी न थी। अभी भी कमी नहीं है। कभी भी कमी न होगी। सिर्फ तुम अपनी लोभ की आंख के कारण अंधे थे।
कभी राह मैंने बदली तो जमीं का रक्स बदला
कभी सांस ली ठहरकर तो ठहर गया जमाना
तुम्हारे ऊपर सब निर्भर है। तुम्हारे देखने के ढंग पर सब निर्भर है। संसार का अर्थ है, लोभ की दृष्टि से देखा गया परमात्मा; तब संसार दिखाई पड़ता है। परमात्मा का अर्थ है, निर्वाण की दृष्टि से देखा गया संसार; तब परमात्मा दिखाई पड़ता है। वही है। संसार और परमात्मा दो नहीं हैं।
झेन फकीरों में वचन है कि संसार और निर्वाण एक हैं। बड़ी उलटी बात मालूम पड़ती है, लेकिन बात जरा भी उलटी नहीं है। सत्य तो एक ही है, देखने के ढंग दो हैं। देखने के ढंग पर सब निर्भर है।
ऐसा हुआ कि मैं अपने एक मित्र के साथ एक बगीचे की बेंच पर बैठा था। विश्वविद्यालय में जब पढ़ता था तब की बात है। सांझ का वक्त था, धुंधलका उतर आया था। और दूर से एक लड़की आती हुई मालूम पड़ी। उस मित्र ने उस लड़की की तरफ कुछ वासना-भरी बातें कहीं। जैसे-जैसे लड़की करीब आने लगी, वह थोड़ा बेचैन हुआ। मैंने पूछा कि मामला क्या है? तुम थोड़े लड़खड़ा गए! उसने कहा कि थोड़ा रुकें; मुझे डर है कि कहीं यह मेरी बहन न हो।

और जब वह और करीब आई और बिजली के खंभे के नीचे आ गई--वह उसकी बहन ही थी। मैंने पूछा, अब क्या हुआ? यह लड़की वही है; जरा धुंधलके में थी, वासना जगी। पहचान न पाए, वासना जगी। अब पास आ गई, अब थोड़ा खोजो अपने भीतर, कहीं वासना है? वह कहने लगा, सिवाय पश्चात्ताप के और कुछ भी नहीं। दुखी हूं कि ऐसी बात मैंने कही, कि ऐसे शब्द मेरे मुंह से निकले। मैंने उससे कहा कि जरा ख्याल रखना, सारी बात दृष्टि की है। अब यह भी हो सकता है कि और पास आकर पता चले, तुम्हारी बहन नहीं; फिर नजर बदल जाएगी; फिर नजर बदल जाएगी, फिर वासना जगह कर लेगी।
सत्य तो एक ही है। जब तुम लोभ की नजर से देखते हो, संसार बन जाता है। जब तुम निर्वाण की नजर से देखते हो, परमात्मा बन जाता है।
कभी राह मैंने बदली तो जमीं का रक्स बदला
कभी सांस ली ठहरकर तो ठहर गया जमाना
यह जो तुम्हें इतनी चहल-पहल दुनिया में दिखाई पड़ती है, यह जो इतना उपद्रव दिखाई पड़ता है, यह भी इसलिए दिखाई पड़ता है कि तुम भीतर उपद्रव में हो। अगर वहां सब शांत हो जाए, तुम अचानक पाओगे कि सब तरफ शांति ही शांति है। जो भीतर शांत हुआ, उसने सब तरफ शांति पाई। जो भीतर चुप हुआ, उसने सब तरफ चुप्पी पाई। जो भीतर आनंदित हुआ, उसने सब तरफ आनंद पाया।
यह दुख की रात तुम्हारे भीतर का ही फैलाव है। यह नर्क तुमने ही बोया है; तुम्हारी ही दृष्टि का फल है। इसको बदलना नहीं है, अपनी दृष्टि को बदल लेना है। दृष्टि के बदलते ही सृष्टि बदल जाती है।
रूहे-मुतरिब में नए राग ने अंगड़ाई ली
साज महरूम था जिस धुन पे वह धुन जाग पड़ी
पर्दा-ए-साज से तूफाने-सदा फूट पड़ा
रक्स की ताल में इक आलमे-नौ झूम उठा
जैसे वीणा रखी है, अनछुयी, और तुमने अंगुलियों से इशारा किया--सोया हुआ राग फूट पड़ा; ऐसे ही तुम्हारी दृष्टि के बदलते ही कुछ सोया हुआ राग फूट पड़ता है। तुम्हारी सांस के ठहरते ही, तुम्हारे थो.ेडे शांत होते ही, तुम्हारे थोड़े ध्यानस्थ होते ही, सारा जगत एक दूसरा ही रहस्य हो जाता है। रूहे-मुतरिब में नए राग ने अंगड़ाई ली
साज महरूम था जिस धुन पे वह धुन जाग पड़ी
अभी तक तुम ऐसे हो, जैसे सितार सोया हो; किसी ने छेड़ा न हो; अभी तक तुम ऐसे हो, जैसे रात हो और सुबह न हुई हो।
पर्दा-ए-साज से तूफाने-सदा फूट पड़ा
रक्स की ताल में इक आलमे-नौ झूम उठा
इधर भीतर तुम नाचे कि सारा संसार तुम्हारे चारों तरफ नाचने लगता है। इधर तुम कृष्ण हुए कि उधर रास सजा।
आज की सुबह मेरे कैफ का अंदाज न कर
दिले-वीरां में अजब अंजुमन आराई है
और तब तुम कह सकोगे कि हिसाब मत लगाओ। यह जो सुबह आई, यह जो राग नया फूटा, अब अंदाज मत लगाओ! मेरी मस्ती का कोई अंदाज नहीं लग सकता।
आज की सुबह मेरे कैफ का अंदाज न कर
दिले-वीरां में अजब अंजुमन आराई है
सूखे रेगिस्तान में हृदय के वसंत का आगमन हुआ है।
धर्म इस वसंत की खोज है। निर्वाण की दृष्टि उसे पाने का सूत्र है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 3
अट्ठाईसवां प्रवचन

जागरण और आत्मक्रांति

पहला प्रश्नः लोभ और लाभ का रास्ता ईर्ष्या और घृणा से, भय और दुश्चिंता से पटा पड़ा है; वह जीवन में जहर घोलकर रख देता है, ऐसा मेरे लंबे जीवन का अनुभव है। फिर भी क्या कारण है कि किसी न किसी रूप में लाभ की दृष्टि बनी ही रहती है?

लाभ से जीवन में दुख आया, लोभ से जीवन में जहर मिला, लोभ से जीवन में विपदाएं आयीं, कष्ट-चिंताएं आयीं, अगर ऐसा समझकर लोभ को छोड़ा तो लोभ को नहीं छोड़ा। क्योंकि यह समझ ही लोभ की है।
जहां अमृत की आकांक्षा की थी, वहां जहर पाया--हानि हुई, लाभ न हुआ। जहां सुख चाहा था, वहां दुख मिला--हानि हुई, लाभ न हुआ। सोचा था चैन और सुख और शांति का जीवन होगा, दुश्चिंता से पट गया--हानि हुई, लाभ न हुआ।
लोभ में हानि पाई इसलिए लोभ से छूटने चले, यह तो फिर लोभ के हाथ में ही
पड़ जाना हुआ। हानि दिखाई पड़ती है लोभ की दृष्टि को।
इसे समझने की कोशिश करना, बारीक है। कौन है जिसको दिखाई पड़ता है कि हानि हुई? कौन कहता है तुमसे कि हानि हुई? लोभ, लोभ की वृत्ति ही तुम्हें हानि दिखला रही है। अब अगर तुम बच रहे हो, बचना चाहते हो, तो तुम लोभ से नहीं बचना चाह रहे हो, लोभ की दृष्टि ने तुम्हें जो हानि दिखाई, तुम हानि से बचना चाहते हो।
अगर लोभ में हानि न होती तो? अगर लोभ से सुख-शांति मिली होती तो? अगर लोभ से चिंताएं न आतीं, चैन आता तो? तो तुम लोभ को छोड़ते?
तुम कहते, फिर क्या बात थी छोड़ने की? लोभ के कारण ही तुम लोभ को भी छोड़ने को उत्सुक हो जाते हो। तो ऊपर से लोभ छूटता दिखाई पड़ता है, भीतर से तुम्हें पकड़ लेता है; और भी सूक्ष्म हो जाता है।
अगर दृष्टि ठीक हो--ठीक दृष्टि का अर्थ है, लोभ के ढंग से जीवन को देखो
ही मत--तब तुम्हें ऐसा न लगेगा कि लोभ के कारण जहर मिला। जिससे अमृत नहीं मिल सकता, उससे जहर भी कैसे मिलेगा? और जिससे लाभ नहीं हो सकता, उससे हानि कैसे होगी? अगर तुम लोभ को गौर से देखोगे तो तुम पाओगे, कुछ भी न मिला--हानि तक न मिली। हानि भी मिल जाती तो भी ठीक था; हाथ में कुछ तो होता। कहने को कुछ तो होता--मिला। जहर भी न मिला।
लोभ नपुंसक है; उससे जहर भी पैदा नहीं होता। तब तुम्हें लोभ में हानि नहीं, लोभ की व्यर्थता दिखाई पड़ेगी। और इन दोनों बातों में भेद है।
लोभ की व्यर्थता का अनुभव लोभ की मृत्यु हो जाती है। लोभ की असारता का अनुभव! हानि की मैं नहीं कह रहा हूं। क्योंकि हानि में तो फिर लोभ छिपकर बच जाता है। और यही चल रहा है। जिन्हें हम धार्मिक लोग कहते हैं, वे नए लोभ से पीड़ित हो गए लोग हैं; और कुछ भी नहीं। संसार को व्यर्थ पाया ऐसा नहीं, संसार को हानिपूर्ण पाया; तो लाभ के लिए स्वर्ग की तरफ देख रहे हैं। यहां हाथ खाली रह गए, स्वर्ग में भरने की चेष्टा कर रहे हैं। जिंदगी तो गंवाई ही गंवाई, परलोक को भी गंवाने के लिए अब तैयार हैं।
तुम परलोक में क्या पाना चाहते हो? थोड़ा सोचो; तुम वही पाना चाहते हो,
जो तुम यहां नहीं पा सके हो। अगर तुम अपने परलोक की बात मुझसे कह दो, तो मैं ठीक से जान लूंगा कि इस संसार में तुम्हें क्या-क्या नहीं मिला; क्योंकि परलोक परिपूरक है। अगर तुमने यहां सुंदर स्त्री न पाई, जो कि पानी असंभव है; क्योंकि सौंदर्य का कोई वास्ता शरीर से नहीं। यहां अगर तुमने सुंदर पति न पाया, जो कि पाना असंभव है; क्योंकि सौंदर्य तो आत्मिक सुगंध है। जिनके पास आत्मा ही नहीं है, वे सुंदर कैसे हो सकेंगे? दिख सकते हैं,
हो नहीं सकते। तो दूर से दिखाई पड़ेंगे, जब पास आओगे, कांटे चुभेंगे। दूर से सौंदर्य जो दिखाई पड़ता था, पास आते ही कुरूपता हो जाता है। और जहां से सुगंध मालूम होती थी, वहां दुर्गंध के अनुभव होने लगते हैं। सुंदर लोगों

से जरा दूर रहना--अगर उनको सुंदर ही देखते रहना हो। उनके पास आए तो जल्दी ही सौंदर्य समाप्त हो जाएगा।
तो फिर तुम अप्सराओं की कल्पना करोगे स्वर्ग में; देव पुरुषों की कल्पना करोगे--स्वर्ण की उनकी देह! यहां देह को बड़ा दीन और जर्जर पाया, हड्डी, मांस-मज्जा का पाया; तो तुम वहां स्वर्ण की देह की कल्पना कर रहे हो। यहां तुमने जो नहीं पाया, वही स्वर्ग में तुम वासना कर रहे हो। लोभ ने स्थान बदल लिया, दिशा बदल ली। लोभ गया नहीं।
एक जैन मुनि मुझे मिलने आए थे। तो मुझे उन्होंने कहा, इस संसार में सभी क्षणभंगुर है। पाना हो तो कुछ स्थाई संपदा पानी चाहिए। उनकी भाषा समझो; वह दुकानदार की भाषा है, साधु की नहीं। संसार में स्थाई संपत्ति की खोज की थी, वह नहीं मिली, क्षणभंगुर पाया; अब वे स्थाई संपत्ति की खोज कर रहे हैं। तुम उन्हें त्यागी कहते हो। संपत्ति की खोज जारी है।
इतना ही फर्क पड़ा है कि तुम जरा भोले-भाले हो, वे जरा चालाक हैं। तुम भोले-भाले हो, तुम ऐसी संपत्ति के पीछे दौड़ रहे हो, जो क्षणभंगुर है। वे जरा चालाक हैं, होशियार हैं। वे स्थाई संपत्ति के पीछे दौड़ रहे हैं। तुम मृग-मरीचिका के पीछे भटक रहे हो, वे असली संपत्ति के पीछे भटक रहे हैं; लेकिन संपत्ति की दौड़ जारी है।
मैं तुमसे कहता हूं, संपत्ति मात्र क्षणभंगुर है--स्वर्ग की हो, पृथ्वी की हो, कुछ भेद नहीं पड़ता। जो बाहर है, वह शाश्वत तुम्हारे साथ नहीं हो सकता। और भीतर जो है, वही तुम्हारे साथ शाश्वत है। लेकिन उसे संपत्ति की भाषा में बोलना भी ठीक नहीं; क्योंकि वह भाषा लोभ की है। तुम जब सारी संपत्ति की आकांक्षा छोड़ दोगे, संपत्ति मात्र की आकांक्षा छोड़ दोगे-- पृथ्वी की और परलोक की सब; तब अचानक तुम पाओगे कि जिसे तुम खोजते थे, वह तुम्हारे भीतर मौजूद है।
मगर ध्यान रखना, तुम इसे पाने के लिए मत छोड़ना आकांक्षा; नहीं तो न पा सकोगे। क्योंकि फिर तो लोभ ने ही काम किया। फिर तो तुमने ऊपर-ऊपर छोड़ा, भीतर-भीतर नहीं छोड़ा।
मेरे पास लोग आते हैं। वे ध्यान करते हैं। उनको मैं कहता हूं कि देखो, ध्यान से कुछ आकांक्षा मत रखना--आनंद की, शांति की, अनुभव की, कोई आकांक्षा मत रखना; तुम सिर्फ ध्यान करना। परिणाम में बहुत कुछ घटता है, लेकिन तुम फलाकांक्षी मत होना। परिणाम में अपने से घटता है, तुम्हारी फलाकांक्षा की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारी फलाकांक्षा बाधा बन जाएगी। क्योंकि जो व्यक्ति शांति पाने के लिए ध्यान कर रहा है, वह ध्यान कर ही नहीं पाता। वह पूरे वक्त नजर लगाए हुए है कि शांति कब मिले... शांति कब मिले... । यही अशांति हो जाती है। छोड़ो फिक्र यह। तुम ध्यान करो, तुम फल पर नजर मत रखो। शांति आती है ध्यान के पीछे अपने आप। तुम्हें उसकी खबर रखने की जरूरत नहीं।
तो वे कहते हैं, अच्छी बात; तो अगर हम शांति की आकांक्षा छोड़कर ध्यान करें तो फिर शांति मिलेगी?
उनके ख्याल में नहीं आ रहा है कि वे क्या कह रहे हैं। मन ने फिर धोखा दिया। अब मन कहता है, चलो यह शर्त भी पूरी कर देंगे, अगर शांति मिलती हो। तो शर्त पूरी कहां हुई?
कुछ दिन बाद वे फिर आ जाते हैं कि आपने कहा था, आकांक्षा भी छोड़ दी; मगर अभी तक शांति नहीं मिली। अगर आकांक्षा ही छोड़ दी तो अब यह कौन है जो कहता है कि शांति नहीं मिली? आकांक्षा भीतर बनी रही है; कोने में खड़ी देखती रही है कि मिलती है कि नहीं? देखो, यहां तक कर दिया कि आकांक्षा भी छोड़ दी।
मन के इस सूक्ष्म जाल को समझने की कोशिश करना; अन्यथा तुम नए-नए ढंग से संसार बनाते रहोगे। संसार वही है, रंग-रूप बदल जाते हैं। चांद-तारों पर बनाओ कि पृथ्वी पर बनाओ, क्या फर्क पड़ता है? यह भी चांद-तारा है।
मन की दौलत हाथ आती है तो फिर जाती नहीं
तन की दौलत छांव है आता है धन जाता है धन
लेकिन दौलत की भाषा ही लोभ की भाषा है। इससे लोभी उत्सुक हो जाता है सुनकर--

मन की दौलत हाथ आती है तो फिर जाती नहीं
तुम भी दौलत ऐसी ही चाहते हो, जो हाथ आए और फिर जाए न। कोई चुरा न सके, सरकार छीन न सके, दिवाला निकल न सके, बाजार के भाव-ताव गिरने से तुम्हारी संपदा के मूल्य में कोई फर्क न पड़ता हो। तुम भी संपदा तो ऐसी ही चाहते हो। और जब कोई तुम्हारे मन को उकसाता है और कहता है--
मन की दौलत हाथ आती है तो फिर जाती नहीं
लोभ जगता है। तुम कहते हो, चलो, इसे भी खोज लें।
तन की दौलत छांव है आता है धन जाता है धन
यह तो तुम्हें भी पता है। यह तो तुम्हें भी मालूम है। यह तो तुम्हारी जिंदगी में भी अनुभव आया है।
तो लोभी परलोक का लोभ देखने लगता है, भीतर का लोभ देखने लगता है।
लेकिन लोभी उसे पा ही नहीं सकता। जो भीतर की है, उससे लोभ का कोई संबंध नहीं जुड़ता। लोभ की दृष्टि ही बाहर जाती हुई दृष्टि है।
तो अगर तुमने देखा कि लोभ ने दुख दिया, पीड़ा दी, नर्क बनाया, इसलिए तुम भागने लगे लोभ से, तो तुम भागे नहीं, लोभ तो बच गया। तुम हानियों से भागे।
तुम नुकसान से भागे।
करो क्या? गौर से देखो, फिर से देखो; जहर नहीं दे सकता लोभ। क्या लोभ जहर देगा? लोभ सिर्फ सपने दे सकता है। लोभ सिर्फ झूठ दे सकता है। जहर तो सच्चाई है, वह लोभ से नहीं मिलता। लोभ सिर्फ सपने बसा सकता है चारों तरफ। आंख जब खुलेगी तो तुम ऐसा न पाओगे कि हाथ में कूड़ा-करकट है, कूड़ा-करकट भी नहीं है। आंख जब खुलेगी तो तुम ऐसा न पाओगे कि हाथ में जहर है, सपनों ने जहर दे दिया। सपने क्या जहर देंगे? और सपने अगर जहर दे दें तो सपने नहीं, सच हो गए। और फिर तो भागने की जरूरत नहीं है। जहां से जहर निकल आया, वहां से अमृत भी निकलेगा।

तुमने समुद्र-मंथन की कथा पढ़ी है। मंथन हुआ तो जहां से जहर निकला वहीं
से अमृत भी निकला। असल में जहां से जहर निकल आया, वहां से अमृत निकलने की सुविधा शुरू हो गई। इतना यथार्थ! जहां से मौत निकल सकती है, वहीं से जीवन भी निकल सकता है। जहां से कांटा निकल आया, अब फूल भी निकल सकता है। थोड़ा और खोजना होगा।
अगर तुमने देखा कि जहर निकला है लोभ से, तब तुम्हारी खोज बंद न होगी। तुम कहोगे, जब जहर तक निकल आया तो अमृत भी थोड़े दूर होगा; और थोड़े चले चलें, यह घूंट भी पी जाएं, थोड़े और बढ़ लें। जागोगे तो तुम उस दिन, जिस दिन तुम पाओगे कि लोभ नपुंसक है; इससे कुछ भी नहीं निकलता। यह खाली आपा-धापी है। यह व्यर्थ की दौड़-धूप है। यह नशे में चलते हुए आदमी के सपने हैं। जब जाग होती है तो कुछ भी हाथ में नहीं होता। तब लोभ टूटेगा।
"माना कि लोभ और लाभ का रास्ता ईर्ष्या, घृणा और भय और दुश्चिंता से पटा है।"
यह लोभ ही बोल रहा है। यह लोभ ही डर रहा है। लोभ कुछ और चाहता था, वैसा
न हुआ।
"वह जीवन में जहर घोल देता है, ऐसा मेरे लंबे जीवन का अनुभव है।"
ऐसा लंबे लोभ का अनुभव है। यह लोभ की प्रतीति है। यह जागरण की प्रतीति नहीं है। और इसमें भटक जाना बहुत आसान है। अगर इस कारण तुमने लोभ की दुनिया छोड़ने की कोशिश की तो तुम लोभ को कहीं और आरोपित कर लोगे। तुम दान करोगे, लेकिन स्वर्ग में मांग करोगे। तुम बदला चाहोगे। तुम सेवा करोगे तो तुम प्रतीक्षा करोगे कि कब अमृत की वर्षा मेरे ऊपर हो। लोभ बड़ा कुशल है--बच गया; छिप गया भीतर।
और अब उसने जो छांव अपने लिए बनाई है, वह ज्यादा देर टिकेगी। अब तो तुम बहुत ही सजग होओगे तो ही समझ पाओगे। संसार में जो लोभ की यात्रा चलती है, वह तो मूढ़ भी समझ लेते हैं, बड़ी स्थूल है। लेकिन परलोक के नाम से जो लोभ की यात्रा चलती है, बड़ी सूक्ष्म है। तुम्हारे तथाकथित बुद्धिमान भी नहीं समझ पाते। कोई कभी हजारों में एक जाग पाता है और देख पाता है।
सौ बार तेरा दामन हाथों में आया

जब आंख खुली देखा अपना ही गिरेबां था
सपने में तुम कितने ही बार, क्या-क्या नहीं सोच लेते हो! अपने ही कपड़े
को पकड़ लेते हो, सोचते हो, प्रेमी का दामन हाथ में आ गया, प्रेयसी का दामन हाथ में आ गया। आंख खुलती है, पाते हो, अपना ही कपड़ा है।
जिसको तुमने लोभ कहा है, वह तुम्हारी मूर्च्छा है। मूर्च्छा को तोड़ो। लोभ को छोड़ने की बात ही मत सोचना। क्योंकि तुम छोड़ोगे तभी, जब तुम्हें कुछ मिलने की आकांक्षा होगी। इसलिए छोड़ने की बात ही छोड़ दो। त्यागने की भाषा का उपयोग ही मत करना, क्योंकि वह भोगी की ही भाषा है। वह भोगी ही शीर्षासन कर रहा है अब। पहले पैर के बल खड़ा था, अब सिर के बल खड़ा हो गया--वह है भोगी ही। पहले गिनता था तिजोड़ी में कितने रुपए हैं, अब गिनती रखता है कि कितने त्यागे हैं। पहले गिनता था, अब भी गिनता है। गिनती में कोई फर्क नहीं पड़ा है। पहले सिक्के स्थूल थे, अब बड़े सूक्ष्म हो गए हैं।
तुम जाकर देखो तुम्हारे मंदिरों में बैठे हुए साधु-संन्यासियों को, हिसाब रखे बैठे हैं; डायरी भरते हैं, कितने उपवास किए; इस वर्ष कितने उपवास किए। सिक्के कमा रहे हैं, बैंक बैलेंस इकट्ठा कर रहे हैं। ये परमात्मा के सामने जाकर अपनी पूरी फेहरिश्त रख देंगे कि देखो, इतने उपवास किए, इतनी प्रार्थना की, इतने व्रत-नियम लिए। यह लोभ ही है--नए ढंग पर खड़ा हो गया। मैं तुमसे कहता हूं, लोभ को छोड़ने की बात ही मत करना। क्योंकि छोड़ते
तो तुम तभी हो कुछ, जब पाने के लिए पहले इंतजाम कर लो। तुम पूछोगे, छोड़ें किसलिए? चूंकि तुम पूछते हो, छोड़ें किसलिए, कुछ जालसाज तुम्हें बताने मिल जाते हैं कि इसलिए छोड़ो कि स्वर्ग मिलेगा; इसलिए छोड़ो कि पुण्य मिलेगा; इसलिए छोड़ो कि आनंद मिलेगा, ब्रह्म मिलेगा, मोक्ष मिलेगा। छोड़ने के लिए तुम पूछते हो, किसलिए छोड़ें? वे बताते हैं, इसलिए छोड़ो।
और जब तक इसलिए मन में है, तब तक लोभ है।
मूर्च्छा तोड़ो; लोभ को छोड़ो मत। लोभ को पड़ा रहने दो जहां है। तुम जागकर देखने की कोशिश करो। जैसे-जैसे तुम जागोगे, लोभ छोड़ना न पड़ेगा। लोभ ऐसे ही विदा हो जाता है, जैसे दीया जल जाए तो अंधेरा विदा हो जाता है।
कोई अंधेरे को छोड़ता है? दीया जलाकर फिर तुम क्या करते हो? अंधेरे को बाहर फेंकने जाते हो? दीया जलाकर फिर तुम क्या करते हो? अंधेरे का त्याग करते हो? दीया जल गया, बात पूरी हो गई; अंधेरा नहीं है। होश जग गया, बात पूरी हो गई; लोभ नहीं है।
लोभ को छोड़ना नहीं है, जागकर लोभ को देखना है। बस, उस दृष्टि में ही लोभ तिरोधान हो जाता है, तिरोहित हो जाता है। उस आंख को खोजो, जहां अंधकार दीए के सामने आ जाता है--उस आंख को खोजो।
अभी तुमने जो भी देखा है... कभी देखा कि लोभ में बड़ा रस है; कभी देखा, कुछ रस नहीं है, हानि ही हानि है। कभी देखा कि लोभ में बड़े फायदे हैं, फिर पाया कि बड़ी हानियां हैं। मगर लोभ में कुछ है। और जब तक लोभ में कुछ है, तुम उससे मुक्त न हो सकोगे।
जब तक तुम मानते हो, अंधेरे में कुछ है, तब तक तुम मुक्त न हो सकोगे। अंधेरे में कुछ भी नहीं है। अंधेरा बिल्कुल खाली है। अंधेरे का कोई अस्तित्व नहीं है। अंधेरा है ही नहीं। अगर ठीक से समझना चाहो तो अंधेरा केवल प्रकाश का अभाव है। अंधेरा अपने में नहीं है, सिर्फ प्रकाश के न होने में है।
लोभ भी बोध का अभाव है। लोभ अपने में कुछ भी नहीं है। इधर बोध आया, उधर लोभ गया। अभी तुमने जो अनुभव लिया है लोभ का, वह लोभ का ही सार-निचोड़ है। वह रोशनी क्या बनेगी रहमत जो धूप को साथ ला रही हो
वह साया क्या साथ देगा जिंदगी को जन्म लिया जिसने तीरगी में
अंधेरे में ही जिस छाया का जन्म हुआ हो, अंधेरे से ही जो छाया पैदा हुई हो, वह जिंदगी का साथ न दे पाएगी। और उस रोशनी से तुम्हारा मार्ग खुलेगा नहीं, आलोकित न होगा, जिसके साथ कड़ी धूप भी साथ आ रही है।
वह रोशनी क्या बनेगी रहमत
उससे तुम्हारे ऊपर करुणा की वर्षा न होगी!
जो धूप को साथ ला रही हो

तो तुम अपने अनुभवों को गौर से देखना। लोभ में पीड़ा हुई, लोभ में दुख पाया। दुख पाने के कारण तुम लोभ छोड़ना चाहते हो, लोभ को तुमने नहीं छोड़ा अभी; और न तुमने लोभ को जाना। लोभ की असफलता के कारण छोड़ना चाहते हो।
यह असफलता वैसी ही है, जैसे ईसप की कथा में लोमड़ी बहुत उछली-कूदी अंगूर पाने को, और न पा सकी। किसी को पता न चल जाए यह असफलता, उसने चारों तरफ देखा, एक खरगोश छिपा बैठा था झाड़ी में। उसने कहा, मौसी! क्या मामला है? सोचा था, अकेली है, झंझट नहीं है; किसी को पता भी न चलेगा। अब इसको पता चल गया। यह खरगोश अभी सारे जंगल में खबर कर देगा। उसने कहा, कुछ भी नहीं, अंगूर खट्टे हैं।
पहुंच पाई ही नहीं अंगूरों तक। लेकिन अहंकार यह भी मानने को तैयार नहीं होता कि हम असफल हुए। अहंकार कहता है, अंगूर खट्टे हैं। चाहते तो हमारे हाथ में थे, पर खट्टे थे इसलिए छोड़ दिए।
तुम जरा ख्याल करना, अपनी विवशता को त्याग मत समझ लेना। अपनी बेबसी को धर्म मत बना लेना। अपनी कमजोरी को अच्छे-अच्छे शब्दों में मत ढांक लेना। लोभ को सीधे देखना; असफलताओं के माध्यम से मत देखना। असफलता के माध्यम से देखोगे तो तुमने लोभ देखा ही नहीं। तुमने अहंकार की पराजय देखी।
और जहां-जहां अहंकार की पराजय देखी, वहीं-वहीं अहंकार किसी और पर दायित्व को फेंक देना चाहता है। अब वह लोभ पर फेंक रहा है। वह कहता है, यह लोभ ही जहरीला है। इस लोभ के कारण ही हम जिंदगीभर चिंतित रहे थे। चिंतित तुम अपने कारण रहे। चिंतित होने के कारण तुमने लोभ किया।
अगर तुम मुझसे पूछो, लोभ के कारण तुम चिंतित नहीं हो; चिंतित होने के कारण तुम लोभी हो। लोभ ने तुम्हें नहीं हराया, तुम जीतना चाहते थे इसलिए हारे। जीत की चाह ने हराया। अहंकार की हार सुनिश्चित है, क्योंकि अहंकार एक झूठ है। झूठ जीतेगा कैसे? अहंकार के हाथ में अंगूर कभी लग ही नहीं सकते। हमेशा ही वह कहेगा, खट्टे हैं। इसलिए नहीं कि अंगूर खट्टे थे, इसलिए कि अहंकार एक झूठ है; वह असली अंगूरों तक पहुंच ही नहीं सकता। वह केवल झूठ में जी सकता है।
इसलिए अहंकार केवल आशा में जीता है; कल में जीता है, आज में नहीं। कल कुछ होगा, परसों कुछ होगा। कोई हर्जा नहीं है, आज नहीं हुआ, कल हो जाएगा। ऐसे कल पर टालते-टालते एक दिन ऐसी घड़ी आ जाती है कि कल भी नहीं बचता आगे। मौत बीच में खड़ी हो जाती है। अब क्या करे अहंकार? तब अहंकार कहता है, लोभ ने मारा। लोभ पाप का बाप बखाना--अहंकार कहता है।
एक साधु ने मुझे एक कहानी सुनाई। एक गरीब आदमी अपने खेत पर काम करके लौट रहा था; उसने झाड़ी में रुपयों की खनकार सुनी। उसने झांककर देखा, एक संन्यासी सिक्के गिन रहा है। वह सुनता रहा चुपचाप खड़ा। सौ सिक्के संन्यासी ने साफे में बांधे, साफा लगाया। वह गरीब आदमी उसके पास आया, उसके पैर छुए और कहा, महाराज! सौभाग्य से दर्शन हो गए। घर चलें, भोजन स्वीकार करें। संन्यासी ने कहा, बेटा! ऐसे तो हम घर-गृहस्थियों के घर भोजन स्वीकार करते नहीं, लेकिन जब तुमने इतने प्रेम से कहा है तो इनकार भी नहीं कर सकते; चलते हैं। उस गरीब आदमी ने कहा, आपकी बड़ी कृपा। भोजन भी दूंगा, एक नगद रुपया--गरीब आदमी हूं, ज्यादा तो मेरे पास नहीं--वह दक्षिणा भी दूंगा। उसको घर ले आया, उसको भोजन करवाया। भोजन करवाकर उसने अपनी पत्नी को कहा कि वह रुपया, जो रखा है आले में, निकाल ला। वह वहां से चिल्लाने लगी कि रुपया कहां है? यहां तो कोई रुपया नहीं है। कोई चुरा ले गया। वह भी अंदर गया, बाहर भागकर आया और कहा कि रुपया कहां गया? महाराज बड़ी मुश्किल में पड़ गए। एक ही रुपया, गरीब आदमी!
मोहल्ले के लोग इकट्ठे हो गए। किसी ने कहा कि यहां कोई आया तो नहीं इस बीच में? उसने कहा, और तो कोई नहीं आया, बस महाराज जी... मगर उनका तो कोई सवाल ही नहीं है। शक की बात ही नहीं। पर लोगों ने कहा, अरे छोड़ो भी! आजकल साधु बड़े उचक्के, लफंगे सब तरह के हो गए हैं। खाना-तलाशी लेना पड़ेगी। तो उन्होंने खाना-तलाशी ली। सब देख डाला। साफा तो किसी को ख्याल भी न आया। तो उस गरीब आदमी ने कहा कि अब बस, बहुत हो गया; कोई साफा मत उतार लेना।
तो एक आदमी ने झटककर साफा भी उतार लिया। वे सौ रुपए वहां से गिर पड़े। उस

गरीब आदमी से पूछा कि कितने रुपए थे तुम्हारे पास, गिनती है कुछ? उसने कहा, पूरे सौ थे। गिने तो वे सौ ही निकले। अब तो कुछ कहने की बात ही न रही।
महाराज को धक्के देकर बाहर निकाल दिया।
उन साधु ने मुझे कहानी कही और कहा कि लोभ पाप का बाप बखाना।
तो मैंने उनसे पूछा कि संन्यासी लोभी था, यह मेरी समझ में आ गया; लेकिन
वह जो गरीब आदमी घर ले आया था, वह कौन था? इस कहानी से इतना ही सिद्ध होता है कि एक का लोभ हारा, लेकिन दूसरे का तो जीता। इससे लोभ हारा, यह सिद्ध नहीं होता। इससे यह भी सिद्ध नहीं होता कि लोभ बुरा है। इससे इतना ही सिद्ध होता है कि साधु का लोभ हारा, लेकिन उस गरीब आदमी का लोभ तो जीता। और हो सकता है, साधु ने एक-एक रुपया करके बामुश्किल इकट्ठा किया हो और इस गरीब आदमी ने तो बड़ी तरकीब से छीन लिया।
चलते वक्त उस गरीब आदमी ने कहा, महाराज! अब कब आएंगे? तो उसने कहा, अब
जब सौ रुपए फिर हो जाएंगे!
मैंने उन साधु को पूछा कि आप यह कहानी कहकर क्या कहना चाहते थे? साधुओं की कहानी मैं अक्सर गौर से सुनता रहा हूं; क्योंकि उससे उनका मंतव्य जाहिर होता है और उनकी मूढ़ता भी जाहिर होती है। साधुओं की कही गई कहानियों में अक्सर ही मूढ़ता के दर्शन होते हैं। अब यह निपट मूढ़ता की बात हुई। एक का लोभ हारा, एक का जीत गया।
इसे तुम थोड़ा सोचो; अगर तुम्हारा लोभ हार गया हो, तो जरूर किसी का जीता होगा; नहीं तो हारेगा कैसे? अगर तुमने जीवनभर पाया कि तुम्हारा लोभ हार बन गया तो जरूर किन्हीं और के लोभ जीत बन गए होंगे। अगर तुम पराजित हुए हो तो कोई जीता होगा। अगर तुमने सिंहासन गंवाया है तो कोई बैठा होगा। तुम्हें अगर अंगूर हाथ न लगे तो किसी को लग गए होंगे।
यह पराजय लोभ की है या अहंकार की? यह विषाद लोभ का है या अहंकार का है? सिकंदर का लोभ तो हारता हुआ मालूम नहीं होता, जीतता ही चला जाता है। राकफेलर या बिरला के लोभ तो हारते हुए मालूम नहीं पड़ते, जीतते ही चले जाते हैं। तुम्हारा हार गया होगा। इससे लोभ हार गया, यह सिद्ध नहीं होता। इससे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि लोभ के जीतने के लिए जितनी जरूरत थी, वह तुम न जुटा पाए। और तुम भी यह भलीभांति जानते हो। लेकिन यह कहने में भी मन को पीड़ा होती है कि अंगूरों तक मैं न पहुंच पाया। तो तुम कहते हो, अंगूर खट्टे हैं, सारी जिंदगी खटास से भर गई। अंगूर चखे ही नहीं। लोभ जीता ही नहीं। जो अंगूर चखे ही नहीं, वे तुम्हारी जिंदगी को खटास से कैसे भर जाएंगे?
और ध्यान रखना, जो अंगूर खट्टे हों तो आज नहीं कल पक भी जाते हैं, मीठे
हो जाते हैं। जहां खटास है, वहां मिठास पैदा हो सकती है। खटास, मिठास का पहला कदम है। खटास दुश्मन नहीं है मिठास की।
अगर तुम्हें स्वाद में थोड़ा रस है तो तुम समझोगे कि जिस मिठास में खटास नहीं है, या जिस खटास में मिठास नहीं है, उसमें कुछ अधूरापन है। जब कोई चीज खट्टी और मीठी दोनों साथ-साथ होती है, तब उसके रस की गहराई ही बहुत हो जाती है।
नहीं, लोभ का अनुभव नहीं है यह; हार का अनुभव है। और भीतर लोभ मौजूद बैठा है। और लोभ ही कह रहा है कि चलो, यहां हार गए, कहीं और जीतकर तंबू गाड़ दें। इस संसार में विजय-यात्रा न हो सकी, तो चलो परलोक की विजय-यात्रा कर लें। मगर ध्यान रखना, संसार में अगर हार गए तो निर्वाण में न जीत सकोगे। ये छोटे-छोटे क्षुद्र अंगूर भी तुम न पहुंच पाए, तो तुमने निर्वाण के अंगूर क्या इनसे कमजोर समझे हैं, इनसे नीचे समझे हैं? अगर यहां थोड़ा-मोड़ा इंतजाम करना था, वह भी न हो पाया, तो उस विराट आयोजन को तुम कर पाओगे?
ठीक से समझना; जो सिकंदर भी न हो पाया, वह बुद्ध न हो पाएगा। बुद्धत्व
तो और भी ऊंचे आकाश के अंगूरों का तोड़ लेना है। वह तो आखिरी छलांग है। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि जिंदगी से हारे-थके हुए लोग धार्मिक बन जाते हैं। उनके कारण धर्म मुर्दा होता है। धर्म के कारण वे जीवित नहीं हो पाते, उनके कारण धर्म मुर्दा हो जाता है। उनकी हारी-थकी आत्माएं, उदास और विषाद से दबी आत्माएं, मंदिरों को भी उदास कर देती हैं, उत्सव खो जाते हैं।

गौर से देखो, मंदिर, चर्च, गुरुद्वारे--वहां तुम हारे, पराजित लोगों को पाओगे।
वे ऐसे ही हैं, जैसे कि तुम कभी कबाड़खाने में गए, जहां टूटी-फूटी कारें, साइकिलें--अंबार लगे हैं। अस्पताल में जाकर देखा? किसी की टांग बंधी है, किसी का हाथ बंधा है, किसी के कान बंधे हैं, किसी की आंख बंधी है। लंगड़े-लूले, अंधे-काने सब इकट्ठे हैं।
इससे भी बुरी दुर्दशा तुम्हारे मंदिरों, मस्जिदों, गिरजों की है। वहां टूटे-फूटे आदमी--जैसे कबाड़खाने में कारें अटकी रहती हैं, पड़ी रहती हैं, कोई खरीददार भी नहीं--वहां टूटे-फूटे आदमी तुम पाओगे। वे आदमियों के कबाड़खाने हैं।
वहां जिंदगी नाचती हुई न मिलेगी। वहां तुम जिंदगी को गीत गाता हुआ न पाओगे। पराजय से कैसा गीत! अहंकार की उदासी से कैसा नाच! हां, तुम एक बात वहां जरूर पाओगे कि वे उन सब की निंदा करते हुए मिलेंगे, जो जीत रहे हैं। वे उन सब को गालियां देते मिलेंगे, जिनके हाथ में अंगूर पहुंच रहे हैं या पहुंचने के करीब हैं। उनको तुम निंदा करते हुए पाओगे। उनका कुल रस निंदा- रस है।
शास्त्रज्ञों ने नौ रस गिनाए हैं, निंदा को क्यों छोड़ दिया, पता नहीं! साधु- संन्यासियों का तो रस ही वही है--निंदा। सारा संसार गलत है, पापी है। सारा संसार नर्क की तरफ जा रहा है। यह वे बदला ले रहे हैं तुमसे। तुमने उन्हें हराया, तुमने उन्हें मिटाया, तुमने उनकी पहुंच को पहुंचने न दिया, तुमने उनके हाथ अंगूरों तक न पहुंचने दिए। अब उन्होंने अपने अहंकार के लिए नई सुरक्षा कर ली--अंगूर खट्टे हैं और तुम नासमझ हो, इसलिए अंगूरों के पीछे पड़े हो। हम इस क्षणभंगुर संपदा की खोज नहीं करते। हम शाश्वत की खोज कर रहे हैं। हम तो नित्य संपदा की खोज कर रहे हैं। हम कंकड़-पत्थरों की खोज नहीं करते।
मगर तुम कंकड़-पत्थर पाने में भी हार गए। जिन हीरे-जवाहरातों की तुम बातें कर रहे हो, वे कहीं मन का समझाना तो नहीं; सांत्वना तो नहीं? और दिखाई कहीं भी नहीं पड़ता कि तुम्हारे जीवन में कोई किरण उतर रही हो।
तो मैं तुमसे कहता हूं, लोभ की हार को तुम लोभ की समझ मत समझ लेना। लोभ
की पराजय को तुम त्याग का आवरण मत दे देना। बहुत धोखा संभव है। और जितने सूक्ष्म जगत में प्रवेश करते हो, उतने ही धोखे बारीक होते चले जाते हैं। तुम्हारे भोग की पराजय कहीं त्याग का आवरण लेकर फिर न बच जाए। तुम भोग को ठीक से देख लेना; पराजय की फिक्र छोड़ो। मैं तुमसे कहता हूं, अगर तुम जीत भी जाते तो भी जीत कुछ न लाती।
तुम जीते हुए आदमियों से पूछो, बुद्ध-महावीर से पूछो। सब था उनके पास।
लोभ उनका हारा हुआ न था--याद रखना--जीता हुआ था। साम्राज्य था, धन-दौलत थी, घर-द्वार था, सुंदर पत्नियां थीं, सुंदर बच्चे थे। सब कुछ था। भरा-पूरा था। हाथ में अंगूर थे और इन अंगूरों को छोड़कर वे चल पड़े। और अंगूर खट्टे थे, ऐसा भी नहीं, मीठे थे।
अब बुद्ध अगर खोजें भी तो यशोधरा से सुंदर पत्नी खोज पाएंगे? अंगूर मीठे थे, मैं कहता हूं। महावीर अगर खोजें भी तो और क्या सुंदर संसार बना सकेंगे, जो उन्हें बना-बनाया मिला था? अंगूर हाथ में थे और मीठे थे।
लोभ की पराजय के कारण वे छोड़कर नहीं गए थे, क्योंकि लोभ तो जीती हुई हालत में था। लोभ को देखकर गए थे। लोभ की जीत भी व्यर्थ है। लोभ की हार तो व्यर्थ होगी ही, लोभ की जीत भी व्यर्थ है। लोभ का जहर तो व्यर्थ होगा ही, लोभ का अमृत भी व्यर्थ है; क्योंकि दोनों ही सपने हैं। जागने पर पता चलता है, दोनों ही व्यर्थ हैं। असली बात जाग है, जागरण है।
हमने सिकंदरों को नहीं पूजा, क्योंकि वे एक कदम चूक गए। हमने बुद्धों
को पूजा, क्योंकि उन्होंने सिकंदर के आगे का कदम उठा लिया। ध्यान रखना, कभी-कभी स्थितियां समान मालूम पड़ती हैं, इससे धोखे में मत पड़ जाना।
एक आदमी रास्ते पर भीख मांग रहा है, बुद्ध ने भी भीख मांगी। बुद्ध भी रास्ते पर भीख मांग रहे हैं। दोनों भिखारी हैं, लेकिन फर्क करोगे या नहीं? दोनों के हाथ में भिक्षापात्र है माना, लेकिन दोनों का अंतरबोध बड़ा भिन्न

है। एक भिखारी है, सिर्फ भिखारी है। और एक ऐसा भिखारी है, जो सम्राट था। एक ऐसा भिखारी है, जिसने व्यर्थता जानी है सबकी। और एक ऐसा भिखारी है, जो अभी भी कौड़ी-कौड़ी इकट्ठा करके सम्राट होने की चेष्टा में लगा है। दोनों एक से मालूम पड़ते हैं।
यह हालत ऐसी ही है, जैसे कि तुम सीढ़ियों से जा रहे हो, बीस सीढ़ियां हैं, तुम दसवीं सीढ़ी पर पहुंच गए हो। और कोई सीढ़ियों से उतर रहा है, बीस सीढ़ियां हैं, और वह भी दसवीं सीढ़ी पर आ गया है। तुम दोनों एक ही सीढ़ी पर खड़े हो, लेकिन एक उतर रहा है, एक चढ़ रहा है। एक ही सीढ़ी पर खड़े होने से भ्रम में मत पड़ जाना कि तुम एक ही जगह हो। एक उतर रहा है, एक चढ़ रहा है।
बुद्ध उतर आए हैं सिंहासन से, भिखारी चढ़ने की कोशिश कर रहा है। जन्म-जन्म लगेंगे उसे, शायद कभी चढ़ पाए। दोनों भिक्षा के पात्र लिए खड़े हैं एक ही जगह। बड़ी भिन्न है उनकी दशा। बुद्ध जाग गए हैं, सिंहासन की व्यर्थता दिखाई पड़ गई है। यह भिखारी अभी सोया हुआ है। अभी यह सिंहासन बनाने के सपने देख रहा है।
हारकर मत भागना। क्योंकि हारकर अगर यह भिखारी बुद्ध के साथ हो ले, जिसकी बहुत संभावना है; क्योंकि इसको लगे कि क्या सार? जब बुद्ध सब कुछ छोड़कर आ गए तो क्या सार? तो मैं भी साथ हो लूं। यह भी साथ हो ले, मगर इसका साथ होना बहुत सार्थक न हो पाएगा। इसकी चित्त-दशा अलग है। यह जो कहेगा, अपने मन में यही कहेगा कि लोभ में चिंता है, लोभ में हानि है, लोभ में कोई सार नहीं है, लोभ में ऐसा है, लोभ में वैसा है। यह समझाएगा अपने को। यह रहेगा मूर्च्छित। लोभ इसे अभी भी सार्थक है। सार्थकता को दबाने के लिए कहेगा, लोभ जहरीला है, लोभ पाप है। अपने को घबड़ाने के लिए कहेगा कि अगर लोभ में पड़ा तो नर्क में जाना पड़ेगा। अगर लोभ से बचा तो मैं भी स्वर्ग जाऊंगा। यह नए लोभ बनाएगा, पुराने लोभों के प्रति भय खड़े करेगा।
लेकिन बुद्ध के भीतर की दशा और है। लोभ के प्रति कोई विरोध नहीं है अब। लोभ विरोध के योग्य भी नहीं है। इसीलिए तो मैं कहता हूं, संसार छोड़ने के योग्य भी नहीं है। इतना भी मूल्य मत दो। यह भी बड़ा मूल्य हो जाएगा कि छोड़ें; इस लायक भी नहीं है। कोरा सपना है। आंख खोलो, जाना कहीं भी नहीं है। अन्यथा एक के बाद एक नए उलझाव खड़े होते चले जाते हैं।
सारा जोर हमारा इस बात पर है कि जल्दी न करना त्याग की; त्याग को आने देना अपने से। जब अपने से आता है तो परम सुंदर है। जब तुम थोप लेते हो तो कुरूप हो जाता है। जब सहज-स्फूर्त होता है तो उसके लावण्य की बात ही नहीं। वह इस पृथ्वी का नहीं होता, किसी और ही लोक की किरण उतर आती है तुम्हारे अंधकार में। तुम आलोकित हो जाते हो। जब तुम छोड़ते हो तो तुम तुम ही हो, तुम्हारा छोड़ा हुआ बहुत दूर नहीं ले जाता।
पकने दो। जल्दी न करो। फल पककर अपने से गिर जाते हैं। स्वीकार करो, जहां हो, जैसे हो। लोभ है तो लोभ; भय है तो भय। स्वीकार करो। बस, इतना ही ख्याल रखो कि धीरे-धीरे जागकर देखो। दौड़ते रहो लोभ की दुनिया में, मगर धीरे-धीरे जागकर दौड़ने लगो। एक दिन अचानक तुम पाओगे, ठिठककर खड़े हो गए हो। ऐसा नहीं कि तुम्हें अपने को रोकना पड़ा है; बल्कि ऐसा कि जैसे पेट्रोल ही चुक गया है, गाड़ी ठिठककर खड़ी हो गई है। ब्रेक नहीं लगाने पड़े। मूर्च्छा चुक गई, ईंधन चुक गया, अचानक तुम खड़े हो गए हो। उस खड़े होने के सौंदर्य को, उस खड़े होने की महिमा को ही त्याग कहा जा सकता है।
जहां तुमने ब्रेक लगाए, जबर्दस्ती की, किसी तरह खड़े हो गए और इंजिन भरभराता रहा और इंजिन जलता रहा और धुआं फेंकता रहा... । तुम्हारे त्यागी संन्यासी ऐसे ही खड़े हैं; जबर्दस्ती ब्रेक लगाए खड़े हैं। जीवन एक अड़चन बन जाता है--भोग का भी और त्याग का भी। जीवन चाहिए, सहज प्रवाह की भांति। अड़चन न हो।
न पकड़ो, न छोड़ो; जागो। देखो और समझो; और समझ पर भरोसा रखो। यह समझ की परिपक्वता अपने आप क्रांति ले आएगी। ले आती है।

दूसरा प्रश्नः क्या बात है कि कोई न कोई विश्वास पकड़ लेने से--चाहे वह आस्तिकता हो या नास्तिकता, मन बहुत आश्वस्त अनुभव करता है? दोनों को छोड़कर बीच में खड़ा होना उसके लिए असंभव जैसा क्यों है?

अस्तित्व में निर्धारणा के खड़े हो जाने से बड़ा कोई साहस नहीं है। निर्धारणा का अर्थ होता हैः कोई विश्वास नहीं, कोई अंधविश्वास नहीं। निर्धारणा का अर्थ होता हैः अस्तित्व जैसा है, हम उसे वैसा ही देखेंगे। अपनी कोई धारणा बीच में न लाएंगे। न हम कहेंगे, ईश्वर है; न हम कहेंगे कि ईश्वर नहीं है। न हम कहेंगे कि आत्मा है, न हम कहेंगे कि आत्मा नहीं है। हम खोजेंगे।
पर खोज कठिन है। खोज का अर्थ हैः मूल्य चुकाना पड़े। कौन इस झंझट में पड़े? तो हम उधार विश्वास ले लेते हैं। हम कहते हैं, महावीर ने जान लिया, बुद्ध ने जान लिया, कृष्ण ने जान लिया, अब हम क्यों पंचायत में पड़ें? हम इन्हीं को पकड़ लेंगे, इन्हीं के चरणों के सहारे निकल जाएंगे।
यह आस्था नहीं है, यह केवल कमजोरी है। और कमजोर की कोई गति नहीं है। यह भरोसा नहीं है कि हम बुद्ध के चरणों पर चलकर निकल जाएंगे। जिसका अपने पर ही भरोसा नहीं है, उसका बुद्ध पर कैसे भरोसा होगा? तुम्हारे आत्म-अविश्वास से किसी भी तरह की आस्था का जन्म नहीं हो सकता। जब तुम अपने पर ही अभी भरोसा नहीं ला पाए हो तो तुम अपने भरोसे पर कैसे भरोसा ला पाओगे? थोड़ा सोचो तो! उलझन और बढ़ा रहे हो। तुम अगर डगमगाते हो तो तुम बुद्ध के पीछे भी डगमगाते ही चलोगे। क्योंकि डगमगाने का संबंध बुद्ध के पीछे चलने से नहीं है, डगमगाने का संबंध तुम्हारी भाव-दशा से है। तुम अगर संदेह से भरे हो तो तुम छिपा लो संदेह को भला, मिटा न पाओगे। तुम किसी तरह भुला लो भला, समाप्त न कर पाओगे। बुद्ध के पीछे भी चलते रहोगे और भीतर संदेह भी उमगता रहेगा। चलोगे भी और नहीं भी चलोगे।
और यह कोई चलना ऐसी बाहर की यात्रा होती तो बड़ा आसान था; यह बड़ी भीतर
की यात्रा है। बुद्ध के पीछे चलने का अर्थ हैः अपने भीतर जाना; और तो कोई अर्थ नहीं है। वहां तो तुम अकेले हो जाओगे। वहां तो बुद्ध भी साथ न होंगे। वहां तो जितने तुम बुद्ध के करीब आओगे, उतने बुद्ध से दूर हो जाओगे। जितने तुम बुद्ध को समझोगे, उतने अपने करीब आना शुरू हो जाएगा।
अंततः बुद्धों का उपयोग यही है कि वे तुम्हें तुम पर छोड़ दें--पूरा का पूरा। तुम्हें इस योग्य बना दें कि तुम्हें किसी भरोसे की, किसी श्रद्धा की, किसी आस्था की जरूरत न रहे।
आदमी जल्दी भरोसा कर लेना चाहता है। क्यों? क्योंकि खोज से बचना चाहता है। खोज कठिन मालूम पड़ती है। इसलिए हम कोई भी बात मान लेते हैं। किसी ने कह दिया, ईश्वर है, तो मान लिया। किसी ने कह दिया, नहीं है, तो वह भी मान लिया। इसलिए तो तुम्हारा मन एक विडंबना है।
तुमने अनेक लोगों की बातें मान ली हैं। वे सब विपरीत हैं, विरोधी हैं, विरोधाभासी हैं। उन सबमें भीतर कलह मची रहती है। तुम्हारे भीतर एक महाभारत चलता रहता है। एक स्वर कहता है, ईश्वर है; एक स्वर कहता है, नहीं है। एक स्वर कहता है, यह ठीक; एक स्वर कहता है, यह बिल्कुल गलत; जरा भी ठीक नहीं। तुम ऐसे कुरुक्षेत्र में, ऐसे संघर्ष में कहां पहुंच पाओगे?
जो जानते हैं, उन्होंने कहा है, तुम इन सभी धारणाओं को छोड़ दो। तुम निर्धारणा हो जाओ। तुम शून्य भाव को उपलब्ध हो जाओ। सब हटा दो। यह सब कूड़ा- करकट है। जब तुम कोई भी धारणा न रखोगे अपने भीतर, तुम्हारी आंख निर्मल होगी। कोई विचार की तरंग न होगी आंख पर। जैसे झील शांत हो, एक भी तरंग न उठती हो, ऐसी तुम्हारी आंख होगी, जब कोई विचार, विश्वास तुम्हारे भीतर न होगा। उस निस्तरंग आंख में सत्य की झलक बनती है।
धारणा की कोई जरूरत ही नहीं है। जब सत्य सामने खड़ा हो, सीधे-सीधे देखने की जब सुविधा हो, आमना-सामना जब हो सकता हो, तो तुम धारणा के लिए क्यों परेशान हो? धारणाएं देखने नहीं देती हैं। दिखाने में सहायक तो कभी नहीं होती हैं, देखने नहीं देतीं।

जैसे ही तुमने धारणा बनाई कि तुमने एक पर्दा डाल दिया; फिर तुम वही देखोगे, जो तुम्हारी धारणा दिखला सकती है। तुम वह न देखोगे, जो है। तुम वही देखोगे, जो तुम्हारी धारणा में है। तुम अपनी धारणा को जगह-जगह देख लोगे और धारणा मजबूत करते जाओगे। और जो तुम्हारी धारणा के प्रतिकूल पड़ता है, वह तुम देखोगे ही नहीं; उसके प्रति तुम अंधे और बहरे हो जाओगे।
तब तुम अपने भीतर बंद हो गए। तुम एक कारागृह में घिर गए। इस कारागृह
को तोड़ने की जरूरत है। माना कि इससे सांत्वना मिलती है। क्योंकि बिना कुछ किए, बिना खोजे, बिना खोज का श्रम उठाए, बिना कहीं गए, घर बैठे-बैठे तुम ज्ञानी हो जाते हो। काश, ज्ञान इतना मुफ्त होता! काश, ज्ञान इतना सस्ता होता!
ज्ञान आत्मक्रांति है। आग से गुजरना होता है, तभी सोना निखरता है; तभी तुम भी निखरोगे।
और बड़ी से बड़ी जो आग है, वह हैः बिना धारणा के खड़ा हो जाना। क्योंकि तब
यह सारा शून्य आकाश तुम्हें घेर लेता है। कहीं कोई सहारा नहीं बचता। कहीं पैर रखने को जमीन नहीं बचती।
कहां से आए हो, पता नहीं। कहां जा रहे हो, पता नहीं। कौन हो, पता नहीं। इतनी गहन असहाय अवस्था में--कुछ भी पता नहीं; क्यों हूं, किसलिए हूं, कौन हूं, कुछ भी पता नहीं--घबड़ाहट पैदा होती है, बेचैनी उठ आती है। रोआं-रोआं कंप जाता है।
और चारों तरफ फैला हुआ महाशून्य है--अंतहीन! इस शून्य में फिर हम बड़े छोटे मालूम पड़ते हैं, ना-कुछ मालूम पड़ते हैं--एक तिनका भी नहीं। और यह भयंकर आंधियां शून्य की! और यह भयंकर तूफान! और यह जीवन और मरण का इतना बड़ा विराट खेल! और हमें कुछ भी पता नहीं। और हम एक छोटे से तिनके हैं--तिनके भी नहीं।
बड़ी घबड़ाहट होती है। मन होता है, जल्दी कोई सहारा खोज लें। स्वीकार कर लें कि परमात्मा ने संसार बनाया--राहत आ जाती है। तो परमात्मा है! उसी ने हमें बनाया और उसने मनुष्य को अपनी ही प्रतिमा में बनाया--मजा आ गया! कि हम कोई छोटे-मोटे नहीं हैं। कोई तिनके नहीं हैं, परमात्मा ने बनाया है। परमात्मा की छाप हमारे ऊपर है। परमात्मा हमारा स्रष्टा है।
तो हमने परमात्मा को मानकर अपने पैर के नीचे जमीन खड़ी कर ली; अब कोई डर नहीं है। और उसने बनाया है तो वह फिक्र भी रखेगा। और उसने बनाया है तो मंजिल पर भी पहुंचाएगा। और उसने हमें बनाया है अपनी ही प्रतिमा में तो हम कोई साधारण छोटे-मोटे आदमी नहीं रह गए, परमात्मा की प्रतिमा हो गए। अहं ब्रह्मास्मि--मैं ब्रह्म हो गया।
अब बड़ा सुख मिला। अब कोई कठिनाई न रही। अब यह सब जो इतना विराट है, इसके प्रति एक पर्दा पड़ गया और आदमी ने अपने को एक शिखर पर बैठा लिया-- धारणा के शिखर पर।
इसीलिए तो धारणा वाले लोग, विश्वास करने वाले लोग बड़े भयभीत रहते हैं। अगर उनकी धारणा जरा उनके पैर के नीचे से खींचो तो मरने-मारने को उतारू हो जाते हैं। क्योंकि तुम समझ ही नहीं रहे, तुम क्या कर रहे हो। तुम उनका पूरा घर गिराए दे रहे हो। ईश्वर-विश्वासी को कहो कि ईश्वर नहीं है, मरने-मारने को उतारू हो जाता है। इतनी क्या बुरी बात कह दी थी? ऐसी क्या अड़चन आ गई थी? तुम चकित भी होते हो कि क्यों इतना यह परेशान हो गया?
तुमने इसके पैर के नीचे की जमीन खींच ली। यह कोई धारणा ही न थी, इसका
घर था। यह कोई धारणा ही न थी, यह इसका आशियां था। यह कोई धारणा ही न थी, यह इसका सहारा था। तुमने इसे फिर अंधेरे में डाल दिया। तुमने इसे फिर अराजकता में पहुंचा दिया। तुमने इसके संदेह फिर जगा दिए।
मैंने सुना है कि एक आदमी यात्रा कर रहा था। वह ट्रेन में प्रवेश किया--छोटा सा दुबला-पतला आदमी! डरा-डरा, सहमा-सहमा! उसने एक आदमी से, जो अखबार पढ़ रहा था, पूछा कि यह गाड़ी लंदन ही जा रही है? वह आदमी अपने अखबार में लीन था। उसने कहा कि हां, लंदन जा रही है। मगर उसने इस ढंग से कहा कि उस दुबले-पतले कमजोर से आदमी को, डरे से आदमी को भरोसा न आया। वह एक घड़ीभर तो बैठा रहा, फिर उसने कहा, भाई जान! सच में ही यह गाड़ी लंदन जा रही है?

वह अखबार पढ़ने वाला अपने अखबार में लगा है, उसे गुस्सा आया। उसने कहा,
कह दिया एक बार कि लंदन जा रही है; देखते नहीं कि लिखा ही है? डब्बे पर लिखा है, डब्बे के भीतर लिखा है कि लंदन जा रही है। शांत होकर बैठ जाओ। पढ़े-लिखे नहीं हो?
तो वह बेचारा सिकुड़कर अपनी कुर्सी पर शांत होकर बैठ गया। दूसरे स्टेशन पर एक आदमी आया अंदर और उसने उस दुबले-पतले डरे-डरे आदमी से पूछा कि क्या यह गाड़ी लंदन जा रही है? उसने कहा, हे भगवान! फिर तुमने संदेह पैदा कर दिया। किसी तरह अपने को सम्हालकर बैठे थे कि लंदन ही जा रही है; अब यह फिर एक आदमी आ गया, जो पूछता है कि जा रही है लंदन? भीतर तो मन यही पूछ रहा थाः जा भी रही? कहां जा रही?
थोड़ा सोचो, यह पूरी जिंदगी का कारवां कहां जा रहा है? ईश्वर को मान लिया तो कहीं जा रहा है। मोक्ष को मान लिया तो कहीं जा रहा है। अगर मोक्ष नहीं, ईश्वर नहीं, कोई भी धारणा न पकड़ी, कोई शास्त्र न पकड़ा, तो कहां जा रहा है?
तब तुम प्रतिपल जीते हो एक शून्य में। और शून्य में जीना बड़ा साहस है। उसी को मैं संन्यासी कहता हूं, जो शून्य में जीने का साहसी है।
दुस्साहस है, मगर उसी दुस्साहस से आत्मा पैदा होती है। उसी दुस्साहस से, उसी चुनौती से धीरे-धीरे तुम्हारे पैर जमते हैं। शून्य में जिस दिन तुम खड़े होने के आदी हो जाते हो, फिर कोई उसे खींच न सकेगा। परमात्मा को तो कोई भी खींच ले सकता है।
इसलिए बुद्ध ने परमात्मा की बात नहीं कही। क्या फायदा! शब्द ही रह जाते हैं। बुद्ध ने बात ही नहीं कही परमात्मा की। बुद्ध ने कहाः शून्य। कोई धारणा की जरूरत नहीं है। इस क्षण में जीयो; अगले क्षण की बात ही मत पूछो। पूछते ही क्यों हो? इसको ठीक से जी लो। इसी जीने से अगला क्षण निकलेगा। शांत होकर खड़े हो जाओ। इस शून्य में शून्य आंख से ही देखो। शून्य आंख जब इस आकाश के शून्य से मिलती है तो दोनों के बीच सत्य का अनुभव उदय होता है।
तुम कोई विचार लेकर मत जाओ--नग्न! धारणा-शून्य! धारणा के वस्त्रों से मुक्त! कोई सिद्धांत लेकर मत जाओ, कोई शास्त्र लेकर मत जाओ, कोई मत-संप्रदाय लेकर मत जाओ; तुम सीधे निपट शून्य में खड़े हो जाओ--निर्बोध; कुछ पता नहीं। जब तक पता नहीं, मानें भी कैसे? जिसने माना, वह भटका।
मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि तुम उलटी मान्यताओं में पड़ जाओ। कुछ लोग कहते हैं, ईश्वर है; वे भी मानते हैं। कुछ लोग कहते हैं, ईश्वर नहीं है; वे भी मानते हैं। दोनों मान्यताएं हैं। दोनों कमजोर हैं। एक सहारा खोजता है ईश्वर के होने में; एक सहारा खोजता है ईश्वर के न होने में। ईश्वर का न होना भी बड़े सहारे का हो जाता है।
अब अगर तुम वेश्यागामी हो तो ईश्वर का न होना सहारा हो जाएगा। क्योंकि तब तुम मजे से वेश्या के घर जा सकते हो। कोई ईश्वर वगैरह नहीं है। तुम अगर चोर हो, बेईमान हो, ईश्वर का न होना बड़ा सहारा हो जाएगा। कोई ईश्वर नहीं है, कोई पाप-पुण्य नहीं है। मिट्टी-मिट्टी में मिल जाती है, सब खेल खत्म हो जाता है। साधु-असाधु सब कब्र में समान हो जाते हैं। कहीं कोई मूल्य नहीं है। कहीं कोई जीवन का अर्थ नहीं है।
सहारा मिल गया! अब तुम मजे से बेईमानी करो, चोरी करो, जेब काटो। जेब तुम निर्भय होकर काटो, कोई अंतरात्मा की आवाज न उठेगी कि मत काटो।
तो लोग नास्तिकता में भी सहारा खोज लेते हैं, आस्तिकता में भी सहारा खोज लेते हैं। और धार्मिक वही है, जो सहारे न खोजे, सत्य खोजे; जो सांत्वना न खोजे, कंसोलेशन न खोजे, सत्य खोजे; जो संतोष न खोजे, सत्य खोजे।
पर सत्य की खोज थोड़ी लंबी है। क्योंकि तुम्हें ही खोजना पड़ेगा। किसी
और का खोजा हुआ काम न आएगा। फिर से अ, ब, स से शुरू करना पड़ता है। बुद्ध ने जो यात्रा की, वह तुम्हें भी करनी पड़ेगी। ऐसा नहीं कि वे कर चुके तो तुम उनका उधार नक्शा लेकर और यात्रा कर लोगे।

सत्य कुछ ऐसा है, इतना जीवंत है कि उसके कोई बंधे-बंधाए रास्ते नहीं हैं; इसलिए नक्शा बन नहीं सकता। सत्य इतना जीवंत है, इतना गत्यात्मक है कि उसका कोई पता-ठिकाना नहीं है।
बुद्ध को जहां मिला था, वहीं तुमको मिलेगा, जरूरी नहीं है। तुम्हें कहीं और मिलेगा। तुम अलग हो, तुम्हारे होने का ढंग अलग है। अलग ही जगह मिलेगा। जिस शकल और सूरत में बुद्ध ने जाना, तुम न जान पाओगे। तुम्हारा परमात्मा, तुम्हारा सत्य भिन्न होगा। तुम भिन्न हो और तुम्हारे आधार से तुम जो जानोगे, वह भी भिन्न हो जाएगा। सत्य एक ही है।
चांद निकलता है आकाश में--एक चांद है; नदी-नाले हजारों, तालाब-तलैया हजारों; सभी में प्रतिबिंब बनेगा; सभी जगह प्रतिबिंब अलग-अलग बनेगा। कोई नदी स्वच्छ होगी, कोई नदी मटमैली होगी। किसी नदी पर लहरें होंगी, कोई नदी शांत होगी। कोई झील चुपचाप सोई होगी, कोई झील तूफान-आंधियों में होगी। प्रतिबिंब सब जगह बनेंगे, चांद एक है। खबर एक चांद की होगी, लेकिन सभी जगह प्रतिबिंब अलग-अलग बनेंगे।
तुम्हारे भीतर भी परमात्मा ने झांका है, लेकिन तुम्हारी झील प्रतिबिंब बनाएगी। बुद्ध के भीतर भी उसी ने झांका, पर प्रतिबिंब और बना। दर्पण अलग है, प्रतिबिंब अलग हो जाएंगे। जिसका प्रतिबिंब बनता है, वह तो एक है।
और इसलिए तुम कभी किसी दूसरे की धारणाओं को उधार अपने ऊपर मत लाद लेना। क्योंकि उन धारणाओं को अगर तुमने पकड़ लिया तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे। एक तो उन धारणाओं के कारण तुम यात्रा ही न करोगे। क्योंकि तुम्हें पता ही है पहले से, तो जाना कहां है? खोजना क्या है? तुम अपने घर ही बैठ रहोगे। और ध्यान रखना, सच तो यह है कि--
इस दुनिया में हरकत से ही बरकत है
जिसने कुछ ढूंढ़ा होगा तो उसने कुछ पाया होगा
जिसने कुछ ढूंढ़ा होगा तो उसने कुछ पाया होगा
तुम मुफ्त चाहते हो। जो बुद्ध को अनंत कठिनाइयों से मिलता है, जो जीसस
को सूली पर मिलता है, उसे तुम मुफ्त चाहते हो। जो महावीर को बड़ी तपश्चर्या से मिलता है, तुम सिर्फ शास्त्र पढ़कर पा लेना चाहते हो।
क्या महावीर के समय शास्त्र न थे? महावीर भी शास्त्र ही पढ़कर पा लेते। क्या बुद्ध के समय शास्त्र न थे? बुद्ध भी शास्त्र ही पढ़कर पा लेते। अब यह जीसस पागल को क्या सूझी? सूली पर चढ़ने की क्या जरूरत थी? अपने घर के कोने में पूजा-पाठ करके ही पा लेते।
नहीं, लेकिन सत्य सस्ता नहीं है; उसका मूल्य चुकाना पड़ता है। और उसका मूल्य एक ही ढंग से चुकाया जा सकता हैः वह स्वयं के संपूर्ण समर्पण से चुकाया जा सकता है।
धारणाएं तुम्हें अटका लेती हैं। विश्वास तुम्हें रोक लेते हैं। मगर उनमें सांत्वना है, सहारा है। उनमें शराब है। उनको पीकर तुम विस्मृत कर लेते हो। भय कम हो जाता है।
मैंने सुना है, एक सर्कस... यात्रा हो रही थी सर्कस की एक ट्रेन से, और
एक डब्बा खुल गया और एक शेर भाग गया। गाड़ी कहीं खड़ी थी... रात जंगल; तो सर्कस के मैनेजर ने दस-पंद्रह अपने मजबूत आदमी बुलाए और उन सबको शराब पिलाई। जंगल में जाना है, अंधेरी रात है, और उस शेर को पकड़ना है। बिना शराब पीए जाना उचित भी नहीं है। बिना शराब पीए कोई जाएगा ही क्यों?
एक आदमी ने इनकार कर दिया पीने से। उसने कहा कि भई, जंगल है, रात है, अंधेरा है, पी लो। गर्मी रहेगी। उसने कहा कि ऐसे हमें पीने से कोई एतराज नहीं, मगर ऐसी घड़ी में हम कभी नहीं पीते। रात है, अंधेरी है, जंगल है, शेर है, और हम बेहोश! इसीलिए नहीं पीते हैं।
जिंदगी माना अंधेरी है, रात है, रास्तों का कुछ पता नहीं; और मौत जगह-जगह छिपी है--ऐसे में बेहोश होकर मत चलना। ऐसे में मन कहता है कि बेहोश हो लो, फिक्र नहीं फिर। वही तो खतरा है। बेहोशी में आदमी शेर से भी जूझ जाए।
बेहोशी में आदमी मौत से भी जूझ जाए।

तो हजारों तरह की शराबें हैं, जो आदमी को पिलाई जाती हैं। ताकि वह इस जिंदगी में, जो सब जीवन के भय हैं--मौत है, खतरे हैं, शून्य है--इन खतरों की याद न रहे।
समझो कि तुम युद्ध पर जाते हो! तो फिर तुम्हें राष्ट्रीयता की शराब पिलानी पड़ेगी जाने के पहले--सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा।
यह क्या पागलपन है? पहले यह शराब पिलाओ, तब यह आदमी मरने-मारने को उतारू हो जाएगा। झंडा ऊंचा रहे हमारा--अब कुछ और पागलपन करने को नहीं बचा, झंडा ही ऊंचा कर रहे हो? और झंडा काहे के लिए ऊंचा रहे? और झंडे ऊंचे रख-रखकर कितने आदमी मार डाले।
अगर कोई मंगल ग्रह से आकर देखे तो हैरान होगा कि लोगों को हो क्या गया है? झंडा ऊंचा करते हो और काटते हो एक-दूसरे को! और एक-दूसरे का झंडा नीचा करने आते हैं। अगर इतनी ही झंझट है तो पहले ही नीचे कर लो। अगर इस पर इतना बड़ा अटकाव है तो कपड़ों के चीथड़े डंडों पर लगाकर इतना शोरगुल क्यों मचा रहे हो?
नहीं, लेकिन पहले वह जहर पिलाना जरूरी है। वह शराब पिलानी जरूरी है।
तो राष्ट्रीयता की शराब पिलाई जाती है। फिर आदमियों को कटवाओ युद्धों में, वे चले जाते हैं बिल्कुल मस्ती से। बैंड-बाजे की धुन पर जाते हैं। मरने जा रहे हैं। ऐसे जाते हैं जैसे उत्सव में जा रहे हैं।
अब अगर हिंदू-मुसलमान को लड़ाना है तो पहले शराब पिलाओ कि हिंदू धर्म
ही सच्चा धर्म है। शराब पिलाओ कि इस्लाम ही सच्चा धर्म है। जब वे पीकर डूब जाएं, फिर लड़ा दो।
सारी जमीन करीब-करीब पागल है। धारणाओं की शराब है--कोई कम्युनिस्ट है, कोई फेसिस्ट है, कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है, कोई ईसाई है, कोई भारतीय है, कोई चीनी है। हजार-हजार तरह की शराबें पिलाई गई हैं।
रात अंधेरी है; भयानक शून्य है चारों तरफ। कुछ तुम्हें अपना पता नहीं है, कौन हो तुम! कुछ तुम्हें पता नहीं है, कहां जा रहे हो तुम! कुछ तुम्हें पता नहीं है कि सब तरफ मौत ने घेरा है।
मगर सांत्वना रहती है। शराब पी ली तो हिम्मत रहती है। हिम्मत खतरनाक है। वैसी हिम्मत उचित भी नहीं; क्योंकि वैसी हिम्मत तुम्हें मूढ़ बनाती है।
निर्धारणा से अगर तुम चलोगे तो सम्हलकर चलना पड़ेगा। एक-एक इंच खतरा
है और एक-एक श्वास खतरा है। अगर तुम कोई धारणा नहीं रखते हो तो तुम्हें सम्हलकर चलना ही पड़ेगा। फिर तुम गैर सम्हलकर नहीं चल सकते हो।
और इसीलिए बुद्ध ने बड़ा जोर दिया है निर्धारणा पर। क्योंकि निर्धारणा तुम्हें सम्हलने की कला सिखाएगी। और तुम धीरे-धीरे उसी सम्हलने में सजग होते जाओगे, सावधान होओगे, सावचेती आएगी। और वही सूत्र है सत्य की तरफ जाने का। जितनी तुम्हारे भीतर सावधानी आ जाए, जितना भी तुम्हारे भीतर सजग भाव आ जाए, उतने ही तुम सत्य के करीब होने लगे।
सत्य को जानने का रास्ता धारणा नहीं है, सजगता है।

तीसरा प्रश्नः आपके पास रहने का मौका मिला, यह मेरा बड़ा भाग्य; और मैं अनुगृहीत हूं। लेकिन आश्चर्य है कि सान्निध्य में रहकर कभी-कभी अनुभव होता है कि मैं आपसे दूर होता जा रहा हूं; ऐसा क्यों है?

मन के कुछ नियम हैं; मन के कुछ खेल हैं; उनमें एक नियम यह है कि जो चीज उपलब्ध हो जाए, मन उसे भूलने लगता है। जो मिल जाए, उसकी विस्मृति होने लगती है। जो पास हो, उसे भूल जाने की संभावना बढ़ने लगती है। मन उसकी तो याद करता है, जो दूर हो; मन उसके लिए तो रोता है, जो मिला न हो; जो मिल जाए, मन उसे धीरे-धीरे भूलने लगता है। मन की आदत भविष्य में होने की है, वर्तमान में होने की नहीं।
तो अगर तुम मेरे पास हो, हजार-हजार तमन्नाएं लेकर तुम मेरे पास आए हो, कितने-कितने सपने सजाकर, कितने भाव से! पर अगर तुम यहां रुक गए मेरे पास ज्यादा देर, तो धीरे-धीरे तुम मुझे भूलने लगोगे। तुम बड़े हैरान होओगे कि

दूर थे, अपने घर थे, हजारों मील दूर थे, वहां तो इतनी याद आती थी, वहां इतने तड़फते थे, अब यहां पास हैं और एक दूरी हुई जाती है।
मन के इस नियम को समझना और तोड़ना जरूरी है। इसको तोड़ दो; वही ध्यान है। ध्यान का अर्थ हैः जो है, उसके प्रति जागो; जो नहीं है, उसकी फिक्र छोड़ो। और मन का नियम यह हैः जो है, उसके प्रति सोए रहो, जो नहीं है, उसके प्रति जागते रहो। मन का सारा खेल अभाव के साथ संबंध बनाने का है।
तुम्हारे पास अगर लाख रुपए हैं तो मन उनको नहीं देखता, जो दस लाख तुम्हारे पास नहीं हैं, उनका हिसाब लगाता रहता है कि कैसे मिलें? जब तुम्हारे पास लाख न थे, दस ही हजार थे, तब वह लाख की सोचता था। अब लाख हैं, वह दस लाख की सोचता है। जब तुम्हारे पास दस हजार थे, सोचा था, लाख होंगे तो बड़े आनंदित होंगे। अब तुम बिल्कुल आनंदित नहीं हो। लाख तुम्हारे पास हैं, अब तुम कहते हो, दस लाख होंगे, तब आनंदित होंगे। दस लाख भी हो जाएं, तुम आनंदित होने वाले नहीं। क्योंकि तुम मन का सूत्र ही नहीं पकड़ पा रहे हो। वह कहेगा, दस करोड़ होने चाहिए। वह आगे ही बढ़ाता जाता है।
मन ऐसे है, जैसे जमीन को छूता हुआ क्षितिज। वह कहीं है नहीं, सिर्फ दिखाई पड़ता है। तुम आगे बढ़े, वह भी आगे बढ़ गया।
तो जहां तुम पहुंच जाते हो, मन वहां से हट जाता है। मन आगे दौड़ने लगता है। कहीं और जाता है। मन सदा तुमसे आगे दौड़ता रहता है। तुम जहां हो, वहां कभी नहीं होता। तुम मंदिर में हो, वह दुकान में है। तुम दुकान में, वह मंदिर में। तुम बाजार में हो तो वह हिमालय की सोचता है। तुम हिमालय पहुंच जाओ, वह बाजार की सोचने लगता है।
मन के इस खेल को समझो। अगर न समझे, तो धीरे-धीरे तुम पाओगे, तुम मेरे पास रहकर बहुत दूर हो गए। इससे मेरा कुछ लेना-देना नहीं है। इससे तुम्हारे मन की ही मूर्च्छा का संबंध है।
बहुत बार मैं लोगों को अपने से दूर भी भेज देता हूं। सिर्फ इसीलिए, जब मैं देखता हूं, अब उनका मन बहुत धूल जमा रहा है; अब वे सिर्फ लगते हैं कि मेरे पास हैं और पास नहीं, उनको मैं दूर भेज देता हूं। वे बड़े पीड़ित होते हैं। उनको लगता है, मैं उनको हटा रहा हूं, भगा रहा हूं, छोड़ रहा हूं।
नहीं, छोड़ नहीं रहा हूं, न हटा रहा हूं। उन्हें दूर भेजना जरूरी है, ताकि उन्हें फिर मेरी याद आए। और दूर जाकर उन्हें याद आनी शुरू हो जाती है।
अभी चार दिन पहले सैनफ्रांसिस्को के एक संन्यासी अमिताभ को बड़ी जाने
की इच्छा थी। सालभर से आने की इच्छा थी। वहां सब अपना कारोबार समाप्त करके सदा के लिए यहां मेरे पास रहने को आ गए। दो-तीन महीने में ही धूल जम गई। अब दो-तीन महीने से वे निरंतर वहां जाने का सोच रहे हैं। डरे थे कि कहीं मैं मना न कर दूं। मुझसे पूछने आए। मैंने कहा, बिल्कुल मजे से चले जाओ। मैं खुद ही सोच रहा था कि अब समय हो गया।
वे थोड़े चौंके। कहा, क्या कहते हैं आप?
खुद ही सोच रहा था कि अब भेजना है। अब तुम जाओ। और आने की जल्दी मत करना।
वे कहने लगे, आपको पता कैसे चला? क्योंकि यह मैं भी सोच रहा था कि अब थोड़ा लंबा वहां रहूंगा। लेकिन आप सब खराब किए दे रहे हैं। आपके मुंह से यह सुनते ही कि आने की जल्दी मत करना, मेरे भीतर अभी जल्दी हो गई। मैं तीन सप्ताह में वापस आ जाऊंगा।
मैंने कहा, इतनी जल्दी क्या है? और तुम्हें वहां सदा टिकना हो तो तुम वहां सदा टिक जाना।
मुझे डर है कि वह तीन सप्ताह भी टिके! जाते ही वहां सैनफ्रांसिस्को में पूना की याद आने लगेगी। पूना में है तो सैनफ्रांसिस्को की याद आती है।
मन की इस व्यवस्था को थोड़ा समझो और मन को यह खेल और मत खेलने दो।
अन्यथा बहुत बार... सदा ही ऐसा हुआ है। बुद्ध के पास जो लोग थे, वंचित रह गए।
और फिर अब हजारों साल से याद कर रहे हैं। अब रोते हैं। अब आंसू बहाते हैं, अब मंदिर बनाते हैं, पूजा करते हैं। और यह आदमी मौजूद था कभी, तब ऐसी भी

घड़ियां आयीं कि बुद्ध किसी गांव से गुजरे हैं और तुम अपनी दुकान पर बैठे थे और काम बहुत था और तुम बुद्ध को देखने भी न गए।
ऐसा हुआ। बुद्ध जब मरने लगे तो एक आदमी भागा हुआ आया। उसने कहा कि तीस साल से मैं सोचता था, जाना है... जाना है... । आप मेरे गांव से कोई दस बार निकले, लेकिन कभी शादी थी घर में, कभी पत्नी बीमार थी, कभी दुकान पर ग्राहक थे, कभी मेहमान आ गए थे। मैंने सोचा, फिर कभी... फिर कभी... फिर कभी... । मगर अभी मुझे पता चला कि आप अब संसार ही छोड़ रहे हैं तो मैं भागा आ गया हूं। बुद्ध ने कहा, फिर भी तुमने जल्दी की है। कुछ हैं, जो मैं छोड़ ही चुकूंगा, तब आएंगे। फिर भी देर-अबेर, तुम आ गए--तीस साल बाद सही। मगर कुछ हैं, जब मैं जा चुका होऊंगा, तब आएंगे।
अब बुद्ध को हजारों साल तक लोग याद करेंगे। अब उस याद से कुछ भी बहुत होता नहीं।
मन की इस वृत्ति को त्यागो, छोड़ो। समझो और छोड़ो। वर्तमान में जीना सीखो। जहां हो, वहां होना सीखो। यह सवाल मेरा ही नहीं है, अगर वृक्ष के पास बैठे हो तो वृक्ष के पास ही रहो; फिर मत भागो दूर-दूर। संसार बड़ा है, विस्तार बड़ा है, मत भागो दूर-दूर। इस छोटे से पौधे के पास ही हो जाओ। थोड़ी देर इसके पास ही रहो। जब हो तो पास ही रहो। जो करो, उस कृत्य में पूरे मौजूद हो जाओ। भोजन करो तो भोजन ही करो और कुछ न करो। स्नान करो तो स्नान ही करो और कुछ न करो। और तुम अचानक चकित हो जाओगे, यह स्नान भी प्रार्थना बन गया। स्नान भी पूजा हो गई। भोजन भी भगवान को लगाया भोग हो गया।
कबीर ने कहा है, उठूं बैठूं सो परिक्रमा।
तो उठता-बैठता हूं, वह भी परिक्रमा हो गई परमात्मा की। यह है ही; क्योंकि कहीं भी उठो, कहीं भी बैठो, परिक्रमा तो उसी की है। और कोई है ही नहीं; तो परिक्रमा उसी की है। जहां बैठे हो, उसी का मंदिर है।
चीजें बड़ी सरल हो जाएं अगर हम वर्तमान में जीना सीख जाएं। मगर हम कठिन बना लेते हैं।
इश्क है सहल मगर हम हैं वो दुश्वार-पसंद
कारे-आसां को भी दुश्वार बना लेते हैं
जो बात बड़ी सरल है, उसको भी कठिन बना लेते हैं।
मेरे पास हो, अब मेरे पास होने से ज्यादा सरल और क्या हो सकता है? अब उसको भी कठिन बनाए दे रहे हो। दूर जाना हो, दूर चले जाओ; पर तब वहीं होना। तो वहीं ध्यान के फूल लग जाएंगे। यहां हो तो यहीं रहो; तो यहां ध्यान के फूल लग जाएंगे।
ध्यान के फूल वहीं लग जाते हैं, जहां तुम्हारा संबंध वर्तमान से जुड़ जाता है।
परमात्मा के होने का ढंग वर्तमान है; मन के होने का ढंग भविष्य है। इसलिए मन और परमात्मा का कभी मिलन नहीं हो पाता। वे समानांतर पटरियों की तरह हैंः साथ ही साथ दौड़ते रहते हैं, लेकिन मिलते कहीं भी नहीं। समानांतर रेखाएं हैं आत्मा की और मन की। आत्मा है वर्तमान में, मन है भविष्य में; दोनों साथ-साथ दौड़ते रहते हैं।
रेल की पटरी देखी? साथ ही साथ हजारों मील तक दौड़ती रहती है, लेकिन मिलना कहीं नहीं होता। अगर तुम अपने से मिलना चाहते हो तो मन की यह आदत जाने दो। अगर तुम मुझसे मिलना चाहते हो तो भी मन की यह आदत जाने दो। क्योंकि मुझसे मिलने का और कोई अर्थ नहीं है, वह तुमसे ही मिलने का एक नाम है।

आखिरी प्रश्नः हमारे गांव में हम आपके जो संन्यासी हैं, वे एक साथ ध्यान में बैठते हैं। कभी-कभी ध्यान में ऐसा प्रतीत होता है कि आप वहां मौजूद हैं और हमें भीतर ही भीतर खींचे ले रहे हैं। और यह किसी एक मित्र का नहीं, प्रायः सभी का अनुभव है। यह क्या है? क्या आप वहां सचमुच आते हैं?

अभी जो प्रश्न हमने पूरा किया, उसका यह दूसरा पहलू है। तुम मेरे पास रहकर भी दूर हो सकते हो, अगर मन बीच में आ जाए। तुम दूर होकर भी पास हो सकते

हो, अगर मन बीच से हट जाए। अगर तुमने सच में ही ध्यान किया, अगर तुम तल्लीन हुए तो समय और स्थान की दूरियां मिट जाती हैं। समय और स्थान की दूरी शरीर जानता है, मन जानता है; आत्मा नहीं जानती।
तुम्हारा शरीर वहां दूर होगा बलसार में--बलसार के मित्रों का प्रश्न है--लेकिन जैसे ही तुमने ध्यान किया, जैसे ही मन शांत हुआ, मन की तरंगें हटीं, तुम मुक्त हुए, बलसार से मुक्त हुए। अब तुम कहीं आबद्ध न रहे, बंधे न रहे। पक्षी आकाश में उड़ गया--उसी खुले आकाश में, जहां मैं हूं, तुम भी वहीं हो गए। जो मेरे लिए सहज अवस्था है चौबीस घंटे, उसे भी तुम कभी क्षणभर को साध ले सकते हो; तो तुम्हारी भी उसी अवस्था में छलांग लग जाएगी।
ध्यान का अर्थ क्या है? ध्यान का अर्थ हैः क्षणभर के लिए समाधि में उतर जाना। समाधि का अर्थ क्या है? समाधि का अर्थ हैः ध्यान का सतत हो जाना।
तो जो मेरी सदा की अवस्था है, चौबीस घंटे जहां मैं हूं, अगर तुम ध्यान में एक क्षण को भी हो गए तो मिलन हो गया। एक क्षण को तुम वहां न रहे, जहां हो; वहां हो गए, जहां मैं हूं।
और यह जो प्रश्न उठा है... यह प्रश्न उठता है, जब तुम वापस मन में लौट आते हो; तो मन प्रश्न उठाता है, यह कैसे हो सकता है? तुम तो बलसार में हो, तुम तो यहां आंख बंद किए थे। नहीं, यह ठीक नहीं हो सकता। कहीं कुछ भूल-चूक हो गई होगी। शायद मन ने कोई कल्पना कर ली होगी।
लेकिन ध्यान रखना, जब तक तुम कल्पना कर सकते हो, तब तक तो ध्यान होगा
ही नहीं। और कल्पना करके तुम अगर मेरी कल्पना भी कर लोगे तो भी तुम उससे वैसा स्वाद न पाओगे। वह तुम्हारी ही कल्पना होगी। वह सिर्फ मन पर उठा हुआ एक चित्र होगा। उसका कोई मूल्य नहीं है।
लेकिन जब तुम शून्य हो जाओगे--एक क्षण को सही, पलभर को सही, दो विचारों
के छोटे से अंतराल में भी--तब भेद होगा। तब तुम मुझे पाओगे, ऐसा नहीं कि जैसे तुमने कल्पना की है; बल्कि ऐसे, जैसे कि मैंने तुम्हें घेर लिया, सब तरफ से तुम्हें घेर लिया। जैसे तुम मुझमें समा गए और मैं तुममें समा गया। अब दोनों के भेद को अलग-अलग कैसे समझाया जाए? अनुभव का भेद है।
जैसे कि तुमने मिठाई खाई और तुमने बैठकर मिठाई खाने की कल्पना की; अब दोनों में क्या भेद है? तुम करके देखना; और तो कोई उपाय नहीं है बताने का।
तुम दोनों काम करके देखना। बैठकर मिठाई की कल्पना करके खाना और फिर मिठाई खाना; फर्क तुम्हें पता चलेगा।
ऐसा ही प्रयोग तुम इसमें भी करना। ध्यान करने मत बैठना, बैठ जाना आंख बंद करके और मेरी याद करना और कल्पना करना। तब तुम्हारी ही कल्पना होगी। और फिर ध्यान करना; और ध्यान में जब तुम खो जाओगे और मेरी मौजूदगी अनुभव करोगे, तब तुम्हें पता चल जाएगा कि दोनों का स्वाद कितना अलग है। और उस स्वाद को समझाया नहीं जा सकता।
इतना निश्चित है कि जो भी कहीं भी तैयार हैं, उनके लिए मैं उपलब्ध हूं।
हर एक दर पर मुहब्बत की सदा देने का वक्त आया
अंधेरे में नई शमा जला देने का वक्त आया
अब जो भी दरवाजा खुला है, उस पर मैं दस्तक दूंगा। जो भी ध्यान में उतरेगा, उसे मैं उपलब्ध हो जाऊंगा।
इस अनुभव को तुम जितना गहरा लो, उतना अच्छा है। क्योंकि इस अनुभव से
ही तुम्हारे भीतर वे द्वार खुलने शुरू होंगे, जो तुम्हारे ही अंतरात्मा के हैं, लेकिन जिनसे तुम अपरिचित हो। मैं तुम्हें वही देना चाहता हूं, जो तुम्हारे पास है, लेकिन तुम्हें स्मरण नहीं है। मैं तुम्हें वही जागरण देना चाहता हूं, जो दिया नहीं जा सकता, लेकिन तुम्हारे भीतर उकसाया जा सकता है।
जैसे कोई दीए की लौ, दीए की बाती को उकसा देता है, बाती जल जाती है। दीया बुझने-बुझने को हो जाता है, कोई दीए की बाती को उकसा देता है। कुछ किया नहीं जाता खास--लौ भी दीए के पास है, ज्योति भी दीए के पास है, तेल भी दीए के पास है, दीया भी दीए का है--हम जरा सा उकसा देते हैं। इससे ज्यादा

मैं और कुछ कर नहीं सकता हूं कि तुम्हारे भीतर जब भी कोई दीए की लौ बुझने लगे तो मैं थोड़ा उकसा दूं। जल्दी ही तुम उकसाने की कला स्वयं सीख जाओगे।
जल्दी ही तुम अपनी ज्योति को खुद ही उकसाने लगोगे।
इन क्षणों को मूल्य देना। इन क्षणों की महिमा से भरना। इन क्षणों पर संदेह मत करना। इन क्षणों पर जितनी ज्यादा गहनता से तुम प्रयोग कर सको और जितने इन में डूब सको, उतना ही तुम्हारा सौभाग्य है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 3
उन्तीसवां प्रवचन

कल्याण मित्र की खोज

निधीनं" व पवत्तारं यं पस्से व वज्जदास्सिनं
निग्गय्हवादिं मेधाविं तादिसं पंडितं भजे।
तादिसं भजमानस्स सेय्यो होति न पापियो।। 70।।

न भजे पापके मित्ते न भजे पुरिसाधमे।
भजेथ मित्ते कल्याणे भजेथ पुरिसुत्तमे।। 71।।

धम्मपीती सुखं सेति विपसन्नेन चेतसा।
अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पंडितो।। 72।।

उदकं हि नयंति नेत्तिका उसुकारा नमयंति तेजनं।
दारुं नमयंति तच्छका अत्तानं दमयंति पंडिता।। 73।।

कबीर ने कहा है, निंदक नियरे राखिए आंगन कुटी छवाय।
जिन ने भी जीवन के सागर में गहरी डुबकी लगाई, और मोतियों के साथ इस मोती को वे सभी खोज लाए।
बुद्ध का पहला सूत्र आज के लिए हैः
"निधियों को बतलाने वाले के समान अपने दोष दिखलाने वाला मिल जाए तो उस वाक्ताडन करने वाले मेधावी पुरुष की संगति करनी चाहिए, क्योंकि वैसे की संगति करने से ही कल्याण होता है, कभी अकल्याण नहीं।"
साधारणतः हम उसकी संगति करना चाहते हैं, जो हमारी प्रशंसा करे। प्रशंसा से अहंकार भरता है। कोई कहे कि हम सुंदर हैं, कोई कहे कि हम शुभ हैं, कोई कहे कि हम श्रेष्ठ हैं--सुख मिलता है। लेकिन सुख बड़ा महंगा है। क्योंकि जो हम नहीं हैं, यदि हमने मान लिया कि हम हैं, तो होने के सब द्वार बंद हो जाएंगे।
और कौन सुंदर हो पाता है? सुंदर होने के रास्ते पर हो सकते हैं। यह मार्ग ऐसा नहीं कि इसकी मंजिल आती हो। सुंदर से सुंदरतर होते जाते हैं, लेकिन सुंदर तो कोई कभी नहीं हो पाता। श्रेष्ठतर से श्रेष्ठतर होते चले जाते हैं, लेकिन श्रेष्ठ तो कोई कभी नहीं हो पाता। यात्रा है।
लेकिन प्रशंसा करने वाला ऐसी भ्रांति दे देता है कि मंजिल आ गई। प्रशंसा करने वाले से सावधान रहना। उस पर भरोसा मत कर लेना; उस पर भरोसा किया कि भटके। यद्यपि मन कहेगा, मान लो। क्योंकि इतनी सस्ती श्रेष्ठता मिलती हो, इतने सस्ते में सौंदर्य, सत्य मिलता हो, कौन नासमझ इनकार करेगा? मुफ्त में ही मिलता हो, बिना मांगे मिलता हो, कोई अपने से आकर तुम्हारी प्रशंसा करता हो--कौन इनकार करता है?
तुमने कभी ख्याल किया? जब कोई तुम्हारी प्रशंसा करने लगता है, इनकार करना भी चाहो तो करते नहीं बन पड़ता। लेकिन ध्यान रखना, जब भी कोई तुम्हारी प्रशंसा करता है, तभी तुम भीतर अपने एक अपराध-भाव भी अनुभव करोगे। तुमने वह स्वीकार कर लिया, जो तुम नहीं हो। तुमने सस्ते में कीर्ति चाही। तुमने बिना कुछ चुकाए, बिना मूल्य दिए स्तुति चाही।
इसलिए तो दुनिया में खुशामद इतनी कारगर होती है; क्योंकि कोई भी इनकार नहीं कर पाता। कुरूप से कुरूप आदमी से कहो, तुम सुंदर हो, इनकार न कर पाएगा। बुरे से बुरे आदमी से कहो, तुम साधु हो, इनकार न कर पाएगा।
लेकिन जो तुमसे साधु कह रहा है, जो तुम्हें भला बता रहा है, उसके अपने प्रयोजन हैं। वह तुमसे कुछ पाना चाहता है। यह मत सोचना कि यह प्रशंसा मुफ्त में ही मिल रही है। अभी मुफ्त में दिखाई पड़ती होगी, थोड़ी ही देर में समझ में आएगा, मुफ्त में नहीं थी; इसका मूल्य चुकाना ही पड़ेगा।
और बाहर के मूल्य तो ठीक हैं कि कुछ रुपए उधार ले जाएगा वह आदमी, या किसी पद की तुमसे आकांक्षा करेगा, या नौकरी की प्रार्थना करेगा, या अदालत

में झूठी गवाही दिलवाएगा, ये तो सब छोटी बातें हैं। बड़ा भयंकर मूल्य तुम चुका रहे हो, वह यह कि कहीं तुम्हें उसकी बात पर भरोसा आ गया, तो तुम सदा के लिए भटक जाओगे। क्योंकि तुमने उस संपदा में भरोसा कर लिया, जो तुम्हारे पास नहीं है। अब तुम खोजोगे क्यों?
यह तो ऐसे हुआ, जैसे किसी भिखारी को भरोसा आ गया कि वह सम्राट है। यह
तो ऐसे हुआ, जैसे किसी बीमार को भरोसा आ गया कि वह स्वस्थ है। यह तो आंख बंद करना हुआ। यह तो आत्मघात हुआ। यह बहुत महंगा सौदा है।
प्रशंसा करने वाले से सावधान रहना। क्योंकि प्रशंसा करने वाले से हित
तो कभी हो ही नहीं सकता, अहित ही होगा।
थोड़ा समझो, प्रशंसा तभी प्रशंसा जैसी मालूम होती है, जब तुम जैसे नहीं हो, वह तुम्हें वैसा बतलाए। अगर वह उतना ही कहे जितना तुम हो, तो उसमें तो कुछ प्रशंसा होती नहीं; तथ्य का वक्तव्य होता है, उससे तुम प्रसन्न न होओगे। काने को काना कह देने से काना प्रसन्न न होगा; तथ्य का तो स्वीकार है। काने को तो कहो कि कितनी सुंदर आंखें हैं तुम्हारी! अंधे को कहो, नयन सुख! तब प्रशंसा होगी।
प्रशंसा सदा ही झूठ है। झूठ हो तभी तुम प्रसन्न होते हो प्रशंसा से। अगर सच हो तो प्रशंसा में प्रशंसा जैसा क्या रहा? अगर तुमने गुलाब के फूल को कहा, कोमल हो; तो कौन सी प्रशंसा हुई? हां, जब तुम कांटे को कहते हो, कोमल हो; तब कांटा प्रसन्न होता है।
प्रशंसा से तुम तभी प्रसन्न होते हो, जब कुछ ऐसा कहा गया हो, जो तुम सदा से चाहते थे कि हो, लेकिन है नहीं। झूठ ही सुख देता है प्रशंसा में। और उस प्रशंसा से बढ़ता है तुम्हारे भीतर अहंकार, दर्प, अभिमान।
अभिमान तुम्हारे जीवन की सारी झूठ का जोड़ है, निचोड़ है। हजार-हजार तरह
के झूठ इकट्ठे करके अहंकार खड़ा करना पड़ता है। अहंकार सब झूठों का जोड़ है, भवन है, महल है। ईंट-ईंट झूठ इकट्ठा करो, तब कहीं अहंकार का महल बनता है। और प्रशंसा ऐसे ही है, जैसे गुब्बारे को हवा फुला देती है; ऐसे ही प्रशंसा तुम्हें फुला देती है। लेकिन ध्यान रखना, जितना गुब्बारा फूलता है, उतना ही फूटने के करीब पहुंचता है। जितना ज्यादा फूलता है, उतनी मौत करीब आने लगती है। जितना फूलने में प्रसन्न हो रहा है, उतनी ही कब्र के निकट पहुंच रहा है, जीवन से दूर जा रहा है, मौत के करीब आ रहा है।
अहंकार गुब्बारे की तरह है। जितना फूलता जाता है, उतना ही कमजोर, उतना
ही अब टूटा तब टूटा होने लगता है।
सभी बुद्ध पुरुषों ने कहा है, प्रशंसा के प्रति कान बंद कर लेना। उससे हित न होगा। निंदा के प्रति कान बंद मत करना; आलोचना के प्रति कान बंद मत करना; उससे लाभ ही हो सकता है, हानि कुछ भी नहीं हो सकती।
क्यों लाभ हो सकता है? क्योंकि निंदा करने वाला अगर झूठ बोले तो कुछ हर्जा नहीं; क्योंकि उसके झूठ में कौन भरोसा करेगा? निंदा के तो सच में भी भरोसा करने का मन नहीं होता।
सच्चे आदमी को निंदक झूठा कहे, सच्चा आदमी मुस्कुराकर निकल जाएगा। इस बात में कोई बल ही नहीं है। यह बात ही व्यर्थ है। इस पर दो क्षण सोचने का कोई कारण नहीं। इस पर क्रोधित होने की तो कोई बात ही नहीं उठती।
ध्यान रखना, जब तुम किसी को झूठा कहो और वह क्रोधित हो जाए तो समझना कि तुमने कोई गांठ छू दी; तुमने कोई घाव छू दिया; तुमने कोई सत्य पर हाथ रख दिया। जब वह अप्रभावित रह जाए तो समझ लेना कि तुमने कुछ झूठ कहा। चोर को चोर कहो तो बेचैन होता है। अचोर को चोर कहने से बेचैनी क्यों होगी? उसके भीतर कोई घाव नहीं है, जिसे तुम चोट पहुंचा सको। निरहंकारी को अहंकारी कहने से कोई कांटा नहीं चुभता; अहंकारी को ही चुभता है।
तो अगर कोई तुम्हारी निंदा झूठ करे तो व्यर्थ। सच्ची निंदा में ही भरोसा नहीं आता तो झूठी निंदा में तो कौन भरोसा करेगा? लेकिन अगर निंदा सच हो तो बड़े काम की है, क्योंकि तुम्हारी कोई कमी बता गई, तुम्हारा कोई अंधेरा पहलू बता गई; तुम्हारा कोई भीतर का भाव छिपा हुआ, दबा हुआ प्रगट कर गई। जिसे तुम अपनी पीठ की तरफ कर लिए थे, उसे तुम्हारे आंख के सामने रख गई।

कमियां आंख के सामने आ जाएं तो मिटाई जा सकती हैं। कमियां पीठ के पीछे हो जाएं तो बढ़ती हैं, फलती हैं, फूलती हैं; मिटती नहीं।
तो निंदक नुकसान तो कर ही नहीं सकता, लाभ ही कर सकता है। कबीर ठीक कहते हैं, निंदक नियरे राखिए। उसे तो पास ही बसा लेना। उसका तो घर-आंगन, कुटी छवा देना। उससे कहना, अब तुम कहीं जाओ मत; अब तुम यहीं रहो, ताकि कुछ भी मैं छिपा न पाऊं। तुम मुझे उघाड़ते रहो, ताकि कोई भूल-चूक मुझसे हो न पाए; ताकि तुम मेरे जीवन को नग्न करते रहो; ताकि मैं ढांक न पाऊं अपने को। क्योंकि जहां-जहां घाव ढंक जाते हैं, वहीं-वहीं नासूर हो जाते हैं। घाव उघड़े रहें खुली हवा में, सूरज की रोशनी में--भर जाते हैं। और घाव उघड़े रहें तो तुम उन्हें भरने के लिए कुछ करते हो, औषधि की तलाश करते हो, सदगुरु को खोजते हो, चिकित्सक की खोज करते हो।
बुद्ध ठीक कहते हैं, "निधियों को बतलाने वाले के समान... ।"
निंदक को ऐसे समझना, जैसे कोई खजाने की खोज करवा रहा हो। तुम्हारी भूल-चूकों में ही तुम्हारी निधि दबी है। और जब तक तुम भूल-चूकों के पार न हो जाओ, निधि को न पा सकोगे।
ऐसे समझो कि गड्ढा खोदते हो तुम, हीरे-जवाहरात की खदान पड़ी है, लेकिन पीछे मिट्टी-पत्थर की पर्त है, उसे अलग कर दो तो खदान मिल जाए।
जलस्रोत खोजते हो तुम, गड्ढा खोदते हो, कुआं खोदते हो, बीस फीट, तीस फीट, चालीस, पचास फीट। कचरा, कूड़ा, पत्थर, मिट्टी सब निकाल डालते हो, शुद्ध जल की धार मिल जाती है। जिन फावड़ों ने मिट्टी खोदकर निकाली, वे दुश्मन नहीं हैं, वे मित्र हैं। जिन फावड़ों ने तुम्हारे भीतर से कूड़ा-करकट निकालकर बाहर ले आए, वे तुम्हारे दुश्मन नहीं हैं, मित्र हैं।
साधारण आदमी निंदा से भयभीत होता है। क्या है निंदा का भय? निंदा का
भय यही है कि तुम जिसे छिपाते हो, वह उसे प्रगट कर देती है। तुम किसी तरह बामुश्किल उसे छिपा पाते हो, वह उघाड़ देती है। निंदा तुम्हें दुश्मन मालूम पड़ती है, क्योंकि तुम जो कर रहे हो, उससे विपरीत कर देती है।
लेकिन अगर गौर से देखोगे तो तुम जो कर रहे हो, वही तुम्हारी दुश्मनी है। क्योंकि जिन भूलों को छिपा लिया, उनसे तुम पार न हो सकोगे। जिन रोगों को तुमने बताया नहीं, चिकित्सक को बताया नहीं, जिन रोगों को तुमने एक्सरे के सामने न किया, प्रगट न होने दिया, उन्हीं रोगों में तुम दबे-दबे मर जाओगे।
रोग को छिपाना मत। रोग का निदान चाहिए। रोग को प्रगट करना होगा। रोग
की औषधि खोजनी है। रोग से छुटकारा पाना है, छिपाना नहीं है।
तो दुश्मन तुम हो, जो तुमने भूलें छिपाई हैं; निंदक नहीं। निंदक दुश्मन मालूम पड़ता है, क्योंकि वह तुम्हारी भूलें उघाड़ता है। लेकिन अब तुम ऐसा समझो कि तुमने ही अपनी दुश्मनी की थी भूलें छिपाकर। निंदक उससे उलटा कर रहा है। निंदक तुम्हारा मित्र है; तुम दुश्मन थे।

लेकिन बहुत बार जीवन में हम पहचान नहीं पाते, कौन मित्र है, कौन शत्रु है। हम यही नहीं समझ पाते कि हम अपने मित्र हैं या शत्रु हैं। वहीं पहली भूल हो जाती है। तुमने अपनी एक प्रतिमा बना रखी है, जो झूठ है। वह प्रतिमा तुमने उन लोगों के हाथ से बनवा ली है, जिन्होंने तुम्हारी प्रशंसा की थी। तुम छोटे थे, तुम्हारी मां ने कहा, बड़े सुंदर हो। तुम्हारी मां का इसमें न्यस्त स्वार्थ है। सभी मां अपने बेटे को सुंदर कहती हैं। क्योंकि बेटे के सुंदर होने में ही मां के सुंदर होने का प्रमाण है, सौंदर्य का प्रमाण है। अगर बेटा कुरूप है तो मां कुरूप हो गई। कोई मां अपने बेटे को कुरूप नहीं कह सकती। कोई बेटा अपनी मां को कुरूप नहीं कह सकता। यह शड्यंत्र पारस्परिक है। क्योंकि बेटा अगर मां को कुरूप कहे, तो खुद कैसे सुंदर हो पाएगा? जब स्रोत ही कुरूप हो गया जहां से मैं आता हूं, तो मैं कैसे सुंदर हो पाऊंगा?
तो हर बेटा अपनी मां को सुंदर कहता है, हर मां अपने बेटे को सुंदर कहती है। हर मां अपने बेटे को लाल बताती है, हीरे-जवाहरात बताती है। कारण है;

बेटा फल है और अगर फल कडुवा निकल गया तो वृक्ष नीम का हो गया। अगर फल जहरीला निकल गया तो स्रोत जहर का हो गया।
मां का अहंकार दांव पर लगा है बेटे में। बाप का अहंकार दांव पर लगा है बेटे में। तुम जरा मां और पिताओं की बातें सुनो। अगर इन सबकी बातें सच हैं तो इस दुनिया में इतने मेधावी लोग हों कि सारी पृथ्वी मेधा से भर जाए। हर एक मां-बाप यही सोच रहे हैं कि उन्होंने हीरे को जन्म दे दिया। फिर कहां ये हीरे खो जाते हैं? फिर इन हीरों का कोई पता नहीं चलता। ये हीरे और हीरों को जन्म देने लगते हैं। इनके हीरे होने का कुछ पता नहीं चलता। जिंदगी कूड़े- करकट से भरती चली जाती है।
ध्यान रखना, तुम्हारी मां ने तुम्हें एक वहम दे दिया होगा कि तुम बड़े सुंदर हो। तुम्हारे पिता ने तुम्हें वहम दे दिया होगा कि तुम बड़े बुद्धिमान हो। बाप धक्के देता रहता है कि प्रथम आओ परीक्षा में। बाप का अहंकार दांव पर लगा है। तुम्हारा ही नहीं है सवाल, बच्चे ही परीक्षा नहीं दे रहे हैं, मां-बाप परीक्षा... मां-बाप की परीक्षा हुई जा रही है। जब तुम घर आते हो और असफल होकर आते हो तो मां-बाप दुखी हो जाते हैं तुमसे भी ज्यादा। तुमने उनकी प्रतिमा खंडित कर दी।
तुम जब कुछ दुष्कर्म करते हो, कुछ बुरा काम करते हो, तो मां-बाप इसलिए दुखी नहीं होते कि तुम ने बुरा काम किया; दुख का कारण अहंकार है। अगर तुम्हारा दुष्कर्म छिपा रह जाए तो कोई हर्जा नहीं। मां-बाप भी चेष्टा करते हैं कि तुम्हारा दुष्कर्म पता न चल जाए। छिप जाए, तो ठीक। पता चलने से कष्ट होता है, अहंकार को चोट लगती है--मेरा बेटा!
मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा बड़ी बेहूदी गालियां देता है और बड़ी लज्जत से। वह बाप से ही सीखा है। बाप भी बड़े कुशल हैं गालियां देने में। बेटा उनसे भी आगे निकल गया। अक्सर बेटे बाप से आगे निकल जाते हैं। बहुत बार मैंने नसरुद्दीन को कहा कि यह बेटा तुम्हें झंझट में डालेगा। फिर उसके स्कूल जाने का वक्त आ गया तो मैंने कहा, अब क्या करोगे? उसने कहा, तरकीब खोज ली है। उसने लड़के के कोट के कालर पर लिख दियाः इस लड़के के विचार अपने हैं; परिवार वालों से उनका कोई संबंध नहीं।
ऐसे कहीं बच सकोगे? बेटे की गालियां बाप की गालियों का प्रमाण हो जाएंगी। बेटे के सत्कर्म बाप के सत्कर्मों का प्र्रमाण हो जाएंगे। जो सत्कर्म बाप ने खुद नहीं किए, वे भी वह चाहता है, बेटा करे। बाप बेटों से बड़ी अपेक्षाएं रखते हैं। जो खुद पूरी नहीं कर पाए, वे सभी महत्वाकांक्षाएं रखते हैं।
ये ही तुम्हें तुम्हारा पहला अहंकार देते हैं। फिर इस अहंकार को लेकर तुम जिंदगीभर जीते हो। फिर तुम इकट्ठे करते रहते हो। जहां से भी प्रशंसा मिल जाती है, जो भी तुम्हारी पीठ ठोंक देता है, उसे तुम इकट्ठा कर लेते हो। और जो भी तुम्हारी निंदा करता है, वह दुश्मन है, वह मित्र नहीं, वह शत्रु है।
धीरे-धीरे इन्हीं झूठों के सहारे तुम अपनी एक प्रतिमा निर्मित करते हो। वह प्रतिमा बुनियादी रूप से गलत है। इसलिए जब तुम्हारी कोई निंदा करता है, उस प्रतिमा के विपरीत पड़ती है निंदा, प्रतिमा खंडित होती है; उससे बेचैनी होती है।
लेकिन बुद्ध पुरुष कहते हैं, उस बेचैनी को सह लेना; उस कष्ट को सह लेना; उस अशांति को झेल लेना। वह अशांति, वह कष्ट, वह बेचैनी उपयोगी है। इस प्रतिमा को गिर ही जाने देना, इसे एक बार खंडित हो ही जाने देना, ताकि तथ्य साफ हो सके।
और ध्यान रखना, सत्य तक वही पहुंचता है, जो पहले तथ्य तक पहुंच जाए। अगर तथ्यों से ही तुम अपने को झुठला रहे हो, तो परम सत्य तक तुम कभी भी न पहुंच पाओगे।
"निधियों को बतलाने वाले के समान अपने दोष दिखलाने वाला मिल जाए तो उस वाक्ताडन करने वाले मेधावी पुरुष की संगति करनी चाहिए।"
बुद्ध कहते हैं, मेधावी पुरुष; मजाक में कह रहे हैं। बड़ा गहरा व्यंग किया है। वे कह रहे हैं, उस महापुरुष का सत्संग करना चाहिए। उस

प्रतिभाशाली का सत्संग करना चाहिए। उसे प्रतिभाशाली कह रहे हैं वे मजाक में, क्योंकि तुम्हारे दोष तो वह देख लेता है, अपने नहीं देख पाता, बड़ा प्रतिभाशाली है! उसकी आंखें दुनियाभर की भूल-चूक खोज लेती हैं, सिर्फ अपनी भूल-चूक नहीं खोज पातीं। तुम उसका लाभ ले लेना। अपनी कुशलता का लाभ वह खुद नहीं ले पा रहा है।
अगर इतनी ही खोज उसने अपने दोषों की की होती तो जीवन रोशनियों से भर गया होता। अंधेरे कभी के मिट गए होते उसके। फूल खिल गए होते उसकी जिंदगी में। लेकिन उस प्रतिभा का उपयोग वह अपने लिए नहीं कर पाया है। तुम कर लेना, तुम मत चूक जाना। तुम उसकी प्रतिभा का पूरा-पूरा फायदा ले लेना।
मैंने सुना है, चीन में एक बहुत बड़ा चित्रकार हुआ। वह अपने आलोचक को, अपने बड़े से बड़े आलोचक को, जब भी वह चित्र बनाता था, तो उसे पहले बुलाकर दिखा लेता था; तभी किसी और को दिखाता था। वह आलोचक भी कोई साधारण आलोचक न था। वह भूल-चूक खोज ही लेता था। चित्रकार उसे धन्यवाद देता, फिर ठीक करने में लग जाता। कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि वर्षों लग जाते। लेकिन जब तक आलोचक तृप्त न हो जाता, तब तक वह चित्रकार चित्र को बाहर न जाने देता।
उसके चित्र आज भी महिमापूर्ण हैं। उसके चित्र ऐसे हैं कि उनमें भूल खोजनी कठिन है। उसने खुद ही वह मौका न छोड़ा। लेकिन धीरे-धीरे आलोचक को यह ख्याल आया कि मैं अपनी जिंदगी व्यर्थ ही गंवा रहा हूं। इस आदमी के चित्रों की आलोचना कर-करके मैं क्या पा रहा हूं? इतनी मेहनत से मैं खुद ही चित्रकार हो गया होता। लेकिन तब तक बड़ी देर हो चुकी थी।
प्रतिभा का उपयोग कर लेना। आलोचक के पास गहरी प्रतिभा है। प्रतिभा है दोषों को देखने की। नासमझ है, अपने लिए नहीं उपयोग कर पा रहा है। लेकिन तुम नासमझी मत करना।
"निधियों को बतलाने वाले के समान... ।"
सम्मान देना उसे। निधियां ही बतला रहा है। क्योंकि जहां उसने तुम्हारा एक झूठ बतलाया, वहीं झूठ के नीचे छिपा हुआ तुम्हारा सत्य भी है। अगर झूठ से तुम मुक्त हो गए, सत्य प्रगट हो जाएगा। झूठ ने सत्य के झरने को चट्टान की तरह दबाया है। उसने अगर तुम्हारी हिंसा बतलाई, तुम्हारा क्रोध बतलाया, तुम्हारी चोरी-बेईमानी बतलाई, तो उनके ठीक नीचे उनसे विपरीत छिपा है।
जहां तुमने चोरी छिपा रखी है, उसी के नीचे तुम्हारा अचौर्य छिपा है। जहां तुमने अपनी कामवासना छिपा रखी है, उसी के नीचे, उसी चट्टान के नीचे तुम्हारे ब्रह्मचर्य की संभावना छिपी है। जहां तुम्हारा क्रोध है, उसी के नीचे तुम्हारी करुणा के स्रोत बह रहे हैं।
ठीक कहते हैं बुद्ध, "निधियों को बतलाने वाले के समान... ।"
चट्टान हटा लेने की बात है; वह तुम कर लेना। बताने का काम उसने कर दिया, हटाने का काम तुम कर लेना। लेकिन आधा काम तो उसने पूरा कर ही दिया। निदान हो गया, डायग्नोसिस हो गई, बीमारी पकड़ ली गई। अब औषधि की तलाश बहुत बड़ी बात नहीं है। वह तो कोई साधारण सा केमिस्ट भी कर देगा। विशेषज्ञ की जरूरत तो होती है निदान के लिए। चिकित्सक की जरूरत तो होती है निदान के लिए। बीमारी ठीक से पकड़ ली गई, हल हो ही गई।
हां, बीमारी ठीक से पकड़ में न आए तो हल होना मुश्किल है। तुम लाख इलाज करते चले जाओ, तुम्हारे इलाज नई बीमारियां पैदा कर देंगे। पुरानी बीमारी अपनी जगह सुरक्षित रहेगी, नई हजार बीमारियां पैदा हो जाएंगी।
ऐसे ही तो तुम्हारी जिंदगी उलझ गई है। तुम निदान होने ही नहीं देते। बीमार खुद ही अपनी बीमारी का निदान नहीं होने दे रहा है। और मुफ्त चिकित्सक मौजूद हैं। उन मेधावी पुरुषों की मेधा का उपयोग कर लेना। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे उपयोग करने के पहले वे खुद ही अपने उपयोग में लग जाएं और तुम्हारी चिंता छोड़ दें। नहीं, आंगन-कुटी छवा लेना। उन्हें अपने पास ही बसा लेना।
"क्योंकि वैसी संगति से कल्याण ही होता है, कभी अकल्याण नहीं होता।"
और ध्यान रखना, कभी ऐसा मत मान लेना कि तुम पूरे हो गए हो; वह भ्रांति है। कोई कभी पूरा नहीं होता। जीवन सतत गति है, जीवन यात्रा है। यात्रा ही

मंजिल है। इसलिए याद रखना, जो भी तुम हो गए हो, बहुत कुछ होने को सदा बाकी है।
क्यों साज के परदे में मस्तूर हो लय तेरी
गुंचा है अगर गुल हो गुल है तो गुलिस्तां हो
अगर अभी कली की तरह है तू तो फूल बन; अगर फूल की तरह है तो पूरे वसंत की ऋतु बन। यात्रा ही यात्रा है। साज के परदे में कहीं तेरी लय दबी न रह जाए। कहीं वीणा के तारों में छुपी न रह जाए।
क्यों साज के परदे में मस्तूर हो लय तेरी
जो तुम्हारी निंदा करे, आलोचना करे, जो तुम्हारे तारों को छेड़े, ऐसा
मत सोचना कि दुश्मन है; ऐसा मत सोचना कि उसने तुम्हारी नींद बिगाड़ी। उसने तुम्हारे भीतर कुछ जगाया। वह नासमझ है, पागल है। इतनी ही मेहनत से उसके खुद के तार जग जाते। इतनी ही मेहनत से उसकी खुद की वीणा नाच उठती।
लेकिन तुम तो उपयोग कर ही लेना। अकारण प्रभु की अनुकंपा हुई है कि निंदक तुम्हें मिल गया है। तुम इस प्रसाद को ऐसे ही मत छोड़ देना। तुम इस प्रसाद का पूरा भोग लगा लेना।
ध्यान रखना, अगर तुमने अपने को प्रशंसा-प्रशंसा में ही ढांककर बचाया
तो तुम ऐसे पौधे होओगे, जिसको न तो धूप लगी, न हवा के झोंके लगे, न आंधियों ने घेरा, न जिसकी छाती पर बादल गरजे और बिजलियां चमकीं--हॉट हाउस प्लांट, सब तरह से सुरक्षित--प्रशंसाओं में, स्तुतियों में, प्रमाणपत्रों में, प्रियजनों की छत्र-छाया में।
तुम बड़े कमजोर रहोगे। जीवन का जरा सा ही धक्का तुम्हारे सारे भवन को गिरा देगा। तुम्हारी नाव असली नहीं, कागज की है। जरा सी लहर और तुम डूब जाओगे। तुम्हें डुबाने के लिए मझधार की भी जरूरत न पड़ेगी। तुम चुल्लूभर पानी में डूब जाओगे। कोई बड़े सागरों की जरूरत न रहेगी। तुम्हारी नाव ही तुम्हें डुबा देगी, नदियों की जरूरत नहीं है।
अपने को इतनी सुरक्षा में मत सम्हालना, क्योंकि वही सुरक्षा तुम्हें भयंकर सिद्ध होगी। खोलना जीवन के खुलेपन में--वहां आंधियां भी हैं कभी; माना कि कठिन है। और धूप भी तेज है; और माना कि कभी-कभी कष्टपूर्ण भी है। रास्ते कंटकाकीर्ण हैं, राजपथ नहीं हैं, जंगलों की बीहड़ पगडंडियां हैं। कभी बादल गरजते हैं, कभी शीत ठिठुराती है, कभी धूप जलाती है, कभी उखड़े-उखड़े हो जाते हो। ऐसे अंधड़ आते हैं कि जड़ें उखड़ी-उखड़ी हो जाती हैं; अब मरे, तब मरे, ऐसी हालत हो जाती है।
लेकिन इसी सब में व्यक्तित्व का जन्म होता है। इन्हीं सब चोटों में, तुम्हारे भीतर जो छिपा है, वह मजबूत होता है। इसी सारे संघर्षण में आत्मा की लय उठनी शुरू होती है।
क्यों साज के परदे में मस्तूर हो लय तेरी
गुंचा है अगर गुल हो गुल है तो गुलिस्तां हो
तुम सुरक्षाओं के बहुत आदी मत हो जाना। खुशामदों के बहुत आदी मत हो जाना। सावधान रहना।
तू वो जुल्फ शानापरवर जिसे खौफ है हवा का
मैं वो काकुले-परेशां जो संवर गई हवा से
एक तो तुम बाल कंघी से सम्हाल लेते हो, खूब सम्हालकर घर से निकलते हो, जरा सी हवा की चोट लगी, बाल बिखर जाते हैं।
तू वो जुल्फ शानापरवर जिसे खौफ है हवा का
तो अगर तुम ऐसे सम्हालकर घर से बाल चले हो तो तुम हवा के झोंकों से डरोगे। चल क्या पाओगे?
मैं वो काकुले-परेशां जो संवर गई हवा से
और मैं उस जुल्फ की तरह हूं, उन बालों की तरह हूं, जो आंधियों और हवाओं
के कारण सम्हल गए। जिनको मैंने नहीं सम्हाला, हवाएं आयीं, उनके साथ खेलीं और सम्हाल गयीं।
जिंदगी बड़ी भिन्न-भिन्न होगी। इसलिए अक्सर बहुत सुविधा-संपन्न परिवारों में संकल्पवान आत्माओं के जन्म नहीं होते। जिनको बचपन से ही सब तरह की सुरक्षा मिली हो और संघर्ष का कोई मौका न मिला हो, चुनौती न मिली हो,

वहां प्रतिभाएं पैदा नहीं होतीं। वहां लय वीणा में ही पड़ी रह जाती है; कोई छेड़ता ही नहीं। और धीरे-धीरे कोई छेड़ न दे, इससे भय हो जाता है।
तूफानों को संवारने दो। आंधियों को व्यवस्था देने दो। संघर्ष ही तुम्हारे जीवन की शांति बने तो तुम्हारी शांति का मूल्य अनिर्वचनीय होगा।
एक ऐसी शांति भी है, जो घर के कोने में बैठकर सम्हाली जा सकती है। वह शांति मुर्दा होगी, मरघट की होगी। उसमें जीवन न होगा; उसमें हृदय की धड़कन न होगी। जीवन की अराजकता तुम्हारे भीतर एक अनुशासन लाए। जीवन ही तुम्हें अनुशासन दे। कडुवे-मीठे अनुभव, सुख-दुख के अनुभव, धूप-ताप के अनुभव, अंधड़, आंधियां, तूफान तुम्हारी नाव को मजबूत करें। तुम घबड़ाकर किनारे की छांव मत ले लेना।
भीतर के जगत में आलोचक, निंदक तूफान उठा देता है। कोई तुम्हें गाली दे जाता है, एक आंधी तुम्हें घेर लेती है। तुम क्या करते हो? जब तुम्हें कोई गाली दे जाता है, जब कोई तुम्हारी निंदा करता है, तब तुम क्या करते हो? गुरजिएफ कहता था कि जब मेरे पिता की मृत्यु हुई, तो उन्होंने मुझसे कहा कि मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है, लेकिन एक संपदा मेरे पास है, जो मेरे पिता ने मुझे दी थी। और उससे मैंने बड़ी बहुमूल्य फसलें काटीं जिंदगी में, वही कुंजी मैं तुझे दे जाता हूं। तू अभी बहुत छोटा है--नौ ही साल उसकी उम्र थी--लेकिन तू याद रखना। कभी न कभी यह तेरे काम आएगी। अभी तू समझ न सकेगा, लेकिन इसे याद रखना। जब समझ आ जाए, तब उपयोग कर लेना।
गुरजिएफ के मरते पिता ने कहा कि जब तुझे कोई गाली दे, तेरी कोई निंदा करे, तो चौबीस घंटे सोचना, फिर जवाब देना। बस, इसको याद रखना अभी। अभी तेरी समझ में भी न आएगा। लेकिन इस संपदा से मैंने जिंदगी में बड़ी बहुमूल्य फसलें काटीं।
और गुरजिएफ ने कहा बाद में कि पिता के मरते समय के वचन थे, भूलना मुश्किल था। जैसे कोई सील लगा गया है हृदय पर; जैसे किसी ने जलते हुए अक्षरों में लिख दिया हृदय पर। पिता ने तो यही कहा था, जब तू समझदार हो जाए; लेकिन मैं उसी दिन समझदार हो गया। पिता चल बसे। उसी दिन से मैंने फिक्र करनी शुरू कर दी। किसी ने गाली दी, किसी ने अपमान किया, किसी ने निंदा की, मैं कह आया कि मैं चौबीस घंटे बाद आकर जवाब दे जाऊंगा। पिता को वचन दिया है मरते वक्त। मन तो अभी हो रहा है कि जवाब दे दूं, मजबूरी है लेकिन, वचन पूरा करना है--चौबीस घंटे बाद।
और चौबीस घंटे बाद, गुरजिएफ ने कहा, कभी जवाब देने की जरूरत न रही। चौबीस घंटे सोचा तो अक्सर तो यही पाया कि दूसरे ने जो कहा, सच ही कहा।
तुम जरा गौर से देखो, जितने लोगों ने तुम्हारी निंदाएं की हैं, उनमें कितनी सच्चाइयां थीं? कभी एकांत में बैठकर उन पर ध्यान करो। तुम इतने उद्विग्न ही इसलिए हो गए थे कि सचाई छू ली गई थी।
एक राजनेता ने मुल्ला नसरुद्दीन से आकर कहा कि तुम मेरे संबंध में झूठी अफवाहें फैलाना बंद करो, अन्यथा मैं तुम्हें अदालत में खींच ले जाऊंगा। नसरुद्दीन ने कहा, भगवान को धन्यवाद दो, खुदा का शुक्र समझो कि मैं झूठी बातें कह रहा हूं; अगर सच कहने लगूं, तुम और मुश्किल में पड़ जाओगे। कहते हैं, फिर राजनेता दुबारा उसके पास न गया कि और एक झंझट की बात है।
सच तो और भी मुश्किल में डाल जाएगा। अच्छा ही है कि दुश्मन झूठी बातें
कर रहे हैं। तुम गौर करना। गुरजिएफ की पूरी जिंदगी बदल गई। क्रांति घटित हो गई। एक छोटा सा सूत्र--सारे शास्त्र समा गए।
चौबीस घंटे बहुत वक्त हो जाता है। चौबीस घंटे अगर तुम्हें सोचना पड़े
तो तुम कैसे झुठलाओगे इस बात को? किसी ने कहा कि तुम बेईमान हो; कैसे झुठलाओगे इस बात को? चौबीस घंटे यह बात तुम्हें याद आती रहेगी। किसी न किसी क्षण में यह दिखलाई पड़ेगा, कहा तो सच ही है; हूं तो बेईमान। तो तुम धन्यवाद दे आना जाकर कि ठीक कहा था।
जब कोई बेईमान कहता है, उसी वक्त अगर उत्तर देने की तैयारी की, तो उस वक्त तुम बड़े उद्विग्न हो। किसी ने घाव छू दिया है। दर्द अभी हरा है। अभी

पीड़ा तुम्हें घेरे है। अभी सोच-विचार का मौका नहीं है। अभी तुम जो करोगे, वह अंधा कृत्य होगा, प्रतिक्रिया होगी। थोड़ा सोचो, विचारो, ध्यान करो, मौन से चिंतन करो, मनन करो; तो या तो तुम पाओगे कि उसने जो कहा, सच है।
और दो ही विकल्प हैंः या तो तुम पाओगे, जो कहा सच है, या तुम पाओगे कि
जो कहा झूठ है। तीसरा तो कोई विकल्प नहीं है। अगर तुमने पाया सच है, धन्यवाद दे आना। अगर तुमने पाया झूठ है, तो परेशान होना व्यर्थ है। अगर पाया कि झूठ है तो हंस लेना; अगर पाया कि सच है तो जाकर शुक्रिया अदा कर आना। क्रोध की जगह नहीं है। प्रत्युत्तर का कोई कारण नहीं है। प्रतिक्रिया में पड़ने का कोई भी, कहीं भी कोई आधार नहीं है।
और ध्यान रखना, यदि तुम चाहते हो कि कभी तुम्हारे जीवन की ज्योति जगमगाए, अगर तुम चाहते हो कि कभी सच में ही तुम्हारे जीवन का फूल खिले, तो कांटों से इतने दूर-दूर रहने की आदत छोड़ो। क्योंकि फूल कांटों में खिलते हैं। ज्योति अंधेरे में जगमगाती है। पत्थर पर जब छेनी चलती है कलाकार की तो मूर्तियां निर्मित होती हैं। और पत्थर कह दे कि नहीं, छेनी बर्दाश्त नहीं, काटो मत। मैं जैसा हूं, मुझे वैसा ही रहने दो; तो पत्थर अनगढ़ पत्थर ही रह जाएगा। थोड़ी सी छेनी की चोट सहना जरूरी है।
गुलशन-परस्त हूं मुझे गुल ही नहीं अजीज
कांटों से भी निबाह किए जा रहा हूं मैं
अगर तुम सच में ही फूलों के प्रेमी हो, तो तुम कांटों से भी निबाह करना सीख लोगे। गुलशन-परस्त हूं--फूलों का प्रेमी हूं; मुझे गुल ही नहीं अजीज-- और मुझे फूल ही प्यारे हैं, ऐसा नहीं है।
कांटों से भी निबाह किए जा रहा हूं मैं
करना ही होगा। निबाह कहना भी शायद ठीक नहीं; निबाह में ही थोड़ी सी अड़चन आ गई है जैसे। निबाह किए जा रहा हूं मैं--किसी तरह झेले जा रहा हूं। नहीं, वह बात भी ठीक नहीं है। कांटों से भी उतना ही प्रेम करना होगा, जितना फूलों से। अगर तुमने कांटों से प्रेम न किया तो तुम आज नहीं कल प्लास्टिक के फूल खरीद लाओगे, क्योंकि उन्हीं में कांटे नहीं होते। कागज के फूल खरीद लाओगे, क्योंकि उनमें कांटे नहीं होते। असली फूल, अगर गुलाब की आकांक्षा है तो कांटों की तैयारी भी चाहिए।
कांटे उतने ही जीवन का अनिवार्य अंग हैं, जितने फूल। अंधेरा उतना ही जरूरी है, जितना प्रकाश। रात उतनी ही आवश्यक है, जितना दिन। मौत उतनी ही जरूरी है, जितना जन्म। मित्रों और शत्रुओं के बीच थपेड़े खा-खाकर ही तुम्हारे भीतर के चैतन्य का आविर्भाव होता है।
अगर तुमने जिद की कि हम तो एक को ही पकड़कर जीएंगे, तो तुम ऐसे आदमी हो
जो जिद कर रहा है कि हम एक ही पैर से चलेंगे। तुम ऐसे आदमी हो जो जिद कर रहा है, हम एक ही पंख से उड़ेंगे। तुम ऐसे आदमी हो जो जिद कर रहा है, हम एक ही पतवार से अपनी नाव खे लेंगे।
कभी एक ही पतवार से नाव खेकर देखी? न देखी हो तो जरूर नदी पर जाकर देखना; उससे बड़ा अनुभव होगा। जब तुम एक ही पतवार से नाव खेओगे, वह गोल-गोल चक्कर लगाने लगेगी। जाएगी कहीं नहीं, चक्कर बहुत लगाएगी। ऐसी ही तुम्हारी जिंदगी है। जाती कहीं नहीं, होता कुछ भी नहीं, चक्कर ही चक्कर! कोल्हू के बैल की तरह घूमे चले जाते हो। दोनों पतवारें चाहिए। दोनों पतवारों के बीच नाव तीर की तरह चलने लगती है।
और ध्यान रखना, बुद्ध कहते हैं कि आलोचक, विरोधी, निंदक की संगति से कल्याण ही होता है, अकल्याण कभी नहीं होता।
क्योंकि निंदा कभी तुम्हारे अहंकार का तो भोजन बन ही नहीं सकती। जहर
बन सकती है--बनेगी; अहंकार को मार डालेगी, तुम्हें विनम्र करेगी, तुम्हें नबाएगी, झुकाएगी, तुम्हें ज्यादा समझदार करेगी, लेकिन अहंकार को नहीं भर सकती। इसलिए सदा कल्याण है। क्योंकि अहंकार ही एकमात्र अकल्याण है। प्रशंसा से खतरा हो सकता है, तुम और अकड़ जाओ। निंदा से कोई भी खतरा नहीं है।
और कैसे हम पागल हैं कि प्रशंसक की तलाश करते हैं! कैसे हम पागल हैं! जीवनभर हम यही खोज करते हैं कि कोई मिल जाए, जो हमारी प्रतिमा को सजा दे,

संवार दे। कोई मिल जाए, जो हमारे ऊपर प्रशंसा के इत्र छिड़क दे। कोई मिल जाए, जिसमें हम अपने को झांककर सुंदर पा सकें। कोई ऐसा दर्पण, जो हमारे सौंदर्य को झलका दे। चाहे हम सुंदर हों या न हों, हम दर्पण पर निर्भर हैं। दर्पण बता दे कि सुंदर, तो बस ठीक।
हम दूसरों की आंखों में झांक रहे हैं--अपनी गरिमा के लिए, अपने गौरव के लिए। और गौरव केवल उसी का है, जो अपने भीतर झांकता है। गरिमा केवल उसी की है, जो अपने भीतर झांकता है।
नहीं नाउम्मीद इकबाल अपनी किश्ते-वीरां से
जरा नम हो तो यह मिट्टी बड़ी जरखेज है साकी
निराश नहीं हूं अपने बंजर खेत से!
नहीं नाउम्मीद इकबाल अपनी किश्ते-वीरां से
इस बंजर खेत से जीवन के, निराश नहीं हो गया हूं।
जरा नम हो तो यह मिट्टी बड़ी जरखेज है साकी
थोड़ी सी नम हो जाए तो इस मिट्टी से फुलवारियां पैदा हो सकती हैं।
जरा नम हो जाए! तुम जितने अकड़े, उतने तुम बंजर खेत हो जाओगे। तुम जितने
नम हुए, उतने ही तुम्हारे भीतर से सृजन की क्षमता है। जितने तुम विनम्र हुए, जितनी तुम्हारी खेत की मिट्टी गीली हुई, जितने तुम भीगे, उतनी संभावना तुम्हारे भीतर से प्रगट होगी। निंदक तुम्हें नम कर जा सकता है। प्रशंसक तुम्हें अकड़ा जाता है। प्रशंसक से भागना। प्रशंसक की तरफ पीठ
कर लेना। उससे कुछ लाभ तो हो ही नहीं सकता, ज्यादा से ज्यादा इतना ही हो सकता है कि नुकसान न हो। वह भी तुम पर निर्भर है। अगर तुम बहुत सजग हो तो नुकसान न होगा। तुम्हारी जरा सी मूर्च्छा और गड्ढा तैयार है। प्रशंसा जाल है, फंदा है। अगर तुम सावधान हो तो बचकर निकल जाओगे। हानि कुछ न होगी, लाभ कुछ भी नहीं हो सकता। निंदा से हानि की कोई संभावना नहीं है।
"बुरे मित्रों की संगति न करे, न अधम पुरुषों की संगति करे। कल्याण मित्रों की संगति करे और उत्तम पुरुषों की संगति करे।"
समझना पड़ेगा। क्योंकि तुम्हें लगेगा, इसमें तो विरोधाभास हो गया। पहले कहा कि निंदक को पास रखे, और अब कहते हैं, बुरे मित्रों की संगति न करे।
असल में तुम्हारी जो भी निंदा करता है, उसको तुम बुरा समझते हो। बुद्ध नहीं समझते उसे बुरा। बुद्ध तो उसे बुरा समझते ही नहीं। वह अपने प्रति बुरा होगा, तुम्हारे प्रति बुरा नहीं है। तुम्हारे प्रति तो उसका प्रत्येक कृत्य कल्याण से भरा हुआ है। ऐसा नहीं है कि वह तुम्हारी शुभेच्छा चाहता है, लेकिन वह जो भी कर रहा है, उसका तुम उपयोग कर सकते हो। और उसके द्वारा फेंके गए पत्थर भी तुम्हारे पास आते-आते फूल बन सकते हैं। तुम पर निर्भर है।
"बुरे मित्रों की संगति न करे।"
फिर बुरा कौन है? निंदक तो बुरा नहीं है; बुरा लगता है। इस फर्क को ठीक
से समझ लेना। बुरा लगने से कोई बुरा नहीं होता। तुम डाक्टर के पास जाते हो, वह सर्जरी करता है, बुरा लगता है, बुरा है नहीं। निंदक सर्जन जैसा है, काटता है; बुरा लगता है। शायद अपनी तरफ से वह बुरा ही करना चाहता है, उससे भी कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन तुम लाभ ले सकते हो। उसने जो द्वार हानि के लिए खोला था, वही द्वार तुम्हारी संपदा का द्वार बन सकता है। तुम्हारे हाथ में सब कुछ है। निंदक तुम्हारे हाथ में है।
फिर बुरा मित्र कौन है? जो मित्र जैसा मालूम होता है, और मित्र है नहीं। क्योंकि आगे एक बात बुद्ध और कहते हैं,
"बुरे मित्रों की संगति न करे, न अधम पुरुषों की संगति करे।"
तो पहले तो ध्यान रखना, निंदक को बुद्ध बुरा मित्र नहीं कहते। वह मित्र है ही नहीं, शत्रु है; और भला शत्रु है। बुरे मित्र उन्हें कहते हैं बुद्ध, जो तुम्हारी प्रशंसा कर रहे हैं। और जिनका कुछ लाभ है प्रशंसा करने में। जो तुम्हें बढ़ावा दे रहे हैं, जो तुम्हारे गुब्बारे को फुलाए जा रहे हैं। और तुम बड़े आनंदित हो रहे हो। तुम समझ रहे हो, उत्सव की घड़ी है यह।

वे तुम्हारी मौत करीब लाए जा रहे हैं। वे तुम्हें मिटाने के करीब लिए
जा रहे हैं। वे तुम्हें उस जगह छोड़ जाएंगे, जहां से लौटना मुश्किल हो जाएगा। वे तुम्हारे अहंकार को इतना बड़ा कर देंगे कि जीना ही असंभव हो जाएगा। अहंकार ही तुम्हारे जीवनभर के लिए तुम्हारी छाती पर बैठ जाएगा। उन्हें तुमसे प्रयोजन नहीं है। उनके कुछ अपने लाभ हैं, जो तुम्हारी प्रशंसा से मिल सकते हैं। तुम्हें बड़ा कहकर वे तुम्हारा उपयोग करना चाहते हैं। वे तुम्हारा शोषण करने में उत्सुक हैं। उनकी नजर तुम्हें साधन बना लेने की है।
जब तुम्हारे पास कोई प्रशंसा करने आए तो ध्यान रखना, कोई भी इसलिए प्रशंसा करने नहीं आता कि तुम बड़े महान हो। अगर तुम महान हो, तब तो लोग निंदा करने आ सकते हैं, प्र्रशंसा करने नहीं आते। क्योंकि तुम्हारी महानता से उनके अहंकार को चोट लगती है। वे तुम्हारे दुश्मन होने लगते हैं। तुम्हारी महानता से कोई प्रयोजन नहीं है। वे तुम्हारी प्रशंसा करने तभी आते हैं, जब उन्हें तुमसे कुछ काम लेना है। जब वे तुम्हारा उपयोग करना चाहते हैं। तुम्हारी सीढ़ी बनाना चाहते हैं। तुम्हारे कंधे पर चढ़कर कहीं जाना चाहते हैं।
राजनेता तुम्हारे द्वार पर आकर खड़ा हो जाता है हाथ जोड़कर, कि मैं आपके चरणों की धूल हूं। तुम बड़े प्रसन्न होते हो। तुम बड़े गौरवान्वित होते हो। यह आदमी अपने वोट की तलाश में आया है। इसे न तुम्हारे चरणों से मतलब है। यह तुम्हें पहचानेगा भी नहीं। कल पद पर पहुंच जाने के बाद तुम इसके द्वार पर धक्के खाओगे। यह तुम्हें पहचानेगा भी नहीं। तुम इसी भरोसे में इसको वोट दे दिए थे।
अमरीका के प्रेसीडेंट रूजवेल्ट के संबंध में कहा जाता है कि जब वे राष्ट्रपति के पद के लिए खड़े हुए तो उन्होंने एक लाख लोगों को व्यक्तिगत पत्र लिखे। उनमें छोटे-मोटे लोग थे, बड़े लोग थे, सब तरह के लोग थे। स्टेशन का कुली भी था, गरीब से गरीब आदमी थे। वे चकित हो गए। चौदह साल, पंद्रह साल पहले अगर वे किसी स्टेशन पर आए थे तो जिस कुली ने उनका सामान ढोकर कार तक पहुंचाया था, उसको जब पत्र मिला--पंद्रह साल बाद, उसके नाम पर, व्यक्तिगत-- और न केवल इतना, बल्कि उसमें यह भी पत्र में था कि पंद्रह साल पहले जब मैं आया था, तब तुमसे मिलना हुआ था। तब तुम्हारी पत्नी की तबीयत खराब थी, अब कैसी है? तो पागल हो गया वह कुली। अब कोई राजनीति का सवाल ही न रहा। अब किसी पार्टी का कोई सवाल न रहा। वह तो दीवाना हो गया! तुम थोड़ा सोचो। लाखों लोगों ने उनके लिए काम किया निजी तौर से।
अगर वे दुबारा उस स्टेशन पर आते पंद्रह साल बाद; तो भी वे पूछते कि फलां-फलां नाम का कुली कहां है? वे हर चीज नोट करके रखते थे--कितने बच्चे हैं उसके, पत्नी बीमार है, बच्चा अभी किस क्लास में पढ़ रहा है--वे सब नोट करके रखते। कोई मतलब न था। इस आदमी से कुछ लेना-देना न था। लेन-देन कुछ और ही था। लेकिन इतनी सी फिक्र उस आदमी को फुला जाती है। इतनी सी चिंता उस आदमी के प्रति, उस छोटे आदमी को पहली दफा झलक देती है कि मैं कोई छोटा आदमी नहीं, रूजवेल्ट जैसा आदमी चिंता करता है कि मेरी पत्नी बीमार है या नहीं! पंद्रह साल बाद भी मुझे याद रखता है।
जो तुम्हारी प्रशंसा कर रहा है, उससे थोड़े सावधान रहना। उसके हाथ तुम्हारे खीसे में होंगे। वह तुम्हें बाजार में कहीं न कहीं बेच देगा। तुम जितने जल्दी उसके चंगुल के बाहर हो सको, उतना अच्छा है। बुरा मित्र वही है, जो तुम्हारा साधन की तरह उपयोग करना चाहता है।
मित्रता तो तुम्हें साध्य बना देती है, साधन नहीं। मित्रता तभी है, प्रेम तभी है, जब तुमने किसी दूसरे को साध्य बना दिया और दूसरे ने तुम्हें साध्य बना दिया। तुमसे कोई लाभ नहीं लेना है। तुम्हारा कोई भी शोषण नहीं करना है। तुम्हारी खुशी में जब खुशी है और तुम्हारी पीड़ा में जब पीड़ा है। तुमसे जब कोई लाभ का संबंध ही नहीं है, सारा संबंध प्रेम का है, बेशर्त है, तब कोई मित्र है। जहां शर्तें लगी हैं, वहां कोई मित्रता नहीं है। वहां मित्रता धोखा है। वहां मित्रता केवल चालबाजी है। वहां मित्रता कूटनीति है।

"बुरे मित्रों की संगति न करे।"
ऐसे मित्रों से सावधान रहना।
"न अधम पुरुषों की संगति करे।"
अधम पुरुष वह है, जिसकी जीवन-यात्रा नीचे की तरफ हो रही है। उसके साथ संग-साथ ठीक नहीं है। क्योंकि तुम अभी इतने बलशाली नहीं हो कि कोई नीचे की तरफ जा रहा हो और तुम नीचे की तरफ न जाने लगो। अभी तुम हर किसी के साथ पैर मिलाने लगते हो, हर किसी के साथ चल पड़ते हो। अभी तुम कमजोर हो, अभी तुम बहुत शक्तिशाली नहीं हो। अभी तुम्हारे भीतर सारी नीचे जाने वाली वासनाएं छिपी पड़ी हैं।
अगर तुम कोई मंदिर जा रहे थे, और रास्ते में एक मित्र मिल गया और वेश्याघर की बात करने लगा, तो बहुत संभावना है कि तुम मंदिर की फिक्र छोड़ो। तुम कहो, मंदिर कल भी रहेगा, इतनी जल्दी क्या है? यह भी हो सकता है, तुम उसकी सुनकर भी मंदिर पहुंच जाओ, लेकिन मंदिर पहुंच न पाओगे। पूजा- प्रार्थना में लगे भी तुम्हें वेश्यागृह की याद आने लगेगी। हाथ जोड़ोगे भगवान के समक्ष, लेकिन तुम्हारी वहां भी मौजूदगी न होगी। तुम जा चुके! तुम गए या नहीं, यह सवाल नहीं है।
तुम्हारे भीतर नीचे उतरने की संभावना बहुत प्रगाढ़ है। क्योंकि नीचे उतरना हमेशा सुगम है; ऊपर जाना कठिन है, पहाड़ पर चढ़ने जैसा है। नीचे जाना पहाड़ से उतरने जैसा है। पहाड़ पर चढ़ना हो तो श्रम करना पड़ता है। उतरना हो तो पहाड़ का ढलान ही तुम्हें दौड़ा ले आता है नीचे; कुछ करना नहीं पड़ता।
नीचे जाते हुए आदमी की तरफ दोस्ती का हाथ मत बढ़ाना। क्योंकि यह तो खुद
ही कठिन है कि तुम अपने को ही चढ़ा लो; और एक और आदमी का हाथ पकड़कर उसको भी चढ़ाना और भी मुश्किल हो जाएगा। अपने को ही बचाना मुश्किल है, दूसरे को बचाना और मुश्किल हो जाएगा। संभावना यही है कि नीचे जाने वाला तुम्हें भी नीचे घसीटने लगे। और नीचे जाने वालों की भीड़ है। उनका वजन भारी है, उनका ग्रेवीटेशन बहुत है। भूल मत जाना।
एक दफा ऐसा हुआ, मैं नदी के किनारे बैठा था। एक सज्जन और थोड़ी दूर पर सीढ़ियों पर बैठे थे। और एक आदमी डूबने लगा। मैं भागा दौड़कर उसको बचाने के लिए। मगर मेरे पहले वे जो सज्जन सीढ़ियों पर बैठे थे, वे कूद गए। तो मैंने सोचा, बात खतम हुई। मैं खड़ा हो गया। मैं देखा कि वह दूसरा आदमी भी डूबने लगा। मैंने पूछा, यह मामला क्या है? वह जो डूब रहा था, उसकी तो फिक्र छोड़नी पड़ी, क्योंकि वह तो दूर था, पहले इन सज्जन को निकालना पड़ा। इनको निकालकर मैंने पूछा कि तुम कूदे कैसे? उसने कहा, मैं भूल ही गया कि मुझे तैरना नहीं आता। उसको डूबता देखकर यह याद ही न रही मुझे कि मुझे तैरना नहीं आता।
तुम जरा ख्याल रखना कि तुम्हें ऊपर जाना अभी आता भी है? कहीं नीचे जाने वाले पर दया करके मत उतर जाना। थोड़े सावधान रहना। कहीं ऐसा न हो कि डूबता तुम्हें भी डुबा ले। इसलिए बहुत सावधानी, बहुत सावचेती से चलने की बात है।
"बुरे मित्रों की संगति न करे, न अधम पुरुषों की संगति करे। कल्याण मित्रों की संगति करे और उत्तम पुरुषों की संगति करे।"
"कल्याण मित्र" बुद्ध का अपना शब्द है, बड़ा प्यारा शब्द है। कल्याण मित्र ही मित्र है। कल्याण मित्र का अर्थ है, जो तुम्हारे कल्याण की आकांक्षा से भरा है। जिसकी प्रार्थनाएं तुम्हारे कल्याण की आकांक्षा से भरी हैं। जिसका तुमसे कुछ और स्वार्थ नहीं है। जो तुम्हें खुश देखना चाहेगा; जो तुम्हें गीत गाता देखना चाहेगा; जो तुम्हें खुश देखकर अनंत गुना खुश हो लेगा। कल्याण मित्र का अर्थ है, तुम्हारे कल्याण में जिसका आनंद है। और तुम्हारा किसी तरह का उपयोग साधन की तरह करने की जिसकी कोई आकांक्षा नहीं है।
कल्याण मित्र की तलाश करीब-करीब गुरु की तलाश है। क्योंकि तुम्हारे कल्याण की कामना वही कर सकता है, जो अपने कल्याण को उपलब्ध हुआ हो। तुम्हें ऊपर ले जाने की आकांक्षा वही कर सकता है, जो ऊपर पहुंचा हो। जिसने पहाड़ के शिखरों पर घर बनाया हो, वही तुम्हें तुम्हारी घाटियों के अंधेरे से बाहर ला सकेगा। जिसने रोशनी जानी हो, जो परमात्मा में क्षणभर जीया हो,

जिसने परमात्मा का स्वाद लिया हो। क्योंकि तभी, केवल तभी कल्याण की वर्षा होनी शुरू होती है; उसके पहले नहीं
कल्याण मित्र बुद्ध का शब्द है गुरु के लिए। बुद्ध गुरु शब्द के पक्षपाती नहीं; थोड़े विरोधी हैं। बुद्ध बड़े अनूठे मनुष्य हैं। वे कहते हैं कि गुरु शब्द विकृत हो गया है। हो भी गया है; उस दिन भी हो गया था। गुरुओं के नाम पर इतना शोषण चला है, गुरुओं के नाम पर इतना व्यवसाय चला है। गुरुओं ने लोगों को कहीं पहुंचाया, ऐसा तो मालूम नहीं होता, भटकाया ऐसा मालूम होता है। कभी सौ गुरुओं में कोई एक गुरु होता होगा, निन्यानबे तो गुरु नहीं होते, सिर्फ गुरु आभास!
इसलिए बुद्ध ने नया शब्द चुन लिया, कल्याण मित्र। बुद्ध ने अपने शिष्यों को कहा है कि मैं तुम्हारा कल्याण मित्र हूं। और बुद्ध ने कहा है कि इस जीवन की सारी समझ के बाद, अब दुबारा जब मैं आऊंगा, तो मेरा नाम मैत्रेय होगा--सिर्फ मित्र! मैत्रेय। भविष्य में जब मैं आऊंगा तो मेरा नाम मैत्रेय होगा। जैसे गुरु को बिल्कुल ही काट दिया। पर ठीक ही है। गुरु का प्रयोजन ही वही है कि वह तुम्हारा कल्याण मित्र हो जाए।
मित्र बड़ा प्यारा शब्द है। और बुद्ध ने उसे बड़ी महिमा दे दी कल्याण शब्द साथ जोड़कर। जैसे लोहे के साथ पारस जोड़ दिया--सब सोना हो गया।
"बुरे मित्रों की संगति न करे, न अधम पुरुषों की संगति करे। कल्याण मित्रों की संगति करे और उत्तम पुरुषों की संगति करे।"
अगर कल्याण मित्र न मिले तो उत्तम पुरुष की संगति करे। उत्तम पुरुष
का अर्थ हैः जो तुमसे थोड़ा आगे गया।
कल्याण मित्र का अर्थ हैः जो पहुंच गया; जिसने शिखर पर घर बना लिया। उत्तम पुरुष का अर्थ हैः जो मार्ग पर है, लेकिन तुमसे आगे है; तुमसे श्रेष्ठतर है, तुमसे सुंदरतर है। उत्तम पुरुष का अर्थ हैः साधु। उत्तम पुरुष का अर्थ हैः थोड़ा तुमसे आगे। कम से कम उतना तो तुम्हें ले जा सकता है, कम से कम उतना तो तुम्हें खींच ले सकता है। चार कदम सही, लेकिन चार कदम भी क्या कम हैं? चार कदम बढ़कर और आगे तुम्हें उत्तम पुरुष दिखाई पड़ने लगेंगे।
उत्तम पुरुषों के साथ रहते-रहते ही तुम्हें कल्याण मित्र की पहचान आएगी। उत्तम पुरुषों के साथ रमते-रमते ही तुम्हारी आंखें शिखर की तरफ उठनी शुरू होंगी। ऊंचाई की तरफ जाने वाले लोग, ऊंचाई की तरफ दृष्टि करने लगते हैं। नीचाई की तरफ जाने वाले लोग, नीचाई की तरफ दृष्टि रखते हैं। तुम्हारी दृष्टि वहीं हो जाती है, जहां तुम जाना चाहते हो।
"उत्तम पुरुषों की, कल्याण मित्रों की संगति करे।"
बड़े परिणाम होते हैं अगर उत्तम पुरुषों का संग-साथ मिल जाए। क्योंकि जीवन का एक बुनियादी नियम समझ लेना जरूरी है। तुम अकेले पैदा नहीं हुए। तुम समाज में पैदा हुए हो। तुमने पहली भी श्वास ली थी, तो समाज में ली थी। अकेले तो शायद तुम बच ही न सकते। मनुष्य का बच्चा बच नहीं सकता अकेला। मां न हो, पिता न हो, परिवार न हो, तो बच्चे के बचने की कोई उम्मीद नहीं, कोई आशा नहीं। समाज, चारों तरफ प्रियजनों का परिवार, उनके बीच ही तुमने पहली श्वास ली है।
उस बड़े जन्म के लिए, उस नए जन्म के लिए भी फिर तुम्हें एक परिवार चाहिए, जहां तुम एक और श्वास लोगे--परमात्मा की श्वास कहो, निर्वाण की श्वास कहो। यह शरीर की श्वास के लिए भी तुम्हें औरों की जरूरत पड़ी थी। किसी की चाहत की जरूरत पड़ी थी। किसी के प्रेम की जरूरत पड़ी थी। अकेले तुम न बच पाते। आदमी प्रेम में जन्मता है। और इसलिए जिसके जीवन में प्रेम नहीं, वह आदमी अभी जन्मा ही नहीं। आदमी के हृदय की धड़कन सिर्फ श्वासों से नहीं बनी है; और भी सूक्ष्म स्तर पर प्रेम से बनी है।
उत्तम पुरुषों के साथ का अर्थ हैः एक नया परिवार।
ऐसा ही एक परिवार बनाने की यहां कोशिश चल रही है। मुझसे लोग पूछते हैं, गेरुआ वस्त्र क्यों? मैं कहता हूं, परिवार का प्रतीक है। ताकि तुम पहचाने जा सको कि मुझसे संबंधित हो, मेरे परिवार के हो। एक कोशिश चल रही है, एक परिवार बन जाए, ताकि उसमें जो नए लोग आएं, उनके लिए उत्तम पुरुषों का

साथ मिल सके। उन्हें तलाशने न जाना पड़े नए जन्म के लिए। अगर बहुत से लोगों का समूह किसी यात्रा पर जा रहा हो तो सुगमता हो जाती है।
इसीलिए तो लोग तीर्थयात्रा पर समूह बनाकर जाते हैं। अकेले कठिन हो जाता है। संग-साथ सरल हो जाता है।
गए दिन कि तन्हा था मैं अंजुमन में
यहां अब मेरे राजदां और भी हैं
वह समय गया, जैसे ही तुम्हें संग-साथ मिल जाता है उत्तम पुरुषों का।
गए दिन कि तन्हा था मैं अंजुमन में
अकेला था, वह समय गया।
यहां अब मेरे राजदां और भी हैं
अब मेरे रहस्य को, मेरे भेद को, मेरी खोज को बांटने वाले साझीदार भी हैं।
बड़ा भरोसा पैदा होता है, जब तुम पाते हो कि और लोग भी उसी यात्रा पर निकले। अकेला पाकर अपने को हाथ-पैर कमजोर होने लगते हैं। अकेला पाकर और लंबाई मंजिल की देखकर भय पैदा होने लगता है, पूरी हो सकेगी? अकेला पाकर और शिखरों की दूरी देखकर अपने पैरों पर भरोसा नहीं आता कि इन छोटे-छोटे पैरों से, कमजोर पैरों से, वहां तक पहुंच पाएंगे?
लेकिन एक लंबी कतार है। तुमसे आगे कोई, उससे भी आगे कोई, उससे भी आगे कोई, एक सिलसिला है। तब हजारों मील की यात्रा भी सुगम हो जाती है। क्योंकि तुम्हें हमेशा कोई न कोई आगे--उतना तो साफ है कि लोग पहुंच गए हैं; हम भी पहुंच सकते हैं।
जो एक मनुष्य के लिए संभव है, वह दूसरे के लिए संभव हो जाता है। अगर परमात्मा एक आदमी को भी मिला है, तो करोड़ों लोगों के हृदयों में श्रद्धा पैदा हो जाती है कि मिल सकता है। अगर समाधि को एक ने भी पाया है, तो हजारों दिल धड़कने लगते हैं आशा से--अब निराश होने की कोई बात नहीं।
उनकी तलाश करना--कल्याण मित्रों की, सदगुरुओं की--जो तुम्हारे जीवन की अंतर दशा को बदलने में संगी-साथी हो जाते हैं। बदलते तो तुम्हीं हो, लेकिन उनकी मौजूदगी में भरोसा आ जाता है।
जैसे मां बैठी हो, तो छोटा बच्चा चलने की कोशिश करता है सुगमता से; डरता नहीं। देख लेता है लौट-लौटकर कि मां बैठी है, कोई फिक्र नहीं। गिरेगा भी तो भी उठा लिया जाएगा। कोई हाथ फैले हुए हैं पास। किसी के प्रेम ने साया दिया है। कोई छाया चारों तरफ से घेरे हुए है। तो दूर-दूर जाने की कोशिश भी करता है। आंगन के पार निकल जाता है। लौट-लौटकर देखता रहता है। देखा बच्चे को? लौटकर देख लेता है कि मां है या नहीं? एक चोरी-छिपे नजर डाल लेता है। अगर मां हट गई, रुक जाता है, वापस लौटने लगता है। तब आंगन के बाहर जाना खतरनाक है।
तुमने देखा, छोटा बच्चा गिर जाए तो पहले देखता है कि मां है आसपास या नहीं; अगर मां हो तो रोता है, अगर मां न हो तो नहीं रोता। बड़ी हैरानी की बात है। इतना छोटा बच्चा, इतना गहरा गणित पहचान गया कि सार क्या है! रोना किसके लिए है? कौन बुझाएगा? कौन समझाएगा? कौन आकर सिर थपथपाएगा? यहां कोई भी नहीं है। इतनी भी आशा रखनी फिजूल है कि आंसू बहाओ। उठकर कपड़े झाड़कर... । छोटा बच्चा चोट से नहीं रोता, प्रेम के भरोसे से रोता है। चोट काफी नहीं है रुलाने को। अगर कोई सहानुभूति मिलने की संभावना ही न हो तो क्या सार!
जैसे ही तुम अंतर्जगत के आकाश में यात्रा करते हो, फिर छोटे बच्चे हो गए। फिर कोई चाहिए, जिसकी हिम्मत के साथ तुम बढ़ सको। जो तुमसे कभी कह सके-- बढ़ा दी इतना कहकर शमा ने परवानों की हिम्मत
है जलना काम उनका जो हैं दिल वाले जिगर वाले
इतनी बात भी कोई कह दे। शमा इतना ही कह दे, तो परवानों की हिम्मत जलने
की हो जाती है।
है जलना काम उनका जो हैं दिल वाले जिगर वाले
कोई तुम्हारी पीठ ठोंक दे। कोई कहे कि ठीक, शाबाश! कोई कहे कि पहचान ली, तुम्हारे पैर में ताकत है; पहुंच जाओगे। कोई कहे कि इन्हीं घड़ियों से

हम भी गुजरे थे। वे घड़ियां गुजर गयीं, कठिन थे दिन, तुम्हारे भी गुजर जाएंगे।
एक आस्था पैदा होती है। एक अनूठा बल पैदा होता है। किसी अनजाने मार्ग
से शक्ति के स्रोत खुल जाते हैं।
वे हैं अमीर निजामे-जहां बनाते हैं
मैं हूं फकीर मिजाजे-जहां बदलता हूं
नेता और गुरु का फर्क समझ लेना। नेता है वह, जो समाज की परिस्थितियां, देश की परिस्थितियां बदलने में लगा रहता है।
वे हैं अमीर निजामे-जहां बनाते हैं
मैं हूं फकीर मिजाजे-जहां बदलता हूं
और सदगुरु है वह, जो तुम्हारे भीतर का मिजाज--बाहर का निजाम नहीं, भीतर
का मिजाज; बाहर की परिस्थिति नहीं, भीतर की मनःस्थिति बदलता है।
कल्याण मित्र वही है, जो तुम्हारे भीतर की मनःस्थिति को बदलने में सहयोगी हो जाता है। और यह तभी संभव है, जब वह तुमसे ऊपर हो, उत्तम पुरुष हो। यह तभी संभव है, जब वह तुमसे आगे गया हो। जो तुमसे आगे नहीं गया है, वह तुम्हें कहीं ले जा न सकेगा। आगे ले जाने की बातें भी करे तो तुम्हें नीचे ले जाएगा।
इसलिए सजग रहना; क्योंकि आगे ले जाने की बातें करने वाले बहुत लोग मिलेंगे। लेकिन ध्यान रखना कि आगे तुम जा रहे हो? चलना संग-साथ उनके, क्योंकि और कोई परीक्षा भी नहीं है, लेकिन कसौटी करते रहनाः शांत हो रहे हो पहले से? मौन हो रहे हो पहले से? जीवन में उत्सव की किरण आ रही है? अंधेरा थोड़ा कम मालूम पड़ता है पहले से? दीए की लौ थोड़ी थिर होती, स्थिर होती, मालूम होती है पहले से? प्रेम बढ़ रहा है? जीवन में थोड़ी गुनगुनाहट आ रही है? गा सकते हो? नाच सकते हो? अगर यह बढ़ती हो रही हो, उत्सव की बढ़ती हो रही हो, तो समझना कि आगे जा रहे हो।
अगर जीवन में उदासी बढ़ रही हो, विपन्नता आ रही हो, धीरे-धीरे जीवन एक अंधेरी रात की तरह मालूम पड़ रहा हो तो भाग खड़े होना।
मैं बहुतों को वहां उलझे देखता हूं इसलिए कह रहा हूं। धर्म के नाम पर उदासी बढ़ाई जाती है। परमात्मा अगर कुछ है तो उत्सव है। चारों तरफ देखो-- फूलों में, वृक्षों में, आकाशों में। परमात्मा अगर कुछ है तो उत्सव है, सतत उत्सव है। महोत्सव है। एक क्षण को भी उत्सव ठहरता नहीं। यह नाच चलता ही रहता है। ये झरने बहते ही रहते हैं। ये फूल खिलते ही रहते हैं। जरा गौर से देखो, कहीं तुम्हें उदासी दिखाई पड़ती है? कहीं तुम्हें उदासीनता दिखाई पड़ती है? कहीं तुम्हें इस जीवन के विराट में, कहीं जरा सा भी कोना ऐसा मालूम पड़ता है, जहां तुम्हारे तथाकथित विरक्त और त्यागियों से कोई तालमेल बैठ जाए?
कहीं चूक हो रही है। जिसे वे ऊपर जाना समझ रहे हैं, वह ऊपर जाना नहीं है, वे पत्थर होकर और नीचे उतरे जा रहे हैं। और कठोर होते जा रहे हैं, संवेदनशीलता बढ़ी नहीं, घट गई है। सौंदर्य का बोध बढ़ा नहीं, नष्ट हो गया है। प्रेम फैला नहीं, बिल्कुल सिकुड़ गया है। सिकुड़ा हुआ प्रेम, मरी हुई संवेदनाएं, थकी-थकी सांसें, उदास पथरीलापन!
तो तुम जिनको सोच रहे हो गुरु हैं, वे गुरु नहीं हैं। वे तुम्हें और अंधेरी घाटियों में ले जा रहे हैं। वे तुम्हें कब्र में ही उतारकर रहेंगे। मंदिर की तरफ यह यात्रा नहीं है।
"धर्म रस का पान करने वाला प्रसन्नचित्त से सुखपूर्वक सोता है।"
यह कसौटी है।
"धर्म रस का पान करने वाला प्रसन्नचित्त से सुखपूर्वक सोता है।"
धर्म रस--उस छोटे से शब्द में सब कह दिया। धर्म रस है। रसो वै सः।
परमात्मा रस है।
तन भीगा मन भीगा कण-कण तृण-तृण भीगा
देहरी द्वारा आंगन उपवन त्रिभुवन भीगा
रस है परमात्मा। भिगा दे, डुबा दे, रोआं-रोआं पुलकित हो जाए।
ठीक कहा बुद्ध ने, "धर्म रस का पान करने वाला प्रसन्नचित्त से... ।"

उसके जीवन में तुम प्रफुल्लता पाओगे; प्रसन्नचित्तता पाओगे। उसकी गुनगुनाहट तुम्हें उसके पास जाते ही सुनाई पड़ेगी। तुम उसके पास किन्हीं अनूठी ऊर्जाओं का नृत्य देखोगे। तुम उसके आभा-मंडल में अंधेरा नहीं पाओगे, आकाश का विस्तार, सूर्य की किरणें पाओगे। इससे ही पहचान करना। रस जहां बंटता हो, जहां रस की मधुशाला खुली हो, वहीं।
जहां मधु न बंटता हो, जहां रस न बंटता हो, वहां धर्म के नाम पर कुछ धोखा
हो रहा होगा। वह मरे, मुर्दा लोगों की जमात होगी। वह हारे हुए, थके हुए लोगों की जमात होगी। कहते हैं, हारे को हरिनाम। हार गए, अब कुछ न बचा, हरिनाम करने लगे। जिंदगी में पराजित हो गए, कहीं पहुंच न पाए, लड़खड़ा गए। अब क्या करें? राम नाम चदरिया ओढ़ ली। बैठ गए उदास होकर।
परमात्मा उदास नहीं है। तुमने गौर किया? परमात्मा त्यागी ही नहीं है, महाभोगी है। नहीं तो कभी का सृष्टि-क्रम बंद हो जाए। बुद्ध परमात्मा की बात नहीं करते, जरूरत नहीं है। बुद्ध के लिए धर्म रस ही परमात्मा का प्रतीक है।
"धर्म रस का पान करने वाला प्रसन्नचित्त से सुखपूर्वक सोता है।"
उसकी तंद्रा स्वप्न-रहित है। उसका जागरण विचार-शून्य है। रस ही रस है।
तन भीगा मन भीगा कण-कण तृण-तृण भीगा
देहरी द्वारा आंगन उपवन त्रिभुवन भीगा
सब भीगा है रस से।
"पंडित सदा आर्योपदिष्ट धर्म में रमण करता है।"
आर्य शब्द को समझना जरूरी है। आर्य शब्द का अर्थ होता हैः श्रेष्ठ। इससे आर्यों से कोई संबंध नहीं है; जाति सूचक नहीं है। बुद्ध ने कहा है, आर्य वही है, जो ऊपर की तरफ जा रहा है। ऊर्ध्वगामी ऊर्जा आर्य है।
"पंडित सदा आर्योपदिष्ट धर्म में रमण करता है।"
ऊपर जाने वालों की जो जमात है, समझदार उसके साथ हो लेता है। आर्यों के साथ हो लेता है। उत्तम पुरुषों के साथ हो लेता है। उसी में रमण करता है। और जो ऊंचा ले जाता है, वही भीतर ले जाता है। जो भीतर ले जाता है, वही ऊंचा ले जाता है। ऊंचाई और गहराई स्वयं में एक ही बात के नाम हैं।
इसे थोड़ा समझना। संसार की गहराई से तो धर्म की ऊंचाई विपरीत है, लेकिन धर्म की ऊंचाई स्वयं की गहराई से पर्यायवाची है। जितने तुम भीतर जाओगे, उतने ऊपर गए; संसार से ऊपर गए। जितने संसार में तुम नीचे जाओगे, उतने अपने से बाहर गए।
संसार में जाना, अपने से बाहर जाना--एक ही बात है। परमात्मा में जाना, अपने भीतर जाना--एक ही बात है। जिस दिन तुम अपने अंतरतम में पहुंच जाते हो, उस दिन तुम कैलाश के शिखर पर विराजमान हो गए। संसार चारों तरफ चलता ही रहता है, लेकिन तुम्हारी लौ अकंपित हो जाती है। तुम अपने भीतर उस अंतर्गृह में पहुंच गए, जहां कोई लहर नहीं पहुंचती।
मैं अकंपित दीप प्राणों का लिए
यह तिमिर तूफान मेरा क्या करेगा
जब तुम्हारी लौ थिर हो जाती है, तब कोई तूफान तुम्हें डिगाता नहीं। अभी तुम कहते हो, तूफान डिगाता है। वह सिर्फ बहाना है। तूफान नहीं डिगाता, तुम डिगते हो। तूफान तो सिर्फ बहाना है। जब तुम अडिग हो जाते हो, कोई तूफान नहीं डिगाता।
तुमने कभी ख्याल किया, छोटे-मोटे दीए को, अंधड़ आता है, बुझा जाता है। लेकिन बड़ी अग्नि लगी हो पहाड़ों पर, बड़ी अग्नि लगी हो नगर में तो छोटे दीयों को हवा के झोंके बुझा जाते हैं, बड़ी अग्नि को बढ़ाने लगते हैं। रूपांतरण हो गया। छोटा दीया कहेगा, हवा ने बुझाया; बड़ी अग्नि कहेगी, हवा ने बढ़ाया। किसका भरोसा करोगे?
तुम बुझ जाते हो जरा से तूफान में, क्योंकि बड़ा छोटा दीया है चैतन्य का। जरा चैतन्य की आग तुम्हारे जीवन में फैले। यही हवाएं, यही तूफान फिर तुम्हें मिटाते नहीं; तुम्हें भरने लगते हैं। तुम्हें पोषण देने लगते हैं।

मैं अकंपित दीप प्राणों का लिए
यह तिमिर तूफान मेरा क्या करेगा
"लहर बनाने वाले पानी को मोड़ते हैं। वाणकार वाण को सीधा करते हैं। बढ़ई लकड़ी को ठीक करते हैं। और पंडित जन अपने को ही नियंत्रित करते हैं।" दुनिया में और सब कलाएं बाहर हैं। मूर्तिकार मूर्ति बनाता है, चित्रकार चित्र बनाता है, गीतकार गीत बनाता है। लेकिन बुद्ध कहते हैं, असली ज्ञानी अपने को बनाता है। मूर्ति को नहीं गढ़ता, अपने को गढ़ता है। चित्र को नहीं रंगता, अपने को रंगता है। गीत को नहीं सजाता, अपने को सजाता है। अपने सौंदर्य को निखारता है। बड़े से बड़ा स्रष्टा वही है, जो अपने को सृजन दे देता है; जो अपने को नया जन्म दे देता है।
जिंदगी कुछ और शै है इल्म है कुछ और शै
जिंदगी सोजे-जिगर है इल्म है सोजे-दिमाग
इल्म में दौलत भी है कुदरत भी है लज्जत भी है
एक मुश्किल है कि हाथ आता नहीं अपना सुराग
तो एक तो ज्ञान है, जिससे बाहर की चीजें जानी जाती हैं--कहें विज्ञान। जिंदगी कुछ और शै है इल्म है कुछ और शै
यह ज्ञान कुछ और बात है। और जिंदगी तो भीतर है। ज्ञान बाहर-बाहर है।
ये दोनों कुछ अलग आयाम हैं।
जिंदगी सोजे-जिगर है
जिंदगी तो हृदय की बात है।
इल्म है सोजे-दिमाग
और ज्ञान तो बुद्धि की बात है। ज्ञान तो सिर को छूता है, बस। तुम्हें नहीं डुबाता, तुम्हें नहीं छूता। ज्ञान से तुम और सब जान लेते हो, सिर्फ स्वयं अनजाने रह जाते हो। ऐसे जानने का भी क्या सार, जिसमें भीतर अंधेरा रह जाए और बाहर रोशनी हो जाए? ऐसे जानने से भी क्या फायदा, जिससे हम सब तो जान लें और वही अनजाना रह जाए, जो सब जान रहा है।
इल्म में दौलत भी है कुदरत भी है लज्जत भी है
सब कुछ है ज्ञान में; सिर्फ एक कठिनाई है--
एक मुश्किल है कि हाथ आता नहीं अपना सुराग
अपना पता नहीं चलता।
बुद्ध कहते हैं, और अपना पता न चले, तो तुम पंडित नहीं। तो तुमने ज्ञान में व्यर्थ ही अपने को गंवा दिया। यह ज्ञान दो कौड़ी का है।
जो अपने को जान ले, वही समझदार है। और जैसे ही तुम अपने को जानते हो-- जैसे ही--वैसे ही तुम पाते हो, तुम सीमित नहीं हो, तुम असीम हो। जब तक नहीं जाना, तभी तक सीमा है। अज्ञान की सीमा है, ज्ञान की कोई सीमा नहीं। जब तक नहीं जाना, तभी तक कूल-किनारे हैं। जब जाना, तो सागर ही सागर है।
जैसे फूल है, फूल की तो सीमा है, लेकिन गंध की? गंध मुक्त हो जाती है,
उड़ जाती है आकाशों में। कहीं कोई सीमा नहीं है।
फूल डाली से गुंथा ही रह गया
घूम आई गंध पर संसार में
व्यक्ति है सीमित मगर व्यक्तित्व का
चिर असीमित चिर अबाधित है प्रसार
फूल डाली से गुंथा ही रह गया
घूम आई गंध पर संसार में
उस गंध को ही आत्मा कहते हैं। बुद्ध ने उस गंध को अनत्ता कहा है, अनात्मा कहा है।
शब्द से बहुत परेशान मत हो जाना। उपनिषद उसी गंध को आत्मा कहते हैं।
वे कहते हैं, वही तुम्हारा वास्तविक होना है। और बुद्ध कहते हैं उसे अनात्मा, अनत्ता। क्योंकि वे कहते हैं, वहां तुम्हारा मैं जैसा कोई भाव नहीं; उसको आत्मा कैसे कहें? होना तो है वहां, मैं नहीं है।
बुद्ध की बात उपनिषद से भी गहरी जाती मालूम पड़ती है। उपनिषद के आगे एक
और कदम। आत्मा में थोड़ा अहंकार मालूम पड़ता है--मैं! बुद्ध कहते हैं, उसे भी जाने दो, वह भी सीमा बन जाएगी। जहां तक मैं है, वहां तक तू भी रहेगा।

फूल डाली से गुंथा ही रह गया
घूम आई गंध पर संसार में
तुम गंध जैसे हो जाओ, फूल जैसे नहीं।
समझ गंध है। फिर न शरीर बांधता, न मन बांधता। समझ मन और शरीर दोनों के पार है। समझ साक्षी भाव है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 3
तीसवां प्रवचन

मंथन कर, मंथन कर

पहला प्रश्नः होश हो तो दूसरा सदा कल्याणकारी है। क्या ऐसा ही आप बुद्ध पुरुष कहते हैं?

होश हो तो दूसरा न तो कल्याणकारी है और न अकल्याणकारी; होश हो तो तुम सभी जगह से अपने कल्याण को खींच लेते हो। होश न हो तो तुम सभी जगह से अपने अकल्याण को खींच लेते हो। बोध हो तो तुम जहां होते हो, वहीं स्वर्ग निर्मित होने लगता है--तुम्हारे बोध के कारण। बोध न हो तो तुम जहां होओगे, वहां नर्क की दुर्गंध उठने लगेगी--तुम्हारे ही कारण।
ऐसा समझो कि मूर्च्छित-मूर्च्छित जीना नर्क का निर्माण है; जागकर जीना स्वर्ग का। जागते हुए किसी ने कभी कोई दुख नहीं पाया। सोते हुए कभी किसी ने कोई सुख नहीं पाया। सोते हुए ज्यादा से ज्यादा सुख की आशा हो सकती है, सुख कभी मिलता नहीं। सुख की आशा में तुम बहुत दुख उठा सकते हो भला, लेकिन सुख कभी मिलता नहीं। जागकर जो मिलता है, उसी का नाम सुख है।
दूसरे से कोई संबंध ही नहीं है। अगर तुम ठीक से समझो तो दूसरा है ही नहीं, तुम ही हो। दूसरे के संबंध में जो तुम्हारी धारणा है, वह भी तुम्हारी धारणा है। दूसरे को मित्र मान लेते हो, मित्र हो जाता है; शत्रु मान लेते हो, शत्रु हो जाता है। तुम्हारी मान्यता ही... ।
और अपनी मान्यताओं को गिरा देना, अपनी मान्यताओं से मुक्त हो जाना, संसार से मुक्त हो जाना है। संसार बाहर नहीं है, तुम्हारे देखने के ढंग में है।
मैंने सुना है--
एक दिन बैठा समुंदर तीर पर
सुन रहा था बुलबुले की मैं कथा
एक कागज की दिखी किश्ती तभी
थी खड़ी जिसमें पहाड़ों की व्यथा
बोझ इतना धर मुझे अचरज हुआ
चल रही है किस तरह यह धार में
हंस कहा उसने, चलाती चाह है
आदमी चलता नहीं संसार में
चाह खींचे लिए जाती है। तुम दुख में हो, तुम दुख में ही जीते हो, चाह कहती है, कल सुबह सूरज उगेगा। थोड़ी रात और है, गुजार दो। फिर कल यही दोहरता है। फिर तुम अंधेरे में जीते हो; चाह कहती है, कल सूरज उगेगा। थोड़ी देर है, अंधेरे में सूरज की आशा में गुजार दो।
चाह सपने देती है और जीवन के सत्य को तुम झुठलाए चले जाते हो। तुम्हारे स्वर्ग की आकांक्षा तुम्हारे मौजूदा नर्क को भुलाने का उपाय है। और तुम्हारी आने वाली सुबह कभी न आएगी। क्योंकि तुम्हारी आने वाली सुबह से सत्य का कोई संबंध नहीं है। तुम्हारी आने वाली सुबह में और घनी रातों का आना निश्चित है, क्योंकि चाह से भरा मन और नए नर्क बना लेगा। करना क्या है? जागकर जो मौजूद है, उसे देखना है। काश, तुम मौजूद हो जाओ! तो दुख अपने आप विसर्जित हो जाता है। जो भी जागा, उसने दुख नहीं पाया। जो भी जागा, उसने समझा कि दुख मेरी ही आकांक्षाओं की छाया थी।
ऐसा समझो कि तुम धूप में खड़े हो और तुम्हारी छाया बनती है; अब तुम इस छाया से भागते फिरो, बच न पाओगे। धूप में खड़े हो, छाया बनती ही रहेगी। तुम किसी साए में विश्राम करो, छाया खो जाएगी। तुम किसी वृक्ष के तले बैठ जाओ, छाया खो जाएगी। धूप में तो भागकर भी भाग न सकते थे; छाया पीछा करेगी। लेकिन साए में बैठकर भी छाया से मुक्ति हो जाती है। मूर्च्छा में भाग-भागकर तुम दुख से बच न पाओगे, जागकर बैठ भी जाओ तो दुख से छुटकारा हो जाता है।
बुद्ध बैठे हैं बोधिवृक्ष के तले; दुख से भागने का सवाल ही न रहा, दुख
है ही नहीं। उस छाया में दुख का साया खो गया है। तुम भागे जा रहे हो--धूप-144

ताप से भरे, पसीने से लथपथ, खून को पसीना करते हो पूरे जीवन, हाथ में लगता क्या है? हाथ में आता क्या है? आखिर में हाथ खाली के खाली रह जाते हैं। तुम्हारे ही नहीं, सिकंदरों के भी खाली के खाली रह जाते हैं। आखिर में जिंदगीभर की दौड़-धूप के बाद मौत हाथ लगती है।
रोज तुम यह होते भी देखते हो। हर घड़ी कोई न कोई मर रहा है। हर घड़ी कोई न कोई फूल मुर्झा रहा है। हर घड़ी कोई न कोई वृक्ष सूखा जा रहा है। चारों तरफ मौत ने तुम्हें घेरा है। अर्थी निकल जाती है तुम्हारे सामने से, तुम दो आंसू भी रो लेते हो उसकी सहानुभूति में, पर तुम्हें याद नहीं आती कि यह तुम्हारी ही अर्थी की खबर है। यह मौत किसी और की नहीं, यह मौत तुम्हारे ही पते पर आई है। यह डाकिए ने किसी और के द्वार पर दस्तक नहीं दी, डाकिए ने तुम्हारे ही द्वार पर दस्तक दी है।
हर मरती हुई अवस्था में, हर मृत्यु की घटना में, तुम अगर थोड़े जागकर देखो तो तुम पाओगे, तुम्हारे जीवन का सार-निचोड़ क्या है? यही कि थोड़ी देर-अबेर मर जाओगे। यही कि कदम चलते-चलते, रेंगते-रेंगते मौत की मंजिल पर पहुंच जाओगे।
यह भी कोई पहुंचना हुआ? यह कोई बात हुई? यह जीवन तो बड़ा बेसार हुआ। यह जीवन तो बड़ा बेरंग हुआ। यह जीवन सच्चा नहीं हो सकता। इस जीवन को कहीं तुम चूक ही गए। तुम्हारे पास ठीक-ठीक को देखने की आंख ही शायद नहीं थी। तुमने गलत देखा, वही गलत तुम्हें मृत्यु में ले आया। जिन्होंने ठीक देखा, वे अमृत में जाग गए।
ठीक देखने का अर्थ हैः जो मौजूद हुए। मौजूद होने की कला का नाम ध्यान है।
और तुम हजार कोशिशें कर रहे हो, कैसे अपने को भुला दो। तुम्हारी सारी चेष्टा यही है, कैसे अपने को भुला दो। जितनी देर तुमने अपने को भुलाया, उतनी देर ही गंवाई। उतनी देर में तो अमृत के स्रोत खोजे जा सकते थे। उतनी देर में तो भूमि की और पर्तें तोड़ी जा सकती थीं। उतनी देर में तो जीवन की ऊर्जा और करीब आ सकती थी। जल-स्रोत करीब लाए जा सकते थे।
लेकिन आदमी का सारा जाल भुलाने का है। कभी गलत ढंग से भुलाता है, कभी ठीक ढंग से भुलाता है। लेकिन अब भुलाने में भी क्या गलत और ठीक? कभी शराब पीकर भुलाता है, कभी संगीत सुनकर भुलाता है। कभी वेश्यालय में भुला लेता है, कभी मंदिर के पूजा-पाठ में।
यह जो भूलने की निरंतर प्रक्रिया चल रही है, इसे तोड़ना होगा। यहशृंखला तुम्हारी कब्र को तो बनाएगी, तुम्हें मिटा जाएगी। भूलना नहीं है, जागना है।
और बड़े आश्चर्य की बात है कि अगर तुम्हें यह ख्याल आ जाए तो दुख से ज्यादा जगाने वाली और क्या सुविधा चाहते हो? दुख जगा सकता है। जिन्होंने दुख को जागने की कुंजी बना ली, उन्होंने दुख को तप कहा। दुख का दंश ही चला गया। दुख की भी सीढ़ी बना ली। दुख पर भी चढ़ गए। दुख पर भी यात्रा कर ली। दुख की भी सवारी हो गई। अभी दुख तुम पर सवार है। तुम भूल ही गए हो कि दुख तुम्हारी छाती पर बैठा है, तुम्हारे कंधों पर बैठा है, तुम्हारे सिर पर बैठा है, तुम उसके बोझ के नीचे दबे जा रहे हो।
बुद्ध पुरुषों ने दुख को भी सवारी बना ली। वे उस पर सवार हो गए। क्या मतलब है मेरा? मेरा मतलब है कि उन्होंने दुख को जागने के राह पर काम में ले लिया।
और ध्यान रखना, जब तुम जिसे सुख कहते हो, होता है, तो जागना मुश्किल होता है। क्योंकि सुख में तो आदमी सुख की शराब में डूब जाता है। सुख में तो मजे से भूल जाता है सब--अपने को भी भूल जाता है। लेकिन दुख में दुख का कांटा गड़ता है। पैर में कांटा गड़ता हो, कैसे भूलोगे? सिर में दर्द हो, कैसे भूलोगे? पीड़ा हो तो भूलोगे कैसे? पीड़ा हो तो भूलने के लिए बड़े उपाय करने पड़ते हैं, तब भूल पाओगे। सुख में बिना उपाय के भूल जाते हो।
शायद सुख की आकांक्षा तुम इसीलिए करते हो कि बिना उपाय के भूलने की सुविधा मिल जाती है। जब तुम सुख नहीं खोज पाते, तब तुम विस्मरण के दूसरे

उपाय खोजते हो। लेकिन क्या जिंदगी का सार-निचोड़ यही है कि तुम अपने को भुला दो? तो यह तो हुए न हुए, बराबर हुआ।
जागना। भुलाने की चेष्टा बंद करना। जब दुख आए, उसे देखना। जब दुख आए
तो बैठकर उसका निरीक्षण करना। जब पैर में कांटा चुभे और पीड़ा तुम्हारे प्राणों में लहराने लगे तो भागना मत, उसका सत्संग करना। कहना, पीड़ा आ गई, रुक! हम तुझे भर आंख देख लें। उसके चारों तरफ परिक्रमा करना, जैसे मंदिर में परिक्रमा करते हो। उसे हाथ में लेकर देखना, जैसे हीरे-जवाहरात को देखते हो।
दुख के पारखी बनो। उसका विश्लेषण करो--कैसे आया? कहां से आया? क्यों आया? और तुम दुख का विश्लेषण करते-करते ही पाओगे, दुख को देखते-देखते ही पाओगे, एक दूरी आ गई तुम में और दुख में। दुख कहीं दूर पड़ा रह गया--बड़े फासले पर। अलंघ्य खाई है तुम्हारे और दुख के बीच में।
चाह... चाहत के सेतु से जुड़े थे। जब गौर से देखते हो, चाहत का सेतु गिर जाता है। क्योंकि जब तुम परिपूर्ण रूप से मौजूद होकर देखते हो, तुम्हारे भीतर कोई चाह नहीं उठती। क्योंकि जो ऊर्जा जागरण बनती है, वही ऊर्जा चाह बनती है। या तो चाह बना लो, या जाग बना लो। दोनों एक साथ नहीं होते। चाह से भरे आदमी में जागरण नहीं होता, जागरण से भरे क्षण में चाह नहीं होती। ये दोनों एक साथ होते ही नहीं। यह जीवन का अंतर्निहित विज्ञान है।
तो जब भी तुम जागोगे, तुम अचानक पाओगे, तुम चाह से मुक्त हो गए। एक क्षण को तुम भी बुद्ध हुए। एक क्षण को तुमने भी जिनत्व छुआ। एक क्षण को तुम भी उड़े आकाश में। एक क्षण को धरा तुमसे भी छूटी। एक क्षण को गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव न रहा। एक क्षण को तुम पर भी प्रसाद की वर्षा हुई।
एक क्षण को भी हो जाए तो कुंजी तो हाथ लग गई। फिर तुम्हारे हाथ में है। फिर जितने पर तौलने हों, तौलना। फिर जितने दूर की ऊंचाई भरनी हो, उड़ान भरनी हो, भरना। एक बार तुम्हें ख्याल में आ जाए।
अभी तो जैसी दशा है... ।
साहित्य कला पूजा नमाज
जंतर-मंतर जप जोग-भोग
थे सिर्फ बहाने वे जिससे
आए हमको अपना न ध्यान
साहित्य भी, कला भी, पूजा भी, नमाज भी!
जंतर-मंतर जप जोग-भोग
थे सिर्फ बहाने वे जिससे
आए हमको अपना न ध्यान
किसी तरह अपने को भूले रखें। किसी तरह यह याद न आए कि मैं हूं। किसी तरह व्यस्त रहें, कहीं उलझे रहें। खाली होने में डर लगता है। खाली होने की बजाय तुम जिंदगी को कांटों से भरा ही ज्यादा पसंद करोगे। कम से कम भरावट तो रहती है। खाली होने की बजाय तुम दुखी होना ही ज्यादा पसंद कर रहे हो। कम से कम कुछ तो होता है हाथ में--दुख ही सही! खाली होने की बजाय तुम आंसू चुन लोगे। कम से कम आंखें भरी तो हैं, डबडबाई तो हैं, खाली तो नहीं हैं।
खाली से आदमी बहुत डरता है। और खाली हो जाना परमात्मा का घर है।
इसलिए बुद्ध ने शून्य को ध्यान कहा। चाहे, ध्यान को शून्यता कहो, चाहे शून्यता को ध्यान कहो, वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
जागो तो तुम बहुत सी बातें पाओगे। एकः कि किसी ने तुम्हें दुख कभी दिया नहीं। अचानक एक मुक्ति का अनुभव होगा। किसी ने कभी तुम्हें कोई दुख नहीं दिया। और किसी ने कभी तुम्हें कोई सुख नहीं दिया। तुम मुक्त हो गए। यह अपना ही जाल था। यह अपना ही खेल था।
रात के अंधेरे में खुद ही कांटे बो लेते थे, दिन में उन पर चलते थे और तड़पते थे। सुख की आकांक्षा करते थे, जितनी प्रगाढ़ करते थे, उतने ही पीड़ा के कांटे गहरे हो जाते थे। जितनी पीड़ा गहरी होती थी, उतनी सुख की आकांक्षा को और गहराना पड़ता था। क्योंकि इस पीड़ा को भुलाने के लिए अब और भी बड़े सुख की कल्पना, बड़े स्वर्ग बनाने पड़ते थे।

जिस दिन तुम जागकर देखोगे, यह पूरा का पूरा खेल ऐसा साफ आर-पार, पारदर्शी हो जाता है। कुछ करना नहीं होता। एक मुस्कुराहट तुम्हारे तन-प्राण पर फैल जाती है। तुम हंसते हो सिर्फ; यह जानकर कि यह भी कैसा पागलपन था! यह कैसा खेल अपने साथ खेला!
हालत करीब-करीब वैसी ही होती है, जैसी सुबह जागकर सपने के बाद होती है। सपने में कितने बेचैन हो लिए, सपने में कितने दुखी हो लिए, सपने में पाया कि पहाड़ छाती पर गिर गया है। आंख खुलती है तो पता चला, अपना ही हाथ है। जैसा तुम्हारा सपना है, ऐसी ही तुम्हारी जिंदगी है। तुम जागे दिन में
भी सोए हुए हो। तुम्हारे जागने का कोई भरोसा नहीं है। रात तो तुम सोए हो पक्का, तुम भी मान लेते हो। जिस दिन तुम मान लोगे दिन में भी कि सोए हो, उसी दिन तुम्हारी असली सुबह की शुरुआत हो जाएगी। आंख खोलकर भी तुम सपने ही देख रहे हो। क्योंकि तुम्हारी आंखों में आकांक्षाएं भरी हैं। आकांक्षाओं से भरी आंखें सपना ही देख सकती हैं, सत्य नहीं। आंखें खुली हैं, लेकिन तुम वह नहीं देख रहे हो, जो है। तुम वही देख रहे हो, जो होना चाहिए।
बस, इस भेद को थोड़ा समझ लो। जो है, उसे देखना है। जो होना चाहिए, उसे छोड़ना है। वह है ही नहीं--होना चाहिए। उस ना-कुछ को छोड़ने में तुम कितनी अड़चन खड़ी कर रहे हो, जो है ही नहीं।
मैंने सुना है, एक गांव में अदालत में एक मुकदमा आया था। दो मित्र थे, बड़े पुराने मित्र थे, सिर-फुटव्वल हो गई। जज ने पूछा कि झगड़े का कारण क्या था? तो दोनों थोड़े बेचैन हुए। फिर एक ने कहा कि झगड़े का कारण यह था कि मेरे खेत में इसने भैंसें घुसा दीं।
खेत कहां है? जज ने पूछा।
उस आदमी ने कंधे बिचकाए।
भैंसें कहां हैं?
वह दूसरा आदमी बोला कि सुनिए, पहले पूरी बात सुन लीजिए। हम दोनों बैठे
थे नदी की रेत पर--पुराने दोस्त हैं--बातचीत चलती थी। मैंने इससे कहा कि मैं भैंसें खरीदने की सोच रहा हूं। यह बोला कि मत खरीदो; न खरीदो तो अच्छा। क्योंकि मैंने ईख का खेत लगाने की सोची है। और तुम भैंसें खरीद लोगे, नाहक किसी दिन झंझट हो जाएगी। घुस गयीं खेत में, क्या करोगे? मैं बर्दाश्त न कर सकूंगा। उस दूसरे आदमी ने कहा तो लगा लिया तुमने खेत! क्योंकि भैंसें तो मुझे खरीदनी हैं। मत लगाओ खेत। अब भैंसों का क्या भरोसा भाई? भैंसें भैंसें हैं; किसी दिन घुस भी जाएंगी। तब मैं कोई दिन-रात भैंसों की पूंछ पकड़कर तो घूमता न रहूंगा।
बात बढ़ गई तो उसने कहा, तुमने भी खरीद लीं भैंसें! खेत तो लगेगा ईख का।
यह लग गया खेत। उसने अपने डंडे से रेत पर एक जगह लकीर खींच दी और कहा, यह रहा खेत। और दूसरे ने कहा कि फिर मैंने भी अपने डंडे से दो भैंसें उसमें घुसा दीं, लकीरें खींच दीं कि ये घुस गयीं भैंसें। फिर सिर-फुटव्वल हो गई। न कोई खेत है, न कोई भैंस है।
तुमने कभी गौर किया, ऐसी कितनी सिर-फुटव्वल तुम्हारे भीतर नहीं चलती है! हंसना मत; कहानी तुम्हारी है। और किसी न किसी दिन अदालत की पकड़ में तुम आओगे। उस अदालत को लोग परमात्मा कहते हैं। किसी न किसी दिन परमात्मा की अदालत में खड़े होओगे, तो तुम भी ऐसी मुसीबत में पड़ोगे कि बता न पा पाओगे, कौन से खेत थे, कौन सी भैंसें थीं। सिकंदर को भी कंधे उचकाने पड़ेंगे। क्योंकि सब खेत काल्पनिक थे और सब भैंसें काल्पनिक थीं। सब दोस्त काल्पनिक थे, सब दुश्मन काल्पनिक थे। कुछ हुआ न था। आकांक्षाओं में मुठभेड़ हो गई थी। वासनाएं लड़ गयीं थीं। भविष्य की योजनाओं में संघर्ष हो गया था। वर्तमान में तो कुछ भी न था, हाथ तो खाली थे।
लेकिन आदमी आकांक्षाओं से भरा जीता है--तब तक, जब तक कि थोड़ा जागकर देखता नहीं। थोड़ी आंख के किनारे से जरा जागकर अपनी जिंदगी को देखो। थोड़ा सही! तुम्हें हंसी आए बिना न रहेगी। जिंदगी तुम्हें एक मखौल मालूम होगी, एक मजाक मालूम होगी। किसी ने जैसे व्यंग किया।
जागा हुआ व्यक्ति पहला तो अनुभव यह करता है कि यहां दुख और सुख का कोई कारण ही नहीं है, सब कल्पना का जाल है। और जैसे ही यह समझ में आता है, एक नया

आकाश भीतर अपने द्वार खोल देता है। तो मैं ही हूं; न कोई सुख है, न कोई दुख है। इस मैं की प्रतीति, इस स्वयं के बोध में ही आनंद है, शांति है।
आनंद न तो सुख है, न दुख। आनंद तुम्हारे सुख का जोड़ नहीं है। तुम आनंद
को गलत मत समझ लेना। तुम्हारे सुखों का संग्रह नहीं है आनंद, तुम्हारे सुखों की राशियां नहीं है आनंद, तुम्हारे सुख से आनंद का कोई संबंध नहीं है। सुख और दुख तो एक ही साथ बंधे हैं। हर सुख के पीछे दुख बंधा है, हर दुख के पीछे सुख बंधा है। आनंद निर्द्वंद्व है; द्वैत नहीं है वहां। न कोई सुख है, न कोई दुख है। ऐसी शांति है, जैसी तूफान के बाद अनुभव होती है। ऐसी शून्यता है, जैसी मृत्यु में अनुभव होती है।
और उस जागरण में तुम्हें न तो यह पता चलेगा कि दूसरों ने तुम्हारा कल्याण किया; न यह पता चलेगा कि अकल्याण किया। दूसरों ने कुछ किया ही नहीं। खेत थे ही नहीं, जिसमें वे भैंसें छोड़ देते। दूसरों ने कुछ किया ही नहीं। अब और अगर तुम इस जागरण में गहरे जाओगे तो पाओगे कि दूसरा भी नहीं है। वह भी तुम्हारी कल्पना का ही हिस्सा था। वह भी तुमने माना था।
हम अलग-थलग नहीं हैं, भिन्न-भिन्न नहीं हैं, हम एक ही महा विस्तीर्ण चेतना के भाग हैं।
मैंने सुना है, एक केंचुआ कीचड़ में सरक रहा था कि उसे दूसरा केंचुआ मिल गया। उसने कहा, मैं बड़े दिन से तलाश में था। अकेला-अकेला ऊब गया हूं।
विवाह की आकांक्षा है।
उस दूसरे केंचुए ने कहा, नासमझ! मैं तेरा ही दूसरा हिस्सा हूं। केंचुए
के दोनों तरफ मुंह होते हैं। दोनों के मुंह मिल गए थे। वह एक ही केंचुआ था, दो नहीं हैं।
जब भी तुमने किसी से विवाह करना चाहा, अपने से ही करना चाहा है। जब भी तुमने किसी से दोस्ती बनानी चाही, अपने से ही बनानी चाही है। और जब तुमने किसी से शत्रुता पाल ली हो, अपने से ही पाल ली है। चेतना अदृश्य है। लेकिन दूसरे में हमारा ही छोर है। हम दूसरे के ही छोर हैं। जीवन गुंथा है। जीवन एक है, बहुत नहीं हैं, अनेक नहीं हैं। जागकर यह पता चलता है।
तो कैसा कल्याण! कैसा अकल्याण! कौन करेगा कल्याण! कौन करेगा अकल्याण! तुम यह मत सोचना कि बुद्ध पुरुष यह कहते हैं कि होश हो तो दूसरा सदा कल्याणकारी है। बुद्ध पुरुष कहते हैं, होश हो तो कल्याण ही कल्याण है, अकल्याण नहीं है। तुम्हारे होश के कारण, दूसरे के कारण नहीं; दूसरा तो है ही नहीं। होश में कहां दूसरा? ये सब बेहोशी की बातें हैं।
शमा है, गुल भी है, बुलबुल भी, परवाना भी
रात की रात ये सब कुछ है, सहर कुछ भी नहीं
बस, सब रात की बातें हैं, सुबह कुछ भी नहीं। ये बेहोशी की बातें हैं।
शमा है, गुल है, बुलबुल भी, परवाना भी
रात की रात ये सब कुछ है, सहर कुछ भी नहीं
जागृति की सुबह में रात के सपने सब खो जाते हैं; उनमें से कुछ भी बचता नहीं। ऐसा नहीं है कि सुबह जागकर तुम पाते हो कि पचास प्रतिशत सपना तो झूठा था, पचास प्रतिशत सही था। ऐसा नहीं है कि तुम पाते हो दस प्रतिशत सही था, नब्बे प्रतिशत झूठा था। ऐसा भी नहीं है कि तुम पाते हो, कम से कम एक प्रतिशत तो सही था, निन्यानबे प्रतिशत झूठा था। सुबह तुम पाते हो कि शत-प्रतिशत सपना झूठा था। सपने का अर्थ ही यह है कि जो शत-प्रतिशत झूठा है। जागकर ऐसा नहीं लगता कि कुछ भी जो मूर्च्छा में जाना था, उसमें कुछ भी
सच था; जागकर लगता है, वह सभी खो गया; वह सभी झूठ था। मूर्च्छा में सत्य जाना ही नहीं जा सकता--एक प्रतिशत भी नहीं।
आंख बंद हो, होश पर धुंध छाई हो, अपना ही पता न हो, दूसरे का पता कहां? भीतर जो मौजूद है, उससे ही मिलन न हो रहा हो; तो बाहर जो मौजूद है, उससे मिलन कैसा? निकटतम जो है, उस पर भी हाथ नहीं पड़ता है; तो जो दूर फैला है, जो दूर अनंत तक विस्तीर्ण है, उसको कहां हम पकड़ पाएंगे?
कम से कम अपने को तो मुट्ठी में ले लो। और जिस दिन तुमने अपने को मुट्ठी में लिया, पूरा परमात्मा मुट्ठी में आ जाता है। क्योंकि तुम

परमात्मा हो। तुम उसके ही फैलाव हो। एक लहर भी पकड़ में आ गई तो सागर हाथ में आ गया।

दूसरा प्रश्नः नींद में सपने नहीं आते, पर लगता है कि कई दिनों से नहीं सोई हूं। जरा सी बाधा पर भी शरीर जाग पड़ता है, जैसे कि जागी ही होऊं। लेकिन थकान का अनुभव नहीं होता और नींद का समय सरकता मालूम होता है। कृपया बताएं कि यह कैसी स्थिति है?

शुभ है, मंगलकारी है।
जैसे-जैसे ध्यान की गहराई आने लगेगी तो रात में भी तुम पाओगे कि कोई तुम्हारे भीतर जागा ही है। ऊपर की पर्तें सो गयीं, भीतर कोई कोना प्रकाशित है, आलोकित है। शरीर डूब गया अंधकार में, मन भी खो गया, लेकिन चैतन्य की कोई एक किरण जलती ही चली जाती है। कोई भीतर साक्षी पहरा दिए चला जाता है।
अभी भी, सोए-सोए भी वह साक्षी तो मौजूद है; तुम्हें पता हो या न हो। सुबह कौन कहता है कि रात सपने देखे? किसे याद रह जाती है सपने की? निश्चित ही सपने के अलावा भी कोई मौजूद था। दूर किनारे खड़े होकर देखता होगा।
जैसे तुम फिल्म-गृह में जाते हो और देखते हो एक तस्वीरों का जाल। पर्दे पर कुछ भी तो नहीं है--धूप-छाया का खेल। तुम देखते हो, चाहे तुम देखने में बिल्कुल डूब ही क्यों न जाओ--डूब ही जाते हो, भूल ही जाते हो, भूल ही जाते हो कि पर्दा कोरा है, भूल ही जाते हो कि सिर्फ धूप-छाया का खेल है, सब धोखा है, भूल ही जाते हो कि माया है। लेकिन तीन घंटे बाद जब उठते हो, तब अचानक याद आ जाती है। तब बाहर चर्चा करते निकलते हो कि फिल्म अच्छी थी, नहीं थी। छू गई दिल को, नहीं छू गई। जरूर कोई पीछे खड़ा रहा। तुम फिल्म भी देखते रहे और तुम उसे भी देखते रहे, जो देखता था।
बड़ी धीमी है यह बात अभी। बड़ी मंदिम-मंदिम है। रोशनी बहुत प्रगाढ़ नहीं है, सूरज जैसी नहीं है, टिमटिमाते छोटे से मिट्टी के दीए जैसी है, पर है। और मिट्टी का दीया सूरज का ही अवतार है। मिट्टी के दीए में वही सब कुछ है, जो सूरज में बड़ा होकर है।
कबीर कहते हैं, जब जागा तो ऐसा लगा, जैसे हजार-हजार सूरज एक साथ उतर आए। निश्चित ही हजार-हजार सूरज उतर आएं तो मिट्टी के दीए की ज्योति पता भी न चलेगी। लेकिन अभी पता चलती है, अंधेरा बहुत है।
सुबह उठकर कभी तुम कहते हो, रात बड़ी आनंद से बीती। सपना आया ही नहीं। कोई सपनों की उधेड़-बुन न रही। एक गहरी शांति में सोए, बड़ी गहरी नींद थी। कौन कहता है? अगर तुम बिल्कुल ही सो गए थे तो यह कौन याद कर रहा है? जरूर तुम बिल्कुल नहीं सो गए थे, कोई तो जागता ही रहा। शायद तुम्हें पता भी नहीं कि वह कौन है, जो जागता रहा! लेकिन कहीं दूर गहराई में तुम्हारे कोई दीया जलता ही रहा।
वह चौबीस घंटे जल रहा है। वही तुम्हारा वास्तविक होना है। वही दीया जिस दिन तुम पहचान लोगे, उसी दिन समाधि को उपलब्ध हो जाओगे। उसी दीए की ज्योति जिस दिन तुम्हारी जानी-मानी, परिचित, अपनी हो जाएगी। है तुम्हारी, लेकिन तुम्हें प्रत्यभिज्ञा नहीं है, पहचान नहीं है। है तुम्हारी, लेकिन विस्मरण हो गया है।
जैसे कई दफा तुमने देखा होगा, लिखते-लिखते कलम कान पर लगा ली और फिर खोजने लगे। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि चश्मा लगाए हो, उसी चश्मे से देख रहे हो और चश्मा खोज रहे हो। वैसा ही कुछ हो गया है। याददाश्त खो गई है। तो जैसे ध्यान की थोड़ी सी झलक आनी शुरू होगी, जैसे ध्यान की पहली पायल बजेगी, वैसे ही यह अड़चन आएगी। अड़चन लगती है तुम्हें, क्योंकि नया अनहोना हो रहा है। सोओगे और नींद मालूम न होगी। अगर कुछ गलत हो रहा होगा तो सुबह थकान मालूम होगी; वह सबूत है। अगर ठीक हो रहा है तो सुबह कोई थकान न मालूम होगी। शरीर का विश्राम भी हो जाएगा और जागरण की एक सतत धारा, एकशृंखलाबद्ध भाव-दशा भी बनी रहेगी।

शुभ है। कृष्ण ने गीता में यही अर्जुन को कहा है कि जब सभी सो जाते हैं, या निशा सर्व भूतानां, जब सभी के लिए अंधेरी रात हो गई; तस्यां जागर्ति संयमी, और तब भी संयमी जागा रहता है।
इसका कोई यह मतलब नहीं है कि संयमी बैठा रहता है रातभर, कि खड़ा रहता है रातभर; पागल हो जाएगा। संयमी भी विश्राम करता है, लेकिन संयमी का शरीर ही विश्राम करता है। संयमी भीतर साक्षी की तरह जागा रहता है।
बुद्ध के पास आनंद वर्षों रहा। एक दिन उसने पूछा कि मैं बड़ा चकित होता हूं। कल तो रातभर बैठकर देखता रहा! कई दफा ख्याल तो आया, कभी रात उठना पड़ा है तो देखा कि आप जिस करवट सोए हैं, उसी करवट सोए रहते हैं। हाथ जहां रखा है, वहीं रखे रहते हैं। जिस हाथ का तकिया बनाया है, उसको बदलते भी नहीं रातभर। पैर जिस ढंग से रखा है दूसरे पैर पर, वहीं टिका रहता है। मामला क्या है? क्या रातभर इसका भी हिसाब रखते हैं? यह तो सोना भी मुश्किल हो गया। बुद्ध ने कहा, हिसाब रखने की जरूरत नहीं है; कोई भीतर जागा ही रहता है। बदलने की जरूरत क्या? एक दफा रख दिया सम्हालकर, रख दिया।
शुभ है, मंगलदायी है; घबड़ाना मत। सपने धीरे-धीरे खो ही जाएंगे।
क्योंकि जब साक्षी जागा रहेगा तो सपने नहीं हो सकते। सपना हो तो साक्षी नहीं हो सकता। ठीक है। सपना तो खो गया है, रातभर जागरण जैसा भी बना रहता है। धीरे-धीरे और प्रगाढ़ होगा; और सघन होगा; और त्वरा और तीव्रता आएगी। तलवार की धार की तरह साक्षीभाव बन जाता है--प्रखर।
लेकिन शुरू में तो अड़चन होगी। क्योंकि हम सोचते हैं कि आठ घंटे की नींद जरूरी है--धारणा है; और यह क्या हो रहा है? रातभर जागे-जागे से रहे। और आठ घंटे जागे-जागे से बने रहो तो रात बड़ी लंबी मालूम पड़ती है। अंत ही होता नहीं आता मालूम पड़ता। सो गए तो भूल गए। सो गए तो रात कब शुरू हुई पता नहीं, कब पूरी हुई पता नहीं। सोए कि सुबह होती है। लेकिन यह तो रातभर सुबह बनी रही। यह तो रातभर भीतर कोई सुर बजता रहा। शुरू-शुरू में अड़चन होगी। प्राण, पहले तो हृदय तुमने चुराया
छीन ली अब नींद भी मेरे नयन की
पंख थकते प्राण थकते रात थकती
खोजने की चाह पर थकती न मन की
छीन ली अब नींद भी मेरे नयन की
धैर्य का भी तो कहीं पर अंत है प्रिय
और सीमा भी कहीं पर है सहन की
छीन ली अब नींद भी मेरे नयन की
शिकायत स्वाभाविक है; घबड़ाहट भी स्वाभाविक है माना, लेकिन घबड़ाकर यह
जो एक नया सिलसिला भीतर शुरू हो रहा है, इसे तोड़ मत देना। इसे अहोभाव से स्वीकार करना।
इसकी शिकायत भी मत करना। क्योंकि इसी की तो हम तलाश कर रहे हैं, इसी की खोज पर तो निकले हैं, इसे ही तो हम बो रहे हैं, इसे ही तो बना रहे हैं, ताकि चौबीस घंटे ध्यान का सेतु एक क्षण को भी हमसे छूटे ना; अनुस्यूत हो जाए। जैसे माला में धागा पिरोया होता है--हर फूल के भीतर छिपा और दूसरे फूल में गुजर जाता है। ऐसी हर घटना--रात हो कि दिन, भोजन हो कि स्नान, बाजार हो कि मकान, एकांत हो कि भीड़, सुख हो कि दुख, सफलता कि असफलता, जीवन कि मृत्यु--कोई फर्क न पड़े। सारे फूलों के भीतर अनुस्यूत धागे की तरह ध्यान बना रहे।
इसे हम साध ही रहे हैं, साधने की आकांक्षा ही कर रहे हैं। लेकिन अक्सर ऐसा होगा, जब पहली दफा घटनाएं घटनी शुरू होंगी तो बेचैनी स्वाभाविक है। और ऐसी ही घड़ियों में कल्याण मित्र की जरूरत है कि कोई तुम्हें कह सके, घबड़ाना मत। कोई तुम्हें ढाढ़स बंधा सके। कोई तुम्हें कह सके कि अनजान नहीं है रास्ता, यहां हम चले हैं। कोई तुम्हें बता सके कि ये रहे हमारे भी पद-चिह्न। कभी हम भी यहां से गुजरे थे। गुजर जाओगे तुम भी। पड़ाव है।
जल्दी ही पुरानी आदत छूट जाएगी। शरीर सोया रहेगा, तुम जागे रहोगे। और यही तो भेद खड़ा होगा, तभी तो तुम्हें पता चलेगा, शरीर अलग है और तुम अलग हो। अभी तो तुम इतने घुले-मिले हो, शरीर सोता है, तुम सो जाते हो। अभी तो इतने घुले-मिले हो, भेद नहीं है, फासला नहीं है, अंतराल नहीं है। धीरे-धीरे

अंतराल होगा। और चूंकि ध्यान का प्रयोग कर रहे हो, इसलिए पहला अंतराल नींद में पड़ेगा; इसे ख्याल में रखना।
अलग-अलग धर्मों ने अलग-अलग प्रयोग किए हैं, इसलिए अलग-अलग अंतराल पड़ते हैं। चूंकि हम यहां ध्यान पर ही सारा जोर दे रहे हैं, इसलिए पहला अंतराल तुम्हारी नींद में पड़ेगा। क्योंकि जागरण और नींद में बड़ा विरोध है। जब ध्यान सधेगा, तो शरीर तो सो जाएगा, तुम न सोओगे। तत्क्षण दिखाई पड़ेगा कि तुम अलग हो। इस शरीर से तुम एक कैसे हो सकते हो, जो सो गया और तुम जाग रहे हो? भिन्नता आ गई, भेद आ गया, सेतु टूट गया।
जो लोग उपवास की साधना करते हैं, उनका पहला भेद भोजन के साथ पड़ेगा। शरीर को भूख लगेगी और वे भीतर पाएंगे, परिपूर्ण तृप्त--संबंध टूट गया, सेतु गिर गया। उन्होंने जान लिया कि भूख शरीर की है, उपवास चैतन्य का है। इसीलिए तो उपवास शब्द बड़ा मूल्यवान है। उपवास का अर्थ हैः अपने निकट वास; अपने पास आ जाना। उसका भूखे रहने से कोई लेना-देना नहीं है।
अनशन नहीं है उपवास। अनशन राजनैतिक नेता करते हैं, उपवास का उन्हें क्या पता? उपवास तो बड़ा साधु चित्त व्यक्ति ही कर सकता है। राजनैतिक नेता उपवास कहते हैं अपने अनशन को, कहना नहीं चाहिए। उनका अनशन तो हिंसात्मक है। वह तो दूसरे पर जबर्दस्ती करने के लिए करते हैं। वह तो दूसरे को मजबूर करने के लिए करते हैं। वह तो ऐसे ही है, जैसे किसी की छाती पर छुरा रख दिया। दूसरे की छाती पर न रखा, अपने पर रख लिया।
स्त्रियां सदा से यही करती रही हैं--राजनैतिक नेता अब-अब सीखे हैं-- अपना ही सिर पीट लेती हैं। मारना पति को था, लेकिन उसकी सुविधा नहीं है, आज्ञा भी नहीं है, शास्त्रों में स्वीकृति भी नहीं है, पति परमात्मा है! मारना था पति के सिर को, दीवार से टकराना था पति के सिर को, वह हो नहीं सकता; तो स्त्रियां सदा से करती रही हैं। किसी ने न कहा कि ये सत्याग्रही हैं। वे सदा से रही हैं। उन्होंने अपना ही सिर ठोंक लिया। पर इतनी ठोंक-पीट मचाई कि पति को झुकना पड़ा।
अनशन एक बात है; स्त्रियां बहुत दिन से करती रही हैं। राजनेता अभी-अभी सीखे हैं। वह स्त्रैण मनोविज्ञान है। उपवास बड़ी और बात है। अनशन का मतलब है, दूसरे के साथ तुम जबर्दस्ती करना चाहते हो। जिसे तुम समझा न सके, जिसे तुम विचार से राजी न कर सके, जिसे तुम अपनी राह पर ले जाने के लिए हार गए; अब तुम एक ऐसा उपाय कर रहे हो, जो उचित नहीं है; जो कि बड़ी जालसाजी का है, जो कि बड़ी बेईमानी का है।
अब तुम इस तरह की जबर्दस्ती उस पर थोप रहे हो कि जिसको वह इनकार भी न
कर सके। अब तुम उसकी बेबसी का फायदा उठाना चाहते हो।
उपवास का अर्थ हैः स्वयं के करीब आना। जैसे ही कोई व्यक्ति उपवास में स्वयं के करीब आता है, एक बात साफ हो जाती है, भूख शरीर की है; आत्मा का तो सदा उपवास चल रहा है।
बड़ी मीठी कहानी है कि कृष्ण के नगर में यमुना के पार एक संन्यस्त मुनि आया। बाढ़ के दिन हैं, वर्षा के दिन हैं, और कृष्ण ने अपनी पत्नी रुक्मणी को कहा कि जाकर भोजन करवाकर आओ मुनि को। पर उन्होंने कहा कि नदी में बड़ी बाढ़ है; और उस तरफ जाने का कोई उपाय नहीं। नावें तक नहीं चल रही हैं, तो हम कैसे जाएंगे? तो कहानी बड़ी मधुर है। कृष्ण ने कहा कि तुम जाकर कहना कि अगर मुनि सदा से उपवासे रहे हैं तो नदी राह दे दे।
भरोसा तो न आया, लेकिन जब कृष्ण कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे। और मुनि सदा के उपवासे होंगे। तो उन्होंने जाकर यमुना को कहा कि अगर मुनि सदा के उपवासे हैं तो मार्ग दे दो। कहते हैं, यमुना ने राह दे दी। वे उस पार निकल गयीं। मुनि को भोजन करवा दिया। तब वे बड़ी घबड़ायीं। अब लौटकर क्या कहेंगी? क्योंकि नदी तो फिर बह रही है। अब तो पुराना सूत्र काम न आएगा न! अब तो मुनि भरपेट भोजन कर चुके। रहे होंगे जीवनभर उपवासे, अब तो नहीं हैं। वे बड़ी बेचैनी में पड़ गयीं, ठिठककर खड़ी हो गयीं।
मुनि ने पूछा, क्या मामला है?
तो उन्होंने कहा, हम एक सूत्र का उपयोग करके आए थे, अब वह व्यर्थ हो गया। अब हम नहीं जानते कि हम राह कैसे मांगें यमुना से?

मुनि ने कहा, वही सूत्र काम देगा। तुम फिर वही कहो कि मुनि अगर जीवनभर
के उपवासे हैं तो नदी राह दे दे।
उन्होंने कहा, लेकिन अब हमें ही इस पर भरोसा नहीं है। आप भोजन अभी हमारे सामने किए हैं, हमारा लाया हुआ ही किए हैं।
मुनि ने कहा, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरे उपवास में इस भोजन से कोई खंडन नहीं आता; तुम कहो।
कहते हैं, उन्होंने डरते-डरते, सकुचाते-सकुचाते कहा। मुनि पीछे पड़ा
तो कहना पड़ा। और यमुना ने राह दे दी।
कहानी तो कहानी है, लेकिन बड़ी सूचक है। आत्मा सदा उपवासी है, उसको कोई जरूरत नहीं भोजन की। उसके लिए ईंधन की कोई जरूरत नहीं है। शरीर को ईंधन की जरूरत है, क्योंकि शरीर मरण-धर्मा है। आत्मा अमृत है, सदा से है, सदा है। उसके होने के लिए किसी और ऊर्जा की जरूरत नहीं है। उसकी स्वयं की ऊर्जा शाश्वत है--एस धम्मो सनंतनो। वह सदा से है, सदा रहेगी। वह सदा होने का सूत्र है। शाश्वत है उसकी ऊर्जा। उसके लिए रोज-रोज ऊर्जा की जरूरत नहीं। शरीर के पास अपनी कोई ऊर्जा नहीं है--जोड़-तोड़ है, उधार है। आत्मा के पास अपनी ऊर्जा है--जोड़-तोड़ नहीं है, उधार नहीं है, अपनी ऊर्जा है। शरीर को भोजन न दो तो मरने लगेगा। भोजन देते चले जाओ तो जी लेगा, घसिट लेगा; उसके लिए कोई ईंधन चाहिए रोज-रोज।
उपवास से करने वाला व्यक्ति पहले जानेगा भेद कि शरीर को भूख है, शरीर
की तृप्ति है; आत्मा की भूख ही नहीं, तृप्ति का सवाल कैसा?
ध्यान का प्रयोग करने वाला व्यक्ति जानेगा, नींद शरीर की है, आत्मा का जागरण है, जागरण उसका स्वभाव है, नींद उसने कभी जानी नहीं।
अलग-अलग धर्म इस भेद को अलग-अलग ढंग से जानेंगे। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, कहां से वे जानते हैं। कहीं से भी यह बात समझ में आ जाए, कहीं से भी हाथ इस सूत्र पर पड़ जाए, क्रांति घटित हो जाती है।
मंगलदायी है, शुभ है। अत्यंत गहन कृतज्ञता से, अत्यंत गहन धन्यवाद के भाव से, आभार से, चुपचाप आगे बढ़े जाना है।

तीसरा प्रश्नः आप अक्सर कहते हैं कि जिस चीज से आदमी को सुख होता है, उससे दुख भी; जिससे लाभ होता है, उससे हानि भी; तो कृपया आप बताएं कि यहां सुख और दुख का, लाभ और हानि का अनुपात क्या है? कहीं पचास-पचास प्रतिशत तो नहीं, जो एक-दूसरे को नकारकर आदमी के हाथ में शून्य का शून्य रहने देते हैं?

ऐसा ही है; पचास-पचास प्रतिशत ही है। तुम लाख उपाय करो कि सुख ही सुख मिल जाए, असंभव है। तुम लाख उपाय करो कि दुख ही दुख मिल जाए, असंभव है। क्योंकि हर दुख उतनी ही मात्रा का सुख अपने साथ ले आता है।
समझो; किसी ने तुम्हारी प्रशंसा की, सुख मिला। बस, उतने ही सुख के साथ तुम्हारे भीतर अहंकार की मात्रा बढ़ गई। अब यह अहंकार की मात्रा इतना ही दुख तुम्हें दिलवाएगी, आज नहीं कल। क्योंकि जरा सी बात अब ज्यादा चोट करेगी। इस आदमी ने प्रशंसा न की होती और कोई आदमी गाली दे गया होता तो चोट इतनी न पड़ती। इस आदमी ने तुम्हारा वहम बढ़ा दिया। इसने कहा कि तुम जैसे साधु पुरुष संसार में विरले हैं। अब कोई आकर असाधु कह गया तो चोट अब ज्यादा लगेगी; ऐसी पहले न लगती। जितनी मात्रा में प्रशंसा ने सुख दिया है, उतनी ही मात्रा चोट की भी बढ़ जाएगी।
तुम्हें सफलता मिल गई, अब असफलता ज्यादा कष्ट देगी। स्वभावतः तुम जितने ऊपर चढ़ जाओगे, जब गिरोगे तो उतने ही नीचे गिरोगे। और जीवन में कोई भी चीज थिर नहीं रह सकती। चढ़ोगे तो गिरोगे। सफल होओगे तो हारोगे। हर जीत हार ले आती है; जैसे हर दिन अपनी रात ले आता है। वे प्रणय-बंधन में बंधे हैं। हर प्रशंसा निंदा ले आती है।
और इससे विपरीत भी सही है। अगर दुख आता है तो तुम्हारे जीवन में सुख
की मात्रा उतनी ही बढ़ा जाता है।

थोड़ा समझो; गरीब आदमी जब भोजन करता है तो ज्यादा सुख पाता है अमीर की बजाय। भिखारी को राह पर अगर भोजन मिल जाए तो वह जैसी तृप्ति अनुभव करता है, वैसी संपन्न आदमी कभी अनुभव नहीं करता। संपन्न के सामने थाली लगी रखी रहती है, उसे भूख ही नहीं है, तृप्ति कैसी! भूख तृप्ति लाती है। भूख की मात्रा से तृप्ति की मात्रा निर्भर होती है।
तो कभी-कभी गरीब आदमी रूखी-सूखी रोटी से वैसा सुख पाता है, जैसा संपन्न आदमी राजभोगों से भी नहीं पाता। तुमने कभी भिखारी को देखा? राह पर पड़ा वृक्ष के नीचे सो जाता है। रास्ता चल रहा है, दिन की दुपहरी है, वह मजे से सो रहा है, घुर्रा रहा है। संपन्न, सुविधा-संपन्न रात अपने बहुमूल्य से बहुमूल्य शयनकक्षों में भी करवटें बदलते रहते हैं। सब सुविधा है, कोई बाधा नहीं है, नींद नहीं आ रही। क्योंकि नींद आने के लिए श्रम जरूरी है। श्रम लाता है नींद। अब दिनभर विश्राम किया तो नींद कैसे आएगी? विश्राम से थोड़े ही नींद आती है!
जिंदगी के तर्क बड़े विरोधाभासी हैं। आदमी के तर्क और जिंदगी के तर्कों में यही फर्क है। आदमी का तर्क यह कहता है कि दिनभर विश्राम का अभ्यास किया तो रात में नींद और अच्छी तरह आनी चाहिए। दिनभर तकियों से लगे लेटे रहे, उठे-बैठे इतना भी न किया, नौकर-चाकरों ने किया, बिजली के यंत्रों ने किया; तो दिनभर जब इतना अभ्यास कर रहे हैं विश्राम का तो रात तो बड़ी गहन नींद आनी चाहिए। परंतु उनको रात नींद आएगी ही नहीं; जरूरत ही न रही।
जो आदमी गिट्टी तोड़ रहा है, राह के किनारे पत्थर फोड़ रहा है, खेत में कुदाली चला रहा है, पसीना-पसीना हुआ जा रहा है, वह रात गहरी नींद की तैयारी कर रहा है। तुम कहोगे, इसे तो नींद आनी ही नहीं चाहिए। दिनभर अभ्यास कर रहा है, इतना उपद्रव कर रहा है शरीर के साथ, यह उपद्रव, यह बेचैनी रात में भी फैल जाएगी, यह सो न सकेगा। लेकिन यह गहरी नींद सोएगा और तुम न सो सकोगे। आदमी के तर्क और जिंदगी के तर्कों में यही भेद है। जिंदगी विरोध से चलती है और अनुपात बराबर होता है। इसलिए अगर तुम हिसाब लगाओ मरने पर तो गरीब और अमीर बराबर सुख-दुख का अनुपात पाते हैं। भिखारी और सम्राट बराबर सुख-दुख का अनुपात पाते हैं। आखिरी हिसाब में बड़े मजे की बात है, कोई फर्क नहीं रह जाता। मौत बड़ी साम्यवादी है, कम्युनिस्ट है, बराबर कर जाती है। तुमने कितने ही बड़े काम किए, या कुछ भी नहीं किया, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आलसी और कर्मठ, अमीर और गरीब, सफल और असफल, मेधावी और मूढ़--सब को मौत बराबर कर जाती है। मरते वक्त अचानक पता चलता है कि सब हिसाब-किताब बराबर हो गया। पचास-पचास प्रतिशत की बात है।
हाट मिट्टी ने लगाकर सांस की
रात दिन बेचा खरीदा प्राण को
उम्रभर की यह मगर सौदागिरी
बस कफन ही दे सकी इन्सान को
हाट मिट्टी ने लगाकर सांस की
रात दिन बेचा खरीदा प्राण को
उम्रभर की यह मगर सौदागिरी
बस कफन ही दे सकी इन्सान को
अंत में सम्राट हो कि फकीर, जमीन में बराबर जगह मिल जाती है। मिट्टी दोनों को आत्मसात कर लेती है। सारी जिंदगी की दौड़-धूप व्यर्थ मालूम होती है। यह ढंग कमाई का नहीं मालूम होता।
फिर फर्क क्या कभी भी होता है या नहीं?
फर्क होता है। कोई बुद्ध पुरुष मरता है तो फर्क होता है। उसने जिंदगी में हानि-लाभ बराबर-बराबर हैं यह मानकर, यह जानकर, यह पहचानकर, हानि-लाभ की चिंता ही छोड़ दी। उसने यह सौदागिरी बंद ही कर दी। इसके लिए वह मौत तक न रुका कि मौत इसे बंद करे। मौत के आने के पहले उसने द्वार-दरवाजे बंदकर दिए इस सौदागिरी के। उसने पहले ही समझ लिया कि यह तो सब बराबर हो जाना है, इसमें दौड़ना व्यर्थ है। उसने नजर भीतर की तरफ फेर ली। उसने पलकें बंद कर लीं।

उसने उसकी तलाश करनी शुरू कर दी, जो वह है। न लाभ, न हानि, क्योंकि लाभ-हानि दोनों बाहर हैं। लाभ भी बाहर होता है, हानि भी बाहर होती है। धन भी बाहर है, निर्धनता भी बाहर है। इसलिए उसने अपनी तलाश करनी शुरू कर दी कि मैं कौन हूं जिसको लाभ होता है, हानि होती है? मैं कौन हूं जो सफल होता है, असफल होता है? मैं कौन हूं जो कभी सुखी होता, कभी दुखी होता? अब सुख-दुख का हिसाब छोड़ दिया; उसने उसकी फिक्र लेनी शुरू कर दी, जो मैं हूं।
इसके पहले कि मौत आए, स्वयं को पहचान लेना जरूरी है। जिन्होंने मौत के पहले स्वयं को पहचान लिया, उनकी मौत फिर आती ही नहीं। मौत तो आती उसी की है, जिसने अपने को नहीं पहचाना। मौत सिर्फ अज्ञानी की होती है, बुद्ध पुरुषों की कोई मौत नहीं होती।
क्यों? क्योंकि तुमने जिस हानि-लाभ की दुनिया को समझा है जीवन, वह तो मौत छीन लेगी। तुमने जिसे जीवन समझा है, वह मौत छीन लेगी। और असली जीवन को तो तुमने समझा ही नहीं।
मगर एक बात ख्याल रखना, बुद्ध पुरुषों की मृत्यु नहीं होती, क्योंकि तुम जिसे जीवन कहते हो, उसे वे मौत के पहले ही छोड़ देते हैं। इसका अर्थ हुआ कि तुम जिसे जीवन कहते हो, उस अर्थ में तो वे मरने के पहले ही मर जाते हैं, मृतवत हो जाते हैं। और यहां मृतवत हो जाते हैं--बाहर के जगत में, बहिर्यात्रा पर--अंतर्यात्रा में सूर्योदय हो जाता है। बाहर लगती है सूली तो भीतर सिंहासन मिल जाता है।
मिट्टी में कोई बीज गिरा
मतलब है इसका सीधा सा
लो उसकी खुल तकदीर गई
जो राज दिया था दिल में रख
अब मिली इजाजत खोले वह
कली कोंपल किसलय कुसुमों की मनचाही भाषा बोले वह
बस एक वक्त के धक्के से
वह लाचारी की फौलादी
मजबूत तड़क जंजीर गई
मिट्टी में कोई बीज गिरा
मतलब है इसका सीधा सा
लो उसकी खुल तकदीर गई
मगर मिट्टी में जब बीज गिरता है तो एक अर्थ में तो मरता है। मिट्टी में गिरने का अर्थ मरना है, कब्र का बनना है। बीज जब गिरता है तो मिटता है, सड़ता है, खोल टूटती है। एक तरफ से मृत्यु घटित होती है। और एक दिन अचानक, जिस दिन यह मृत्यु पूरी होती है, उसी दिन अंकुरण होता है, नवजीवन का सूत्रपात होता है।
लो उसकी खुल तकदीर गई
अब जीवन प्रगटा।
अब मिली इजाजत खोले वह
कली कोंपल किसलय कुसुमों की
मनचाही भाषा बोले वह
बीज तो बंद था, बोलने की सुविधा कहां थी? बीज तो बंद था, गीत के अंकुरित होने की सुविधा कहां थी? बीज तो कारागृह में था, गहन प्रसुप्ति में सोया था, खुले आकाश में उठने का मौका कहां था? बीज तो पत्थर की तरह था, फूल कैसे खिलते उसमें?
बीज तो सूली पर लटका था, जब मृत्यु पूरी हो गई तो पुनर्जन्म हुआ। क्योंकि मरता यहां कुछ भी नहीं। मृत्यु संसार जानता ही नहीं। मृत्यु यहां घटती ही नहीं। यहां मृत्यु घटती है केवल झूठी मान्यताओं की, जो अस्तित्व का अंग नहीं हैं। अस्तित्व मृत्यु को पहचानता ही नहीं। जैसे सूर्य के प्रकाश ने अंधेरा नहीं जाना, ऐसे ही अस्तित्व की कोई मुलाकात कभी मृत्यु से नहीं हुई। यहां हम मरते हैं, क्योंकि हम अपने को जानते नहीं; और जो हम

अपने को मानते हैं, वह हम हैं नहीं। मृत्यु यहां भ्रांत धारणाओं की होती है।
संन्यास, साधना, साधुता, खोज सत्य की, झूठे जीवन से मुक्त होने की खोज है। जिसने जान लिया कि यहां लाभ-हानि बराबर है, अब वह इस पागलपन में न पड़ेगा। जिसने जान लिया, आखिर में हिसाब बराबर हो जाता है। हाथ लाई शून्य जैसा; ऐसा जान लिया जिसने, वह इस जीवन से मरने को तैयार हो जाता है। वही संन्यास का कदम है; वही संन्यस्त होने की शुरुआत है।
संन्यास का अर्थ हैः बहिर्जीवन में मृत्यु और अंतर्जीवन में जन्म। संन्यास का अर्थ हैः अब हम भीतर चलेंगे। बाहर चलकर देखा, यह यात्रा कहीं पहुंचाती नहीं; भटकाती बहुत, चलाती बहुत, थकाती बहुत, आखिर में बार-बार कब्र आ जाती है। फिर-फिर वही गड्ढा आ जाता है। फिर-फिर उसी गड्ढे में सोना हो जाता है। अब हम उसे खोजेंगे, जो शाश्वत है।
पर उसके लिए मृत्यु की तैयारी जरूरी है। इसलिए हमने समाधि शब्द चुना
है इस देश में। कब्र को भी हम समाधि कहते हैं और ध्यान की परिपूर्णता को भी समाधि कहते हैं। क्योंकि वह भी कब्र है, वह भी मृत्यु है। तुम जबर्दस्ती मारे जाते हो, संन्यासी स्वेच्छा से मर जाता है। तुम जबर्दस्ती मारे जाते हो, एक बहुमूल्य अवसर चूक गए। संन्यासी स्वेच्छा से मर जाता है और एक बहुमूल्य अवसर को उपलब्ध हो गया। एक बात खोज ली उसने--
मिट्टी में कोई बीज गिरा
मतलब है इसका सीधा सा
लो उसकी खुल तकदीर गई
मगर जरा बीज की तरफ से सोचो। बीज डरता होगा, स्वाभाविक है। भयाक्रांत होता होगा, स्वाभाविक है। वृक्ष से गिरते वक्त कितनी न पीड़ा होती होगी, स्वाभाविक है। कितना न भयभीत, कंपता होगा भीतर कि यह क्या हुआ? मरे!
जब मिट्टी में गिरता होगा, मिट्टी में दबता होगा तो उसकी वही दशा न हो जाती होगी, जब तुम मरोगे और मिट्टी में दबोगे तो तुम्हारी होगी! कैसे चीखते-चिल्लाते हो! कैसा कुरूप दृश्य उपस्थित कर देते हो मरते वक्त! कितनी चेष्टा करते हो कि किनारे से और थोड़ी देर, और थोड़ी देर रुके रह जाएं; थोड़ी देर और खूंटी को पकड़कर रुक जाएं। रुकने में कोई अर्थ भी न हो, अस्पताल में ही बने रहें, हाथ-पैर बंधे रहें यंत्रों से, ऑक्सीजन की नली नाक में पड़ी रहे, मगर बने रहें। जीवन का कोई अर्थ न होगा; कुछ कर न सकोगे, उठ न सकोगे, बैठ न सकोगे। जीवन का मोह बड़ा हैरान करने वाला है। नालियों में पड़े रहें, सड़ते रहें, लेकिन मरने की तैयारी नहीं होती।
बीज की तरफ से सोचो थोड़ा; बीज भी घबड़ाता होगा। उसे भी कहां पता है कि मरने के बाद अंकुरण होगा? उसे भी कहां पता है कि इजाजत मिलेगी कली, कोंपल, किसलय, कुसुमों को खोलने की? उसे भी कहां पता है कि यह मौत मौत नहीं है, एक नई शुरुआत है। यह मृत्यु एक नया आमंत्रण है फिर से जीवन को नया करने का। उसे भी कहां पता है, इस मौत के मौन से एक गीत उठने के करीब है। पता हो भी कैसे सकता है? बीज तो मिटेगा, तभी यह घटेगा। बीज तो इसे कभी अपनी आंख से देख ही न पाएगा।
इसलिए जब मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं, ईश्वर का दर्शन करना है; मैं कहता हूं, तुमसे न हो पाएगा। दर्शन तो होगा, लेकिन तुम न रहोगे। तो इतनी तैयारी करके आए हो कि अपने को भी चढ़ा देना पड़े इस आहुति में? इस यज्ञ में अपनी भी आहुति बना देनी पड़े, तैयारी करके आए हो? दर्शन तो होगा, लेकिन तुम न होओगे। तुम्हारा दर्शन नहीं होने वाला है, परमात्मा ही परमात्मा को देखेगा। परमात्मा ही अपने को देखेगा। यह तो होगा, लेकिन तुम मिट जाओगे। तुम हो बीज; तुम्हारे मिटे बिना कोई रास्ता नहीं है। इधर तुम मिटे, उधर परमात्मा हुआ। तुम परमात्मा हो ही; मिटने की तुमने घोषणा की कि तुम पात्र बने। इधर तुमने कहा कि अब मेरे होने की कोई जरूरत नहीं, अब तू हो जा! मिट्टी में कोई बीज गिरा
मतलब है इसका सीधा सा
लो उसकी खुल तकदीर गई

जब तक कोई संन्यस्त न हो जाए जीवन से, तब तक तकदीर बंद है। जब तक कोई जीवन की इस व्यर्थता को न समझ ले कि यहां हानि-लाभ बराबर-बराबर है, कोई उपाय नहीं है एक प्रतिशत का भी फर्क करने का, तब तक आदमी अटका ही रहता है किनारे से। और तब तक तुम जो लेकर आए हो अपने भीतर, वह सड़ता है। तुम जो लेकर आए हो, वह बंद ही रह जाता है। यही तो पीड़ा है आदमी की, यही तो संताप है। और क्या है संताप?
तुम्हारा दर्द क्या है? तुम्हारी परेशानी क्या है? इतनी ही परेशानी
है कि तुम जो होने को आए हो, वह नहीं हो पा रहे हो। नियति खुल नहीं पा रही है। तुम वृक्ष नहीं बन पा रहे हो कि आकाश के पक्षी तुम्हारे ऊपर बसेरा करें और नीड़ बनाएं। तुम्हारे फूल नहीं खिल पा रहे हैं कि उनकी सुगंध तुम बिखेर दो अनंत आकाश में और असीम में लीन हो जाए। तुम्हारे जीवन की ऊर्जा भी सूर्य की किरणों के साथ खेलना चाहती है, चढ़ना चाहती है आकाश में; वह नहीं हो पा रहा है। तुम्हारी बीन बजना चाहती है, यही पीड़ा है।
संसार में एक ही पीड़ा है और वह पीड़ा है कि बीज वृक्ष न हो पाए, कि तुम
जो पैदा करने को पैदा हुए थे, वह तुम से पैदा न हो पाए; कि बीज गांठ की तरह, पत्थर की तरह पड़ा रह जाए। अभिव्यक्ति न हो सके, तुम जिसे छुपाए हो। मिट्टी में कोई बीज गिरा
मतलब है इसका सीधा सा
लो उसकी खुल तकदीर गई
जो राज दिया था दिल में रख
अब मिली इजाजत खोले वह
कली कोंपल किसलय कुसुमों की
मनचाही भाषा बोले वह
बस एक वक्त के धक्के से
वह लाचारी की फौलादी
मजबूत तड़क जंजीर गई
लेकिन जो बीज के लिए वक्त कर देता है, वह तुम्हें स्वयं करना पड़ेगा, वह वक्त नहीं कर सकेगा।
बस एक वक्त के धक्के से
वह लाचारी की फौलादी
मजबूत तड़क जंजीर गई
जो समय कर देता है बीज के लिए, वह तुम्हें स्वयं करना पड़ेगा। क्योंकि बीज तो अचेतन है; यह जिम्मेवारी उस पर नहीं। हो जाए, हो जाए; न हो, न हो। यह जिम्मेवारी उस पर नहीं। उसका कोई दायित्व नहीं।
यह बात तुम अपने लिए मत समझना। यह तुम्हारे लिए लागू न होगी। यह तुम्हें स्वेच्छा से कदम लेना पड़ेगा। यह कोई वक्त का धक्का तुम्हें नहीं गिरा देगा। तुम गिरोगे तो ही गिर पाओगे।
मनुष्य चैतन्य को उपलब्ध हो गया है। चैतन्य के साथ ही स्वतंत्रता भी मिलती है, दायित्व भी। बड़ी रिस्पॉॅन्सबिलिटी है, बड़ा दायित्व है। और वह दायित्व यह है कि अब तुम्हारे हाथ में है तुम्हारी मौत, तुम्हारा जीवन। तुम्हारे हाथ में है तुम्हारा स्वर्ग, तुम्हारा नर्क। तुम्हारे हाथ में है कि तुम क्या होओगे। तुम्हारे हाथ में है। तुम न होना चाहो तो तुम बीज की तरह पड़े रह जाओ। तुम्हारी मर्जी पर है अब बात। अब तुम्हारा भाग्य किसी और पर निर्भर नहीं। अब तुम्हारी तकदीर तुम्हारे हाथ में है।
इतना ही फर्क है बीज से तुममें; अन्यथा तुम भी बीज हो और तुम्हारे भीतर भी परमात्मा तड़फ रहा है प्रगट होने को।
गिरो स्वेच्छा से। मरो स्वेच्छा से। मिटो स्वेच्छा से।
तुम्हारे मिटने में ही तुम्हारी नियति का सूर्योदय है।

चौथा प्रश्नः आप अपने साधकों को सीधा-सादा ही करने को कहते हैं, पर हम फिर-फिर व्याख्या कर लेते हैं और अपनी व्याख्या के अनुसार ही चलते हैं।
कृपा कर समझाएं कि हम अपनी व्याख्या से अपने को कैसे बचाएं?

कुछ बुनियादी कठिनाइयां हैं। धीरे-धीरे ही तुम उन कठिनाइयों के प्रति सजग हो पाओगे। जल्दी की भी नहीं जा सकती। समय लगता ही है। बहुत बार तुम व्याख्याएं करोगे, बहुत बार व्याख्याओं को करके तुम मुझे चूकोगे, तभी धीरे-धीरे तुम्हें यह होश आना शुरू होगा कि तुम्हारी व्याख्याओं के कारण तुम मेरे पास आ ही नहीं पा रहे हो। तुम्हारी व्याख्याओं का जाल तुम्हें घेरे हुए है। तुम मुझे सुनते ही नहीं। तुम मेरे शब्दों में अपने अर्थ निकाल लेते हो।
यह स्वाभाविक है। क्योंकि शब्द तो मेरी तरफ से आते हैं, अर्थ तो तुम्हीं उन में डालोगे। मैं शब्द ही दे सकता हूं, सुनोगे तो तुम, गुनोगे तो तुम, चलोगे तो तुम।
तो पहले तो सुनते क्षण में ही भूल हो जाती है। धीरे-धीरे समझ आएगी।
सुनते समय विचारना मत, सिर्फ सुनना। सुनना बड़ी कला है; बड़ी से बड़ी कला है। इतनी बड़ी कि बुद्ध पुरुषों ने कहा है कि अगर कोई ठीक से सुन ले तो मुक्ति हो जाती है। महावीर ने कहा है कि तुम श्रावक अगर ठीक से हो जाओ-- श्रावक यानी सुनने वाले, श्रवण करने में कुशल--तो तुम मुक्त हो गए। कुछ और करने की जरूरत भी नहीं है, क्योंकि मुक्त तो तुम हो ही। किसी बुद्ध पुरुष से जरा सी अपनी पहचान ले लेनी है। किसी बुद्ध पुरुष के दर्पण में जरा अपने चेहरे को पहचान लेना है।
विवेकानंद एक कहानी कहते थेः एक सिंहनी गर्भवती थी, छलांग लगाती थी
एक टीले से दूसरे टीले पर कि उसका बच्चा जन्म गया। नीचे से भेड़ों-बकरियों का एक झुंड जा रहा था। वह बच्चा उसमें गिर गया, भेड़ों के साथ चल पड़ा। वह भेड़ों के साथ ही बड़ा हुआ। वह भूल ही गया कि सिंह है। कोई उपाय भी न था जानने का। वह भेड़ों की तरह ही रिरियाता, रोता, भागता, भेड़ों की भीड़ में ही घसिटता। बड़ा हो गया, लेकिन शाकाहारी था तो शाकाहारी ही रहा। क्योंकि वे भेड़ें तो शाकाहारी थीं।
एक दिन एक सिंह ने भेड़ों के उस झुंड पर हमला किया। वह सिंह बड़ा चकित हुआ। बूढ़ा सिंह देखकर बड़ा हैरान हुआ कि भेड़ें भाग रही हैं यह तो ठीक, सदा से भागती रही हैं, मगर एक सिंह का बच्चा इनके बीच कैसे भाग रहा है? अब तो वह जवान भी हो गया था, उनसे ऊपर भी उठ गया था। वह अलग ही दिखाई पड़ रहा था। उसकी रौनक, उसकी गरिमा और थी। मगर वह भी घसर-पसर भेड़ों के साथ भीड़ में भागा जा रहा है। और भेड़ें भी उससे परेशान नहीं हैं। नहीं तो सिंह की मौजूदगी--वे अपना प्राण छोड़कर भाग जातीं। और वह भी भाग रहा है मुझे देखकर।
वह बूढ़ा सिंह बहुत चकित हुआ। वह भागा, बामुश्किल इसको पकड़ पाया। पकड़ लिया तो वह रिरियाने लगा, रोने लगा। वह कहने लगा, मुझे छोड़ दो, मुझे जाने दो। मगर उसने कहा, तू ठहर। वह जबर्दस्ती उसे घसीटकर नदी के किनारे ले आया। वह रोता ही रहा, घसिटता ही रहा, लेकिन बूढ़ा सिंह उसे नदी के किनारे ले आया। उसने कहा, झांककर जरा देख भी तो!
पानी में दोनों का प्रतिबिंब बना। एक क्षण में क्रांति घटित हो गई--एक क्षण में! क्षण के भी हजारवें अंश में हो गई होगी घटित। उस युवा सिंह ने जब नीचे देखा और देखा कि दोनों के चेहरे एक जैसे हैं। और देखा कि मैं भी सिंह हूं, भेड़ नहीं। सिंहनाद निकल गया। प्राण कंप गए उस पहाड़ के। जंगल का रोआं- रोआं सिहर उठा। उस बूढ़े सिंह ने उसे कहा, अब तू जा, तुझे जहां जाना हो। बात खतम हो गई।
गुरु इतना ही कर सकता है कि तुम्हें पकड़कर... तुम रिरियाओगे बहुत, पक्का है; तुम भागोगे बहुत, पक्का है; तुम जिन भ.ेडों के बीच जीने के आदी हो गए हो--भीड़ यानी भेड़--तुम भीड़ में घुस-घुस जाओगे वापस, तुम्हें निकालना बड़ा मुश्किल होगा। लेकिन एक बार अगर तुम किसी बूढ़े शेर के हाथों में पड़ गए तो तुम्हारे उपाय कारगर होने वाले नहीं। वह कहीं न कहीं से तुम्हें दिखा ही देगा कि तुम भी यही हो।
बस, इतनी सी तो बात हैः तत्वमसि श्वेतकेतु। कुछ और कहने को भी तो नहीं है। ठीक से सुन लिया, बात हो गई।
तो सुनते वक्त सोचो मत। सुनते वक्त सिर्फ सुनो। सुनते वक्त गुनो भी मत; क्योंकि गुनने में तुम्हारे अर्थ आ जाएंगे। सुनते वक्त बस सुनो; उतना

काफी है। फिर पीछे गुन लेना। क्योंकि अगर ठीक से तुमने सुन लिया तो फिर तुम्हारे अर्थ तुम न रोप पाओगे। एक बार मेरा अर्थ तुम्हारे भीतर पहुंच जाए बस, फिर तुम न उसे बदल पाओगे। लेकिन तुम उसे पहुंचने ही न दो, मेरा शब्द तुम्हारे मस्तिष्क पर दस्तक दे और तुम उसका अर्थ तत्काल कर लो, मैं जब बोल रहा हूं, तब तुम अगर सोचते चलो मेरे साथ-साथ, तो चूक हो जाएगी।
अब मैं देखता हूं कई बार, नए-नए लोग आते हैं, तो अगर उन्हें मेरी बात ठीक लगती है तो वे सिर हिलाते हैं। अगर ठीक नहीं लगती तो वे इनकार भी करते जाते हैं कि नहीं, यह बात जंचती नहीं। यहां मैं बोल रहा हूं, वहां वे मेरे साथ समानांतर सोच रहे हैं। संभव ही नहीं है। फिर तो हम रेल की समानांतर पटरियों की तरह दौड़ते रहें सदा, कोई मिलन न हो पाएगा। समानांतर रेखाएं कहीं नहीं मिलतीं।
तुमने अगर सोचा--मैं इधर बोलता चला, तुम उधर सोचते चले--तो तुम वही सुनोगे, जो तुम सदा से सुनते रहे हो। तुम मुझे सुन ही न पाओगे। इसका यह अर्थ नहीं है कि जब मैं बोल रहा हूं तो तुम जो मैं कहता हूं, उसे स्वीकार कर लो। स्वीकार की तो बात ही नहीं है अभी। क्योंकि स्वीकार-अस्वीकार दोनों सोचने के हिस्से हैं।
मैं तुमसे कहता हूं, सोचो ही मत--न स्वीकार, न अस्वीकार; तुम एक खुले द्वार की तरह--जैसे धूप भीतर आ जाती है, ऐसा मुझे भीतर आ जाने दो; अभी निर्णय मत लो। जल्दी मत करो कि ठीक है या गलत, फिर बैठकर पीछे ठीक सोच लेना। लगे ठीक नहीं है, द्वार बंद कर लेना। मगर धूप एक बार भीतर आ गई तो किसने कब द्वार बंद किया है?
इसलिए तुमसे मैं यह कहता नहीं कि मुझे स्वीकार करो, वह चिंता ही नहीं है। क्योंकि जो मैं कह रहा हूं, वह कोई मंतव्य नहीं है, कोई विचार नहीं है, कोई सिद्धांत नहीं है, वह सीधा जीवन का तथ्य है। वह धूप की तरह है, अगर एक बार तुम्हारे द्वार खुल गए, अगर एक बार तुम्हारे अनजाने मैं भीतर प्रविष्ट हो गया, तो तुम फिर दुबारा द्वार बंद न कर पाओगे। वह तो हवा के एक ताजे झोंके की तरह है।
हां, तुम द्वार ही न खोलो, और तुम भीतर की बंद, सड़ी दुर्गंध में ही जीने
के आदी रहो, और हवा के झोंके को आने ही मत दो, द्वार पर खोलने के पहले ही तुम विचार करो कि ठीक है या गलत, तो अड़चन है। क्योंकि ठीक तो तुम्हें दुर्गंध मालूम होगी, जिसके तुम आदी हो। ठीक तो तुम्हें वही मालूम होगा, जिसके साथ तुम सदा जीए हो।
यह बिल्कुल अभिनव, यह बिल्कुल नया, यह बिल्कुल अपरिचित- अनजाना--यह तुम्हें ठीक नहीं मालूम होगा। ठोंक-पीटकर तुम इसे अपने को समझा भी सकते हो, ठीक है; तो भी तुम्हारी ठोंक-पीट में गलत हो जाएगा। यह बड़ी नाजुक बात है।
जैसा तुमने देखा, कांच के बर्तनों को भेजना हो कहीं तो डब्बे पर लिखते हैं, हैंडल केयरफुली। बड़ी नाजुक बात है, जो मैं तुमसे कह रहा हूं। हैंडल केयरफुली! जरा हिफाजत रखना। तुम ठोंक-पीटकर अपने मतलब का मत बना लेना, उसमें ही टूट जाएगा। तुम जल्दी मत करना। तुम सिर्फ मुझे भीतर आने दो, फिर पीछे तुम खूब सोचना-विचारना, फिर तुम निर्णय करना। अगर न रखना हो भीतर, द्वार फिर बंदकर लेना। धूप द्वार बंद करते ही विदा हो जाएगी, उसे अलग से निकालने की जरूरत भी न रहेगी। द्वार बंद कर लेना। अगर स्वच्छ हवा आ भी गई थी भीतर तो बहुत घबड़ाओ मत; तुम्हारी गंदी हवा काफी है, उसे भी विकृत कर लेगी। इसलिए जल्दी न करो।
भाषा की अड़चन है। और अगर तुम साथ-साथ सोचते भी चले तो भाषा की अड़चन है
कि जो कहना है, वह मैं तुमसे कह नहीं सकता; उसका हजारवां हिस्सा भी कह पाऊं तो बहुत। जो मुझे कहना है, वह सागर जैसा है; एक बूंद भी तुम्हारे कंठ में डाल पाऊं तो बहुत। जो कहना है, वह अनंत आकाश जैसा है, मैं तुम्हें थोड़ा सा आंगन का कोना भी दिखा पाऊं तो बहुत।
फिर तुम खड़े हो वहां, सोच रहे साथ-साथ। तो पहले तो मैं ही उसे पूरा नहीं कह पाता, क्योंकि भाषा की अड़चन है।
वाणी कितनी विवश बंधी जो

रूढ़ अर्थ के कारा में
हर निर्णय असहाय बह रहा
चिर-संशय की धारा में
सचमुच ही पत्थर पर जड़ है
जीवन के विश्वासों की
पंखों की नादानी
करते परिभाषा आकाशों की
शब्द कहां परिभाषा कर सके हैं आकाश की!
पंखों की नादानी
करते परिभाषा आकाशों की
पंख आकाश में उड़ते हैं माना; आकाश को थोड़ा जानते भी हैं ऐसा भी माना; लेकिन आकाश की परिभाषा तो पंख न कर सकेंगे। परिभाषा के लिए तो पूरा आकाश जानना होगा। परिभाषा के लिए तो आकाश की परिधि छूनी पड़ेगी। तभी तो परिभाषा होगी, जब परिधि छू ली जाएगी। लेकिन आकाश की कोई परिधि नहीं है तो परिभाषा कैसे?
शब्द उड़ते हैं मौन के आकाश में, लेकिन मौन की परिभाषा नहीं कर सकते। इतना ही काफी है कि दूर गया पक्षी आकाश की थोड़ी सी सुवास अपने पंखों में ले आए, परिभाषा नहीं। इतना ही बहुत है कि दूर गया पक्षी थोड़ी सी खबर ले आए। इतना ही काफी है कि दूर गया पक्षी तुम्हारे भीतर के पक्षी के लिए भी थोड़ी सी सुगबुगाहट दे दे; कि तुम्हारे भीतर का पक्षी भी पर फैलाने लगे। परिभाषा संभव नहीं है।
तो मैं जो कह रहा हूं, वह कोई दर्शनशास्त्र नहीं है। तुम्हें समझना है, ऐसा नहीं है, तुम्हें सुनना है, बस ऐसा! तुम मुझे ऐसे ही सुनो, जैसे पक्षी के गीत को सुनते हो।
कोयल गाती है, क्या करते हो तुम--अर्थ निकालते हो? अर्थ वहां कुछ है ही नहीं। फूल खिलता है, क्या करते हो तुम--अर्थ निकालते हो? अर्थ वहां कुछ है ही नहीं। विराट की तरफ इंगित हैं, इशारे हैं, अर्थ नहीं।
मैं तुमसे जब बोल रहा हूं तो मेरे साथ तुम वही व्यवहार करो-- सदव्यवहार, जो तुम कोयल के साथ करते हो, पानी के झरने के साथ करते हो। सुनो मुझे। जरा मुझे जगह दो--डरते-डरते ही सही, पूरा न सही तो न सही, थोड़ा सा द्वार खोलो, थोड़ी सी रंध्र मुझे दो।
मैं कोई खबर लाया हूं, जो दूर की है और कुछ ऐसी है कि तुम्हारे पास उसे समझने के लिए कोई शब्द नहीं। मेरे पास भी उसे समझाने के लिए कोई शब्द नहीं हैं। यह मैं जो बोल रहा हूं ऐसे ही है, जैसे गूंगा इशारे कर रहा हो। और कठिनाई बढ़ जाती है, अगर तुम भी बहरे हो, तुम अंधे हो तो और कठिनाई बढ़ जाती है। मैं गूंगा, तुम बहरे-अंधे; और कठिनाई बढ़ जाती है।
सभी बुद्ध पुरुष गूंगेपन का अनुभव करते हैंः गूंगे केरी सरकरा। स्वाद
तो ले आते हैं, लेकिन स्वाद इतना बड़ा है, स्वाद इतना विराट है, स्वाद इतना विशाल है कि कोई शब्द उसमें कारगर नहीं हो पाता। किसी शब्द में वह समाता नहीं।
शब्द को डुबो-डुबोकर उस विशालता में तुम्हें हम देते हैं, तुम जल्दी करके उसे बिगाड़ मत लेना। नाजुक है, हिफाजत की जरूरत है। सुन लो निमंत्रण को, जल्दी मत करो सोचने की। तुमसे कोई कह भी नहीं रहा है कि तुम कुछ करो। मुझसे लोग पूछते हैं, आप इतना बोले चले जाते हैं!
करूं भी क्या? तुम जब तक न सुनोगे, बोलना ही पड़ेगा। यह शिकायत मेरे ऊपर
न रहेगी, यह शिकवा मुझसे न रहेगा कि मैं नहीं बोला। अगर तुम चूके तो तुम अपने कारण चूकोगे, मेरे कारण नहीं चूक सकते।
पंख खुल जाते स्वयं ही
शून्य का पाकर निमंत्रण
विस्मरण होता सहज ही
नीड़ का आवास उस क्षण

तुम मेरे निमंत्रण को भर सुन लो। कोई बहुत दूर की पुकार लाया हूं। कोई गीत लाया हूं, जो तुमने सुना नहीं। कोई स्वर लाया हूं, जो अपरिचित है। कोई छंद, जिससे तुम्हारी पहचान नहीं।
सुनो! सुनते समय विचारो मत। विचार बीच में आ जाएं, हटा दो। उनसे कहो, क्षमा करो, थोड़ी देर बाद तुम आ जाना। अगर तुम थोड़ा भी हटा पाए, थोड़ी भी जगह मिली, कहीं से थोड़ी सी भी किरणें तुम में प्रविष्ट हो गयीं, वे तुम्हें रूपांतरित कर देंगी।
मेरा बहुत बड़ा जोर इस बात पर है कि तुम ठीक से सुन लो। तुम कुछ करो, इस
पर मेरा जोर ही नहीं है।
तुम से कुछ-कुछ करने को भी कहता हूं, क्योंकि तुम्हें अगर ऐसा लगे कि कुछ भी करने को नहीं है तो तुम्हारी बुद्धि के बाहर हो जाती है बात; और भी पकड़ के बाहर हो जाती है। तुम सोचते हो कुछ करने को, मैं जानता हूं, कुछ करने को नहीं है सिर्फ जागने को है। और जागना तो सिर्फ सुनकर भी हो सकता है। कोई सो रहा है, क्या करना है इसको जगाने के लिए? थोड़ा हिलाएंगे, पुकारेंगे। पुकार रहा हूं तुम्हें, हिला रहा हूं तुम्हें।
पंख खुल जाते स्वयं ही
शून्य का पाकर निमंत्रण
विस्मरण होता सहज ही
नीड़ का आवास उस क्षण
जैसे ही तुम्हें विराट आकाश का निमंत्रण मिल जाएगा, जरा सा तुम्हारी खिड़की से आकाश तुम में झांके, पंख फड़फड़ाने लगेंगे। तुम भूल ही जाओगे उस निमंत्रण के क्षण में उस छोटे से घर को, जो तुमने बसाया। वह नीड़ जिसको तुमने अब तक जीवन समझा, उस विराट के आकर्षण में, जादू में, उस घर को तुम भूल ही जाओगे। तुम उड़ ही पड़ोगे।
पंख तुम्हारे पास हैं। याद तुम्हें नहीं कि पंख तुम्हारे पास हैं। पंख तुम्हारे पास हैं, आकाश तुम्हारे पास है, तुम्हें चारों तरफ उसने घेरा। लेकिन पंखों की याद नहीं तो तुम आकाश को कैसे जानो?
सुनो। श्रावक बनो। सम्यक श्रवण, राइट लिसनिंग, महत क्रांति है।
जाहिद शराबे-नाब की तासीर कुछ न पूछ
अकसीर है जो हलक के नीचे उतर गई
पवित्र शराब की बात ही मत पूछो।
जाहिद शराबे-नाब की तासीर कुछ न पूछ
पवित्र शराब की बात ही मत पूछो। वही तो उड़ेल रहा हूं।
अकसीर है जो हलक के नीचे उतर गई
पर सवाल यह है कि तुम्हारे कंठ के नीचे उतर जाए। तुम्हारे हृदय में उतर जाए। थोड़ी राह दो। सुनो मेरी दस्तक, थोड़ी राह दो।
रिन्दाने-बोरिया की है सोहबत किसे नसीब
जाहिद भी हम में बैठ के इन्सान हो गया
रिन्दाने-बोरिया की है सोहबत किसे नसीब
सरल-हृदय शराबियों का साथ किसे मिलता? मिल जाए तो साथ बैठ-बैठकर ही क्रांति घटित हो जाती है।
इसे हमने पूरब में सत्संग कहा है। सत्संग का अर्थ हैः पीए हुओं के पास बैठ जाना। पीए हुओं की मौजूदगी शराब है। पीए हुओं के आसपास का आसमान शराब है। पीए हुओं के आसपास का वातावरण शराब है।
थोड़ा तुम राह दो, ताकि जो मैं डाल रहा हूं, उड़ेल रहा हूं, वह हलक के नीचे उतर जाए। वह तुम्हारे जरा कंठ के नीचे चला जाए।
खतरा यही है कि कहीं कंठ में न अटक जाए। कंठ में अटक गया तो तुम वही दूसरों को समझाने लगोगे--बिना समझे स्वयं। कंठ में जो अटक जाता है, वह बाहर आने की कोशिश करता है। उससे वमन होता है, उलटी होती है। कंठ के नीचे जो उतर जाता है, वह तुम्हारा मांस-मज्जा बन जाता है, वह तुम्हारा जीवंत अंग हो जाता है।

आखिरी सवालः प्रवचन या दर्शन में जो प्रश्न पूछे जाते हैं, उनमें से लगभग अस्सी प्रतिशत के बारे में मुझे लगता है कि वे मेरे ही हैं, पंद्रह प्रतिशत के लिए ईर्ष्या होती है कि काश वे मेरे होते; और शेष के लिए संतोष होता है कि वे मेरे नहीं हैं। ऐसा क्यों है?

और थोड़े गौर से देखना, थोड़े और जागकर देखना तो अस्सी प्रतिशत पर बात रुकेगी नहीं। और थोड़ा गौर से देखोगे तो तुम पाओगे कि पांच प्रतिशत को, जिन्हें तुम सोचते हो कि मेरे नहीं हैं, वे भी तुम्हारे हैं। और थोड़े गहरे जाओगे तो पंद्रह प्रतिशत के लिए, जिन्हें सुनकर तुम्हें लगता है ईर्ष्या होती है कि काश मेरे होते, वे भी तुम्हारे हैं।
आदमी-आदमी में फर्क क्या है? ढंग अलग होंगे पूछने के, बाकी प्रश्न वही हैं। रूप-रेखा अलग होगी, बात अलग नहीं है। हर आदमी परमात्मा की खोज में है-- हर आदमी! चाहे उसने पूछा हो, चाहे न पूछा हो; चाहे उसे खुद भी पता हो, न पता हो। जैसे हर बीज वृक्ष की तलाश है, वृक्ष होना चाहता है; वैसे हर आदमी परमात्मा होना चाहता है।
अगर तुम मुझसे पूछो तुम्हारे प्रश्नों के बाबत, तो मैं उनके ढंग अलग पाता हूं, रंग अलग पाता हूं, आवरण अलग पाता हूं। लेकिन जैसे ही प्रश्न के भीतर प्रवेश करो, वे सब एक हैं। इसलिए तो तुम्हारे प्रश्न भी सुनने की मुझे जरूरत नहीं और मैं जवाब दिए चला जाता हूं। मैं उन्हें जानता ही हूं। एक आदमी में झांक लिया तो सब आदमियों में झांक लिया। एक आदमी के प्रश्न पहचान लिए तो सारी आदमियत के प्रश्न पहचान लिए।
और अगर थोड़े गहरे गए तो तुम यही न पाओगे कि दूसरों के द्वारा पूछे गए प्रश्न तुम्हारे हैं, तुम यह भी पाओगे कि मेरे द्वारा दिए गए उत्तर भी तुम्हारे हैं।
तू ही है तेरा प्रश्न और तू ही तेरा उत्तर
शेष रही अब क्या जिज्ञासा?
अधरों से उलझा मत भाषा
तू ही स्वयं पुजारी
तू ही है प्रतिमा का पत्थर
दुग्ध फिरे नवनीत ढूंढ़ता
दुग्ध फिरे नवनीत ढूंढ़ता क्या यह म.ूढ प्रयास न खलता? सागर का प्रतिरोम कह रहा मंथन कर, मंथन कर।
नवनीत तुममें छिपा है।
मंथन कर, मंथन कर।
आज इतना ही।